राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन

Ka ~~Alochak~~ Alochnatakamyak

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

प्रस्तुतकर्ता

सञ्जय कुमार पाण्डेय

निर्देशक

डॉ० शङ्कर दयाल द्विवेदी

रीडर

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

१९९९

आत्मनिवेदन

सभ्यता के अरुणोदय काल से ही अभिनय-कला मानव समाज के मनोरञ्जन का मुख्य साधन रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में मनोरञ्जन के विविध साधनों के होते हुए भी नाट्य-कला का सर्वोच्च स्थान सुरक्षित है। ऐसी लोकप्रिय कला एवं तत्सम्बन्धी साहित्य के प्रति बाल्यकाल से ही आकर्षित होना स्वाभाविक था। परिणामतः स्नातकोत्तरोत्तरार्द्ध परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद नाट्य-साहित्य के शोध-विषयक सहज जिज्ञासा हुई। पूज्यपाद डॉ० शङ्कर दयाल द्विवेदी जी ने अपने निर्देशन में कृपावंशवदत्वेन अनुमति देकर मेरी जिज्ञासा को ठोस आधार प्रदान किया। तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो० सुरेश चन्द्र पाण्डेय जी ने शोध-विषय का सुझाव देकर महनीय कृपा की, यह उनकी नैसर्गिक उदारता थी। फलतः "राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोधकार्य में प्रवृत्त हुआ। यद्यपि कविराज राजशेखर तथा पं० विश्वेश्वर पर पृथक् रूप से प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है, परन्तु एक ही विधा एवं पर्याप्त समानता को आधार बनाकर जन-भाषा प्राकृत में रचित रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन मेरे लिए अत्यन्त रोचक विषय था।

गुरुवर्य डॉ० द्विवेदी की प्रेरणा, रुचि एवं अकारण मुझ पर स्नेह के परिणाम-स्वरूप ही शोध-प्रबन्ध को मूर्त-रूप प्राप्त हो सका है; उनके इन उपकारों के प्रति आभार ज्ञापन में मैं शब्द दारिद्र्य का अनुभव कर रहा हूँ; निश्चय ही मैं इसका प्रतिदान यावज्जीवन नहीं कर सकता। संस्कृत विभाग के वर्तमान अध्यक्ष प्रो० हरिशङ्कर त्रिपाठी तथा अन्य गुरुजनों से प्राप्त प्रेरणा एवं स्नेह से ही इस दुरूह कार्य को कर लेने का आत्मविश्वास जागा। मैं आप सबको शतशः नमन करता हुआ हार्दिक आभार ज्ञापित करता हूँ। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी, प्रधानाचार्य, एस०के० इण्टर कालेज, इलाहाबाद, ने अपने वैदुष्यपूर्ण सहयोग से जो उपकार मुझ पर किया है, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

संभवतः मेरे पूज्यनीय पिता स्व० श्री राम अधार पाण्डेय की यह अदृश्य शुभेच्छा ही रही, जिससे सतत उर्जा प्राप्त कर मैं शोधकार्य में प्रेरित रहा। आज इस शोध-प्रबन्ध की पूर्णता पर उन्हें मेरा शत-शत नमन है। अपने आदरणीय अग्रजों– सर्वश्री वीरेन्द्रनाथ पाण्डेय, श्री सुरेन्द्रनाथ पाण्डेय, श्री सच्चिदानन्द पाण्डेय एवं श्री धनञ्जय कुमार पाण्डेय से प्राप्त अविरल स्नेह एवं प्रोत्साहन शोधकार्य की पूर्णता के लिए जीवनदायिनी शक्ति बन गया है। मैं आप सबके प्रति आजीवन आभारी हूँ। मेरी दैनिक आवश्यकताओं का प्रतिपल ध्यान रखने वाले चिरञ्जीव भ्रातृव्यों– बृजेश कुमार एवं विकास रञ्जन धन्यवाद के पात्र हैं; क्योंकि उनके सहयोग के बिना शोधकार्य में अधिकाधिक समय दे पाना मेरे लिए संभव न था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय एवं स्थानीय गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से सतत् सहयोग मिलता रहा है; अतः उन लोगों के प्रति धन्यवाद ज्ञापन मेरा नैतिक दायित्व है। साथ ही उन सबके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनसे शोधकार्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उपकृत हुआ हूँ। कम्प्यूटरीकृत टङ्कण कार्य की स्पष्टता एवं शुद्धता के लिए श्री प्रभाकर पाण्डेय जी के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अल्प समय में अत्यन्त परिश्रमपूर्वक इस गुरुतर कार्य को सम्पादित किया।

मैंने शोध-प्रबन्ध लेखन में श्री रामकुमार आचार्य द्वारा सम्पादित कर्पूरमञ्जरी एवं डॉ० जगन्नाथ जोशी द्वारा सम्पादित श्रृङ्गारमञ्जरी के संस्करणों को मुख्य आधार बनाया है।

अंत में, मैं शोध-प्रबन्ध को गुणग्राह्य-सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत कर शोधविषयक अशुद्धियों एवं अपरिपक्वता के प्रति अपना उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए यह अपेक्षा करता हूँ, कि इसे बालप्रयास मानकर विद्वान लोग इन त्रुटियों की ओर ध्यान न देंगे।

विनयावनत

सञ्जय कुमार पाण्डेय

23-12-1999

(सञ्जय कुमार पाण्डेय)

विषयानुक्रमणिका

काव्य-परिचय

दृश्य-काव्य

दृश्य-काव्य का महत्त्व

दृश्य-काव्य के भेद

(क) रूपक

(ख) उपरूपक

उपरूपकों की उत्पत्ति एवं विकास

(क) उपरूपकों का प्राचीनतम उल्लेख
(ख) उपरूपकों के विकास में कोहल का योगदान
(ग) उपरूपकों की विकास प्रक्रिया—
(१) नृत्त एवं नृत्य के मार्ग से उपरूपक का विकास
(२) रूपकों के सङ्कीर्णन से उपरूपकों की उत्पत्ति

उपरूपकों का स्वरूप

उपरूपकों के भेद

सट्टक का परिचय एवं लक्षण

सट्टक : रूपक अथवा उपरूपक

सट्टक साहित्य की परम्परा

(क) कर्पूरमञ्जरी
(ख) रम्भामञ्जरी
(ग) विलासवती
(घ) चन्द्रलेखा
(ङ) भृङ्गारमञ्जरी
(च) आनन्दसुन्दरी
(छ) वैकुण्ठचरित
(ज) अज्ञातनामा सट्टक

प्रथम-अध्याय

काव्य-परिचय

'कर्पूरमञ्जरी' एवं 'भृङ्गारमञ्जरी' दोनों ही सट्टक विधा के अन्तर्गत परिगणित हैं; जिसे दृश्य-काव्य का एक उपभेद माना जाता है। इन दोनों कृतियों के आलोचनात्मक परिशीलन से पूर्व दृश्य-काव्य का सामान्य विवेचन अपेक्षित है; जिससे काव्य में सट्टक के स्थान को सुनिश्चित किया जा सके। साथ ही सट्टक है क्या? इस विधा की साहित्यिक परम्परा क्या है? इत्यादि विषयों पर विचार करना भी प्रासङ्गिक है।

दृश्य-काव्य

संस्कृत-काव्य-धारा दो सरणियों में विभक्त है–दृश्य एवं श्रव्य।[१] दृश्य-काव्य वह है, जिसका आस्वादन मुख्यतः चक्षुरिन्द्रिय द्वारा किया जाता है; जबकि श्रव्य-काव्य प्रधानतः श्रवणेन्द्रिय के द्वारा आनन्द की अनुभूति कराता है। संस्कृत साहित्य में दृश्य-काव्य-विधा 'नाट्य' नाम से प्रसिद्ध है। अमरकोशकार के अनुसार नृत्य, गीत एवं वाद्य इन तीनों के समुच्चय को नाट्य कहते हैं।[२] आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार–नाट्य शब्द नमनार्थक नट् धातु से निष्पन्न है, जहाँ पात्र स्व-भाव या स्व-रूप को त्याग कर पर-भाव या पर-रूप ग्रहण करता है।[३] आचार्य भरत का कथन है, कि–नानावस्थाओं से समन्वित जो लोक का स्वभाव है, अङ्गादि अभिनयों से युक्त होने पर वही नाट्य कहलाता है।[४] आचार्य धनञ्जय ने अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहा है।[५] आचार्य धनिक[६],

---

१. 'दृश्यश्रव्यभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्'–साहित्यदर्पण–६/१

२. 'तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्'–अमरकोश–१/७/११

३. 'नटनताविति नमनं स्वभावत्यागेन प्रह्वीभावलक्षणम्'– पृष्ठ ८०

४. नाट्यशास्त्र–१९/४४

५. 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'–दशरूपक–१/७

६. 'काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधाभिनयेन तादात्म्यापत्तिर्नाटम्'–दशरूपक–अवलोक टीका, पृष्ठ ६

शारदातनय[1], सागरनन्दी[2], महिमभट्ट[3] आदि ने भी अपने-अपने ढंग से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। किन्तु सभी मतों का सार यही है कि—नाट्य अभिनेय है। यह रङ्गमञ्च की वस्तु है। रङ्गमञ्च की साजसज्जा एवं अभिनेता के कायिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक अभिनय को देखकर सामाजिक को आनन्द की अनुभूति होती है। अभिनय के द्वारा दर्शकों को रसानुभूति कराना ही इसका उद्देश्य है।

दृश्य-काव्य का महत्त्व

दृश्य-काव्य अर्थात् नाट्य विभिन्न रुचि के लोगों के मनोरञ्जन का एकमात्र साधन है, जैसा कि महाकवि कालिदास ने कहा है—"नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्येकं समाराधनम्"[4] यह विभिन्न रङ्ग के सम्मिश्रण वाले चित्र की भाँति वेश-भूषा, नेपथ्य, साज-सज्जा आदि उचित संसाधनों से दर्शकों के हृदय पर एक अमिट प्रभाव डालता है और उसके हृदय में आनन्द का उदय करता है। काव्य में आनन्द से वंचित रहने वाले भी व्यक्ति नाट्य का मनोहर अभिनय देखकर, असीम अलौकिक आनन्द की उपलब्धि करते हैं।[5]

वास्तव में किसी वस्तु को सुनने की अपेक्षा उसे देखने का आनन्द अधिक होता है। काव्य में रसानुभूति के लिए अर्थ का समझना नितान्त आवश्यक होता है, परन्तु नाटक में उसकी आवश्यकता नहीं होती। यही कारण है कि—काव्य की अपेक्षा नाट्य की प्रतिष्ठा अधिक रही है। आचार्य वामन ने स्पष्टतः कहा कि—प्रबन्धों में रूपक श्रेष्ठ है। उनके अनुसार अपने में पूर्ण होने के कारण रूपक चित्र की तरह आश्चर्यजनक होता है, चित्रवत्ता के कारण ही दृश्य-काव्य श्रेष्ठ है। यह

---

१. भावप्रकाशन—७/१

२. 'धर्मादि साधनं नाट्यं सर्वदुःखापनोदकृत्'—नाट्यलक्षणरत्नकोश

३. 'अनुभावविभावानां वर्णना काव्यमुच्यते।
तेषामेव प्रयोगस्तु नाट्यं गीतादिरंजितम्।।'—व्यक्तिविवेक

४. मालविकाग्निमित्रम्—१/४

५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४६३

रूपक ही है, जिससे महाकाव्य, कथा, आख्यायिका आदि निःसृत है।[१] वामन का अनुकरण करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने भी कहा है कि—नाट्य रसास्वादन की दृष्टि से अन्य की अपेक्षा पूर्ण है। वेश-भूषा, चाल-ढाल और प्रवृत्ति का काव्य में वर्णन मात्र होता है, परन्तु नाट्य में सामाजिक प्रत्यक्ष रूप से इन सबको चक्षुरिन्द्रियों द्वारा देखता है, अतः रसास्वाद का अंतिम उत्कर्ष नाट्य में ही प्राप्त होता है। नाट्य की अपेक्षा कम रसास्वाद महाकाव्य से प्राप्त होता है। सबसे कम रसास्वाद मुक्तक से होता है।[२]

आचार्य भरत ने नाट्य को सार्ववर्णिक वेद कहा है, क्योंकि अन्य वेद द्विजमात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं, जबकि नाट्य का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए है। इसका विषय भी सीमित नहीं होता, अपितु तीनों लोकों के भावों का अनुवर्तन इसमें रहता है।[३] यह शक्तिहीनों के हृदय में शक्ति का संचार करता है, शूरवीरों के हृदय में उत्साह बढ़ाता है, अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करता है और विद्वानों में विद्वता का उत्कर्ष करता है।[४] इसीलिए आचार्य भरत को कहना पड़ा कि—कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है, जो इस नाट्य में नहीं दिखाई पड़ता।[५] कालिदास ने तो नाट्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए उसे चाक्षुष यज्ञ तक बतलाया है—"देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषम्।"[६] इस प्रकार आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन के स्तर को उदात्त एवं आदर्श बनाना नाट्य का जागरूक उद्देश्य है।

---

१. 'सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं चित्रपटवद् विशेषसाकल्यात्। ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः। ततो दशरूपकादन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्य हि इदं सर्वं विलसितं कथाख्यायिके महाकाव्यमिति।"—काव्यालङ्कारसूत्र—१३/३०-३२

२. 'तच्च (रसास्वादोत्कर्षकारकं विभावादीनां समप्राधान्यं) प्रबन्ध एव भवति। वस्तु तस्तु दशरूपक एव। यदाह वामनः—सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः। तद्विचित्रं चित्रपटवत् विशेषसाकल्यात्। तद्रूपरसचर्वणा तु प्रबन्धे भाषावेषप्रवृत्त्यौचित्यादिकल्पात्, तदुपजीवनेन मुक्तके!' —अभिनवभारती, षष्ठ-अध्याय, पृष्ठ २८७

३. 'त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।'—नाट्यशास्त्र—१/१०४

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४६३-६४

५. 'न तद् ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।'—नाट्यशास्त्र—१/११४

६. मालविकाग्निमित्रम्—१/४

दृश्य-काव्य के भेद

रामणीयक विश्व साहित्य में संस्कृत साहित्य सर्वथा विलक्षण है। जहाँ संस्कृतेतर विश्व साहित्य का लक्ष्य जीवन एवं जगत की विविध रूपिणी अभिव्यक्ति मात्र कराना रहा है, वहीं संस्कृत साहित्य का लक्ष्य आत्मदर्शन की मधुमयी झाँकियों को मानव जाति के समक्ष प्रस्तुत करना है। जिससे कि उनके मानस स्पर्श मात्र से युग-युग के कालुष्य धुल जाएँ तथा मानव व्यक्ति विशेष न रहकर सम्पूर्ण विश्व से भावमय तादात्म्य स्थापित कर विश्वरूप हो जाय। यद्यपि संस्कृतेतर साहित्य की भाँति संस्कृत साहित्य में भी जगत के भौतिक तत्वों की भावनात्मक प्रतिक्रिया का समावेश रहता है, फिर भी समष्टि में व्यष्टि के विलोपीकरण का प्रयास ही मुख्यरूप से प्रतिपादित होता है।

दूसरी बात यह है, कि जिस संस्कृति का चित्रण संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है, वह देव और मानव संस्कृति का समन्वित रूप है। फलतः कहीं पर नायक लौकिकता युक्त राजा, ब्राह्मण या सामन्त है, तो कहीं इन्द्र आदि देवताओं का चित्रण प्राप्त होता है। समाज के प्रत्येक वर्ग का चित्रण संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता है। स्पष्ट है कि इसी अत्यन्त विस्तृत विषय निरूपण में समर्थ संस्कृत साहित्य में सुगमता की दृष्टि से रूपक के विभिन्न भेदों की आवश्यकता पड़ी।

समस्त रूपक साहित्य, रूपक एवं उपरूपक भेद से मूलतः दो वर्गों में विभाजित है, जिसमें प्रत्येक के अनेक उपभेद हैं। नाट्य साहित्य में इन दो वर्गों का भेद वास्तविक है काल्पनिक नहीं। इस विभाजन के मुख्यतः भेदक रस एवं भाव हैं। दोनों का क्रमशः सामान्य परिचय प्रस्तुत है।

(क) रूपक—

रूपक रसाश्रित होते हैं, रूपकों के द्वारा प्रेक्षकों के अन्तःकरण में स्थित स्थायीभाव को रस-स्थिति में पहुँचा दिया जाता है। इसमें कोई एक रस प्रधान होता है तथा शेष गौण एवं प्रधान के सहायक मात्र। इसमें कथावस्तु, उसके अङ्ग, कथोपकथन तथा शील-संविधान की पुष्ट एवं संश्लिष्ट योजना होती है। रूपक वाक्यार्थाभिनयात्मक होता है।[१]

१. भरत एवं भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन-दिल्ली।

विभिन्न रूपकों में रस, नेता एवं वस्तु की योजना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है, अतः इन तत्वों के आधार पर[१] रूपकों के कम से कम दश भेद होते हैं। आचार्य धनञ्जय एवं आचार्य विश्वनाथ के अनुसार ये १० भेद इस प्रकार हैं—(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) अङ्क या उत्सृष्टाङ्क, (५) व्यायोग, (६) प्रहसन, (७) समवकार, (८) वीथी, (९) डिम, (१०) ईहामृग।[२] भोजराज एवं हेमचन्द्र ने नाटिका एवं सट्टक को भी रूपकों में परिगणित करते हुए इनकी संख्या बारह बताई है।[३] रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने सट्टक की जगह प्रकरणिका को रूपकों में स्वीकार करते हुए १२ भेद बताये हैं। रूपकों के भेदों में नाटक सर्वप्रधान है, इसे सब रूपकों का प्रतिनिधि माना गया है तथा उनका मूल बताया गया है।[४]

(ख) उपरूपक—

उपरूपक भावाश्रित होता है। इसमें प्रेक्षकों का रति आदि स्थायी-भाव, रस की स्थिति को नहीं पहुँच पाता। यह अपेक्षाकृत भाव विशेष को प्रदर्शित करता है। इसमें भावावेश और गीत नृत्य की प्रधानता रहती है। जीवन की सम्पूर्णता यहाँ अभिव्यक्त नहीं हो पाती। कोई एक रमणीय दृश्य-खण्ड गीत-नृत्य की पृष्ठभूमि में रागात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। उपरूपक में नाट्य के सभी अंग शिथिल होते हैं। यह पदार्थाभिनयात्मक होता है।[५] वस्तु, नेता एवं रस की योजना के आधार पर रूपक की भाँति उपरूपक के भी अनेक भेद होते हैं।

विवेच्य कृतियाँ सट्टक कोटि की हैं, जिन्हें सामान्यतः उपरूपक माना गया है। अतः सट्टक सम्बन्धी चर्चा से पूर्व उपरूपक का सविस्तार विवेचन अपेक्षित है।

---

१. 'वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः'—दशरूपक—१/१०

२. (क) 'नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोगसमवकारौ वीथ्यङ्केहामृगा इति।।'—दशरूपक—१/८

(ख) 'नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।'—साहित्यदर्पण—६/३

३. शृङ्गारप्रकाश, अध्याय—४

४. दशरूपक—३/१

५. भरत एवं भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्र नाथ दीक्षित; राजकमल प्रकाशन दिल्ली

उपरूपकों की उत्पत्ति एवं विकास

(क) उपरूपकों के प्राचीनतम उल्लेख—

उपरूपक शब्द का संभवतः सर्वप्रथम प्रयोग ग्यारहवीं शदी के भोजराज ने अपने ग्रन्थ 'शृङ्गार-प्रकाश' में किया है तथा उसके बारह भेद भी बताये हैं।[1] भोजराज के परवर्ती आचार्यों शारदातनय, सागरनन्दी, रामचन्द्र-गुणचन्द्र एवं विश्वनाथ ने उपरूपकों का न केवल उल्लेख किया है, अपितु उनका विधिवत् विवेचन करते हुए अनेक अन्य भेद भी बताये हैं। इन आचार्यों द्वारा उपरूपक के अन्तर्गत परिगणित नाटिका, त्रोटक, छलिक, हल्लीसक आदि जैसे कुछ नाट्यों का अस्तित्व हमें प्राचीनकाल से ही मिलने लगता है।

नाट्यशास्त्र में प्रसिद्ध १० रूपकों से भिन्न कोटि के तथा नाटक एवं प्रकरण के बन्धयोग से बने हुए संकीर्ण नाट्य-'नाटी' का उल्लेख है।[2] नाटी को उसके लक्षणों के आधार पर नाटिका का नामान्तर माना जा सकता है। कुछ आचार्य नाटी का अर्थ नाटिका एवं प्रकरणिका दोनों से लेते हैं।[3] भरत द्वारा नाटी के उल्लेख के आधार पर यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है, कि—नाटिका का अस्तित्व भरत के पहले से था; तभी भरत को उसका लक्षण करने में प्रवृत्त होना पड़ा। कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् को कुछ आचार्य नाटिका की कोटि का मानने के पक्ष में हैं।[4] यदि यह सही है, तो यह नाटिका की प्राचीनता का प्रबलतम् प्रमाण है। महाराज हर्ष ने सातवीं शदी में तीन नाट्यों की रचना की, जिसमें प्रियदर्शिका एवं रत्नावली नाटिका कोटि की हैं; जो नाटिका लेखन की समृद्ध परम्परा का संकेत देती हैं।

---

१. शृङ्गारप्रकाश, अध्याय—४—अंतिम अंश।

२. नाट्यशास्त्र—२०/६०-६१

३. नाटी संज्ञया द्वे काव्ये। एको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्यः। इतरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकासंज्ञः।—गणरत्नमहोदधि, वर्धमान (११४० ई०)— वी० राघवन द्वारा सूचित, शृङ्गारप्रकाश—पृष्ठ ५३९

४. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ३२८

छलिक की प्राचीनता का जहाँ तक प्रश्न है, छान्दोग्य उपनिषद में सामवेद की गायन विधि को छालिक्य नाम से कहा गया है। हरिवंश पुराण में भी छालिक्य का उल्लेख है। निश्चय ही यह छलिक का पूर्व नाम है, जिसके विषय में हरिवंश पुराण में कहा गया है कि—'छालिक्य का सर्वप्रथम प्रचलन देव, गंधर्व तथा ऋषियों ने किया है। श्रीकृष्णा तथा प्रद्युम्न ने उसे भूलोक में प्रचलित किया, भूलोक में छलिक के प्रति अगाध रुचि देखकर नाटककारों ने उसे अपनी कृतियों का विषय बनाया।'[१]

इसी प्रकार हरिवंश पुराण में हल्लीसक की प्राचीनता के उदाहरण भी मिलते हैं। इसमें इसका अर्थ रास लिया गया है—"हल्लीसकक्रीडनम् एकस्यैव पुंसः बहुभिः स्त्रीभिः क्रीडनं सैव रासक्रीडा।"[२] कालिदास प्रणीत विक्रमोर्वशीयम् नाट्यकृति को उसके लक्षणों के आधार पर त्रोटक कोटि का स्वीकार किया जाता है।[३] हर्ष ने त्रोटक का लक्षण किया है, जिसे शारदातनय ने हर्ष के नाम से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार स्पष्ट होता है, कि—विश्वनाथ आदि आचार्यों ने जिन्हें उपरूपक के रूप में स्वीकार किया है, उनमें से कुछ का अस्तित्व आज से कम से कम दो हजार वर्ष पहले भी था।

(ख) उपरूपकों के विकास में कोहल का योगदान—

अनेक विद्वानों ने कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक माना है। जैसा कि डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित महोदय कहते हैं, कि—"सम्भवतः गीत नृत्य-प्रधान रागात्मक उपरूपकों को शास्त्रीय रूप देने का श्रेय आचार्य कोहल को ही है।"[४] इसीप्रकार डॉ० रामजी पाण्डेय महोदय ने अनुमान लगाया है, कि—'कोहल ने उपरूपकों की कल्पना की थी।'[५] कोहल का काल निर्धारण करना कठिन कार्य

---

१. भावप्रकाशन, भूमिका, पृष्ठ ५३६-३७

२. भावप्रकाशन, भूमिका, पृष्ठ ५३८

३. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ३२९

४. भरत एवं भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित

५. भारतीय नाट्य सिद्धान्त उद्भव एवं विकास, डॉ० रामजी पाण्डेय, पृष्ठ ४५७

है। वर्तमान में उपलब्ध 'नाट्य-शास्त्र' के परिशीलन से सहज ही अनुमान किया जा सकता है, कि—कोहल वर्तमान नाट्शास्त्रकार के पूर्ववर्ती हैं, क्योंकि नाट्यशास्त्र में अनेक बार कोहल का उल्लेख हुआ है। कोहल का कोई ग्रंथ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। 'संगीत-मेरु' नामक एक उपलब्ध कृति को कोहल प्रणीत बताया जाता है, किंतु यह परवर्ती कृति है, ऐसा प्रमाणित होता है।[१] नाट्यशास्त्र में एक पंक्ति है—"शेषमुत्तरतन्त्रेण कोहलः कथयिष्यति"।[२] इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि—'उत्तरतन्त्र' नामक अपनी कृति में कोहल ने नाट्य सम्बन्धी अपनी मान्यताओं को लिखा होगा, जो आज अनुपलब्ध है। आज कोहल के विचारों से परिचित होने का एकमात्र साधन अभिनव-गुप्त की अभिनव-भारती नामक नाट्यशास्त्र की टीका है। इसी के आधार पर कोहल को उपरूपकों का प्रवर्तक बताया जाता है।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि—'उपरूपक' शब्द का प्रयोग कोहल सम्बन्धी किसी भी प्रसंग में नहीं प्राप्त होता, और न ही अभिनवगुप्त ने इस शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु इतना अवश्य है कि जिन कमियों या विशेषताओं के कारण उपरूपकों को रूपक से भिन्न कोटि में रखा गया है, लगभग वैसी ही कमियों या विशेषताओं के कारण कोहल ने उन्हें अन्य नाम—'नृत्यात्मक रागकाव्य'[३] देते हुए दश प्रसिद्ध रूपक भेदों से अलग कोटि में रखा है।

अभिनवगुप्त नृत्यात्मक रागकाव्यों के प्रसङ्ग में अक्सर 'कोहलादि'[४] शब्द का प्रयोग करते हैं। 'तदुक्तं चिरन्तनैः'[५] शब्द का प्रयोग भी इन काव्यों के प्रसङ्ग में उन्होंने किया है। अर्थात् कोहल

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पादटिप्पड़ी में सूचित - पृष्ठ - ५३६

२. नाट्यशास्त्र ३४/६५

३. अभिनवभारती, भाग—१, पृष्ठ १८२

४. (क) 'कोहलादिलक्षितत्रोटकसट्टकरासकादिसंग्रहः'—अभिनवभारती, भाग—दो, पृष्ठ ४४१

(ख) 'कोहलादिभिर्नामिमात्रं प्रणीतम्।'—अभिनवभारती, भाग—दो, पृष्ठ ४१०

५. अभिनवभारती, भाग-१, पृष्ठ १८३

के अतिरिक्त भी कुछ आचार्य थे, जिन्होंने इन रागकाव्यों पर कोहल के समान ही विचार व्यक्त किया रहा होगा। किन्तु ये दूसरे आचार्य कौन थे? चिरन्तन कौन हैं? आज इनका निर्णय कर पाना कठिन है। परन्तु इतना अवश्य है, कि—इन काव्यों पर प्रमुखता से विचार कोहल ने ही किया होगा, तभी इनका नाम सर्वप्रथम परिगणित है।

विश्वनाथ शारदातनय आदि परवर्ती नाट्यशास्त्रियों ने, जिन मञ्चनीय स्वरूपों को उपरूपकों या अन्यरूपकों में परिगणित किया है, उनमें से अधिकांश के नाम नृत्यात्मक रागकाव्य के रूप में अभिनवगुप्त ने कोहल को सन्दर्भित करते हुए, इस प्रकार प्रस्तुत किया है—डोम्बिका, भाण, प्रस्थान, भाणिका, विद्गक, रामाक्रीड, हल्लीसक एवं रासक[१]। इनसे भिन्न स्थल पर त्रोटक, सट्टक, रासक आदि को नाटकीय स्वरूप के रूप में प्रस्तुत किया है।[२] इन तीनों के साथ आदि शब्द के प्रयोग से यह अनुमान किया जा सकता है कि—इनके अलावे प्रकरणिका, नाटिका आदि का भी कोहल के उल्लेख किया होगा। कोहल ने इन सभी काव्य रूपों पर विस्तार से विचार नहीं किया है। जैसाकि इस सम्बन्ध में अभिनवगुप्त ने कहा है कि 'तेषां परं कोहलादिभिर्नाममात्रं प्रणीतम्।'[३] अभिनव-भारती के परिशीलन से ऐसा लगता है कि यहाँ वर्णित डोम्बिका आदि वस्तुतः नृत्त के विविध रूप हैं, क्योंकि अभिनवगुप्त ने इनका उल्लेख नाट्यशास्त्र के नृत्त के प्रसङ्ग[४] में किया है। इनके भेदों में कुछ के साथ स्पष्टतः प्रयुक्त नृत्त शब्द इस तथ्य को और भी स्पष्ट कर देता है, जैसा कि हल्लीसक का लक्षण है—

मण्डलेन तु यन्नृत्तं हल्लीसकमिति स्मृतम्।

एकस्तत्र तु नेता स्याद्गोपस्त्रीणां यथा हरिः।।

---

१. अभिनवभारती, भाग-१, पृष्ठ १८२

२. 'उक्तव्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटकसट्टकरासकादिसंग्रहः।'-अभिनवभारती, भाग-२, पृष्ठ ४४१

३. अभिनवभारती, भाग-२, पृष्ठ ४०१

४. 'ये गीतकादौ युज्यन्ते सम्यङ्नृत्तविभागकाः।
देवेन चापि सम्प्रोक्तस्तण्डुस्ताण्डपूर्वकम्।।'—नाट्यशास्त्र-४/२६७

नृत्त के सम्बन्ध में जैसा कहा है, कि—यह ताल और लय पर आश्रित होता है।[1] राग (लग) एवं तदनुसार नृत्त की व्यवस्था से युक्त काव्यरूपता को प्राप्त होने के कारण, इन्हें नृत्तात्मक रागकाव्य इस रूप में सम्बोधित किया गया होगा। दशरूपक के टीकाकार धनिक ने डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य को नृत्य के सात भेदों के रूप में उल्लेख किया है।[2]

इस प्रकार यहाँ यह स्वीकार करना भी उचित प्रतीत होता है, कि यद्यपि डोम्बिका आदि रूपकों की भाँति रङ्गमञ्च की वस्तु थे, फिर भी ये कोहल के समय नृत्त रूप में ही विद्यमान रहे होंगे। कोहल से पूर्व उनकी कोई परम्परा मात्र रही होगी तथा सर्वप्रथम कोहल ने इन लोकनृत्तों का अध्ययन कर, इन्हें शास्त्रीय रूप प्रदान किया होगा। यही कारण है कि निरन्तर विकास करके अंततः उपरूपक के स्तर को प्राप्त कर लेने पर भी ये कोहल के नाम से ही आज भी स्मरण किये जाते हैं। दूसरी विशेष बात यह है कि—सट्टक, त्रोटक, रासक आदि जैसे कुछ अभिनेय काव्य तो कोहल के समय ही उपरूपक की स्थिति मे रहे होंगे, जो दश प्रसिद्ध नाट्य भेदों के संकीर्णन की उपज थे; यही कारण है कि कोहल ने इनका अलग से उल्लेख किया है। 'रासक' शब्द यद्यपि दोनों समूहों में है, किन्तु प्रथम में यह नृत्त रूप में एवं द्वितीय में नाट्य रूप में हो सकता है। इसी द्वितीय वर्ग वाले को बाद में 'नाट्य-रासक' नाम दिया गया होगा, जैसा कि अग्निपुराण में उन दोनों को ही 'रासक' एवं 'नाट्यरासक' नाम देते हुए, अलग-अलग नाट्य रूप में ग्रहण किया गया है।[3]

यहाँ यह अनुमान किया जा सकता है, कि कोहल को ये सभी अभिनेय रूप दश प्रसिद्ध नाट्य रूपों से भिन्न, किन्तु मञ्चनीय रूप में उपलब्ध हुए होंगे। अतः सभी को एक वर्ग में परिगणित कर दिया होगा। जिनमें से कुछ तो उस समय ही उपरूपक की कोटि के योग्य थे तथा कुछ विकास की प्रक्रिया में थे, जो बाद में उपरूपक की कोटि को प्राप्त कर सके।

---

१. 'नृत्तं ताललयाश्रयम्'-दशरूपक-१/९

२. दशरूपक-अवलोकटीका, श्रीनिवास शास्त्री, पृष्ठ ९

३. '...रासक...नाट्यरासक...सप्तविंशतिधैव तत्।'—अग्निपुराण, पृष्ठ ३६९

(ग) उपरूपकों की विकास प्रक्रिया—

उपरूपकों के विकास के दो मार्ग परिलक्षित होते हैं, प्रथम—नृत्त एवं नृत्य के मार्ग से विकसित एवं दूसरा—नाट्यों के संकीर्णन से उद्भूत।

(१) नृत्त एवं नृत्य के मार्ग से उपरूपक का विकास—डोम्बिका आदि के विषय में जैसा अनुमान किया गया है, कि ये कोहल के समय नृत्त रूप में विद्यमान थे। धनिक ने इन्हें नृत्य कहा है। विश्वनाथ आदि के समय इन्हें अन्यरूपक या उपरूपक नाम से संबोधित किया गया है। यहाँ प्रश्न उठता है कि—एक ही स्वरूप को कभी नृत्त, कभी नृत्य और कभी अन्यरूपक अर्थात् नाट्य क्यों कहा गया है? इसके समाधान हेतु तीनों का स्वरूप एवं उनके आपसी अन्तर को स्पष्ट करना आवश्यक है।

नृत्त, नृत्य एवं नाट्य में अन्तर—नृत्त के सम्बन्ध में जैसा कहा जा चुका है कि—यह ताल और लय पर आश्रित होता है। यह नृत्य[१] (अन्यदभावाश्रयम् नृत्यम्) एवं नाट्य[२] (अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्) से भिन्न है। यद्यपि अङ्गों का संचालन एवं गतिशीलता तीनों विधाओं में पायी जाती है। किन्तु कुछ अङ्ग संचालन ऐसा होता है, जो भाव विशेष को अभिव्यक्त नहीं करता, केवल ताल और लय का अनुसरण करता है और इस प्रकार आनन्द साधना का कारण होता है; यही नृत्त है।[३] जहाँ नाट्य रसाश्रित एवं अभिनययुक्त होता है; नृत्य भावाश्रित, अभिनय एवं शास्त्रीय अङ्ग संचालन से युक्त होता है; वहीं नृत्त में न रस होता है, न भाव, न अभिनय। इसमें ताल एवं लय पर आधारित अङ्ग संचालन मात्र होता है और वह भी शास्त्रीय न होकर लोकसरणि पर आधारित होता है। नृत्त किसी अर्थ की अपेक्षा नहीं करता। यह अभिनय की शोभा मात्र बढ़ाता है।[४]

नृत्य का जहाँ तक प्रश्न है, इसमें किसी भाव का अभिनय करते हुए, अङ्ग संचालन किया

---

१. दशरूपक—१/९

२. दशरूपक—१/७

३. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १७९

४. वही, पृष्ठ १७९

जाता है। इसमें पदार्थ का अभिनय किया जाता है। इसमें केवल आङ्गिक अभिनय होता है। कभी-कभी आहार्य का समावेश भी कर दिया जाता है, किन्तु वाचिक एवं सात्विक अभिनय इसमें नहीं होता। यह केवल देखने की वस्तु है, सुनने के लिए इसमें कुछ नहीं होता।[१]

नाट्य, नृत्य से आगे की स्थिति है, जिसमें सम्पूर्ण अभिनय होता है। इसमें रस की पूरी सामग्री प्रस्तुत की जाती है। विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भाव-सब कुछ अनिवार्य रूप से अभिनीत किया जाता है। इसमें चारों प्रकार के अभिनयों का आश्रय लिया जाता है। अनुकरण की पूर्णता ही उसका प्रमुख लक्षण है तथा रसानुभूति इसका चरम उद्देश्य है।[२]

उपरूपकों के विकास में नृत्त एवं नृत्य की भूमिका—इस तथ्य से अस्वीकार नहीं किया जा सकता, कि जनता अपने वातावरण तथा रुचि के अनुकूल विनोद का साधन स्वभावतः निकाल लेती है। अपने समुदाय के अनुरूप जन-काव्य एवं जन-नाटक का सृजन करने के उदाहरण आज भी मिलते हैं, जिनसे लक्ष-लक्ष सामान्य-जन दृश्य तथा श्रव्य काव्य का रसास्वादन करते रहते हैं। वस्तुतः काव्य की समस्त विधाओं का मूलस्रोत साधारण जन-समुदाय ही होता है, भले ही परिष्कृत रूप के प्रणेता मनीषी कवि या लेखक माने जायँ। उपरूपकों का विकास भी जन–समुदाय के बीच हुआ है, किन्तु इसके विकास में नृत्त की भूमिका मील के पत्थर की भाँति है। जैसा अनुमान किया गया है कि डोम्बिका आदि प्रारम्भिक चरण में नृत्त रूप में थे, जिनमें लोकसरणि के आधार पर ताल और लय के अनुसार अङ्ग विक्षेप मात्र होता था।

अन्य अनेक प्राचीन आचार्यों द्वारा भी कुछ नये एवं कुछ परम्परागत भेदों का नामोल्लेख किया गया है। जैसे कि—भामह ने प्रबन्ध का वर्गीकरण करते हुए शम्पा, द्विपदी, रासक, स्कन्दक का उल्लेख किया है।[३] दण्डी ने लास्य, छलिक, शम्पा का नाम लिया है।[४] वात्स्यायन ने कामसूत्र में

---

१. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १७९

२. वही, पृष्ठ १७९

३. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४५

४. वही, पृष्ठ ५४५

हल्लीसक, नाट्यरासक, प्रेक्षणक का प्रसङ्ग उठाया है।[1] कुमारिल के तन्त्रवार्तिक में द्विपदी और रासक की परिगणना हुई है।[2] हेमचन्द्र ने अभिनवगुप्त द्वारा परिगणित भेदों के साथ श्रीगदित एवं गोष्ठी की गणना करके उन्हें गेय–रागकाव्य बतलाया है।[3] इनके विस्तृत विवेचन के अभाव में उनके तात्कालिक रूप को स्पष्ट पर पाना कठिन है। संभव है उनमें से कुछ नृत्त एवं कुछ नृत्य के रूप रहे हों। दशवीं शदी के दशरूपक के टीकाकार आचार्य धनिक ने स्पष्टतः नृत्य के सात भेद बताये हुए, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणी, प्रस्थान, रासक एवं काव्य की गणना की है।[4] इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है, कि—धनिक के समय तक नृत्त के कुछ रूपों ने, भावाश्रयता आदि तत्वों को अपने में समाहित कर, नृत्य की स्थिति को प्राप्त कर लिया था। अब इनके माध्यम से आङ्गिक अभिनय एवं उचित भाव–भङ्गिमा द्वारा भावों को जागरित करने का प्रयास किया जाने लगा था। किन्तु अभी भी ये उपरूपकत्व की स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाये थे, उनके विकास की प्रक्रिया अभी जारी थी।

आचार्य धनिक के परवर्ती काल में, हल्लीसक आदि के माध्यम से सात्त्विक अभिनय की ओर बढ़ते हुए, उचित विभावानुभाव आदि को संयोजित कर रस को उद्बुद्ध करने का प्रयास किया गया होगा। क्योंकि अब उपर्युक्त भेदों को हम अग्निपुराण में रूपकों के अन्तर्गत[5] भावकाशन में अन्यरूपकों के अन्तर्गत[6] एवं साहित्यदर्पण में उपरूपकों के अन्तर्गत[7] परिगणित पाते हैं।

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४५
२. वही, पृष्ठ ५४५
३. वही, पृष्ठ ५४५
४. दशरूपक—१/८
५. अग्निपुराण, पृष्ठ ३६५
६. भावप्रकाशन—९/२
७. साहित्यदर्पण—६/४-६

(२) **रूपकों के सङ्कीर्णन से उपरूपकों की उत्पत्ति**—रसानन्द की दृष्टि से नाटक-प्रकरण जैसे रूपकों का विशेष महत्त्व रहा है। किन्तु उनके सर्वाङ्ग पूर्ण विस्तृत कलेवर के कारण, उनके मञ्चन हेतु विस्तृत योजना की अपेक्षा एवं मञ्चन के दौरान पूर्णरसानुभूति हेतु, लम्बे समय का समायोजन आवश्यकता होता है। अतएव ऐसे नाट्य रूपों की आवश्यकता महसूस की गयी होगी, जो अपेक्षाकृत कम समय में यहीं आनन्द प्रदान करें, जो लम्बी-चौड़ी योजना एवं दीर्घ काल की प्रतीक्षा के बाद नाटकों एवं प्रकरणों से मिलता है। नाटिका, प्रकरणिका, सट्टक, त्रोटक जैसे नाट्य रूप मानव मन की उसी भूख के परिणाम प्रतीत होते हैं। नाटिका का उल्लेख 'नाटी' नाम से सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र में ही मिलता है, जहाँ उसे स्पष्टतः नाटक एवं प्रकरण के सङ्कीर्णन का परिणाम बताया गया है।[1] भरत द्वारा प्रयुक्त नाटी शब्द से कुछ आचार्य प्रकरणिका[2] एवं कुछ सट्टक[3] का अर्थ भी लेते हैं। नाटिका, प्रकरणिका, सट्टक आदि के लक्षणों में विभिन्न रूपकों के अनेक प्रमुख तत्त्वों के दर्शन होते हैं, जो इनकी संकीर्णन के परिणाम स्वरूप हुई उत्पत्ति को प्रमाणित करते हैं।

इस प्रकार उपरूपकों के अन्तर्गत एक वर्ग उन उपरूपकों का है जो प्रसिद्ध नाट्य रूपों से उद्भूत हैं तथा एक वर्ग उन उपरूपकों का है, जो नृत्त एवं नृत्य के विकास के परिणाम है। उपरूपकों की उत्पत्ति का यह दो वर्ग, इन दो मार्गों का प्रमुखता से आश्रय लेने के कारण ही किया गया है। वैसे प्रत्येक उपरूपक के विकास में दोनों ही मार्गों का सम्मिलित सहयोग रहा है। जैसाकि नाटिका आदि में नृत्य जैसे दूसरे मार्ग के तत्त्व को प्रमुखता प्राप्त है, जबकि हल्लीसक आदि में हम वस्तु, नेता, सन्धि आदि रूपकों के तत्त्वों की योजना भी पाते हैं, जो इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं।

---

१. 'अनयोश्च बन्धयोगादेको भेदः प्रयोक्तृभिर्ज्ञेयः।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रिते काव्ये।।'—नाट्यशास्त्र २०/६०-६१

२. गणरत्नमहोदधि, वर्धमान (११४० ई०)—वी० राघवन द्वारा सूचित, शृङ्गारप्रकाश, पृष्ठ ५३९

३. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन, पृष्ठ ५४०

उपरूपकों का स्वरूप

उपरूपकों को कुछ आचार्यों ने नृत्य माना है, क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य दर्शकों के मन में उचित भाव-भंगिमा द्वारा भावों को जागरित करना है, किन्तु ऐसा नहीं प्रतीत होता कि नृत्य ही उपरूपक हैं, अन्यथा ये पर्यायवाची शब्द के रूप में व्यवहृत होते । शारदातनय ने इनके २० भेद बताने के बाद उल्लिखित किया, कि इनमें से श्रीगदित, रासक, भाण, भाणी, प्रस्थानक, नाट्य-रासक एवं काव्य ये सात कुछ विद्वानों के अनुसार नृत्य के भेद हैं और कुछ लोग सभी को नृत्यात्मक कहते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि नृत्य एवं उपरूपक दोनों में भेद है। नृत्य नाट्य के उपकारक होते हैं, ऐसे में यह अलग बात है कि उपरूपक में नृत्य की बहुलता होती है, क्योंकि अधिकांश उपरूपकों की उत्पत्ति नृत्यों से हुई है। इसीलिए इन उपरूपकों को नृत्यात्मक कहा गया है, जो सर्वथा उचित भी है।

उपरूपकों को यह नाम दिये जाने से स्पष्ट है, कि उन्हें द्वितीय श्रेणी का ही माना गया है तो क्या? परन्तु नाट्य कोटि में ही स्वीकार किया गया है। इन्हें हम रामचन्द्र–गुणचन्द्र द्वारा 'अन्य रूपक' नाम दिये हुए तथा अग्निपुराणकार द्वारा रूपकों में परिगणित किये हुए तक देख चुके हैं। इस प्रकार उपरूपक में भी अवस्था का कुछ सीमा तक अनुकरण होता है, यह स्वीकार करना चाहिए। नृत्य में जैसा सर्वविदित है कि सब कुछ दर्शनीय रहता है, श्रवणीय कुछ भी नहीं। जबकि नाट्य में दृश्य के साथ-साथ श्रवणीय भी बहुत कुछ होता है। उपरूपकों में भी यह विशेषतायें पायी जाती हैं।

यद्यपि यह सही है कि इनमें उचित भाव-भङ्गिमा द्वारा भावों को उद्बुद्ध किया जाता है। किन्तु इसमें नृत्य की भाँति मात्र आङ्गिक अभिनय ही नहीं होता, अपितु वाचिक एवं आहार्य अभिनय भी होता है, साथ ही इनमें सात्त्विक अभिनय एवं रस बोध के प्रति आग्रह भी देखा जा सकता है। नाटिका, सट्टक आदि जैसे कुछ उपरूपक तो केवल भोवोद्बोधन ही नहीं, अपितु बहुत हद तक रसानुभूति कराने में भी समर्थ होते हैं। इस प्रकार उपरूपक को नृत्य एवं रूपक के बीच की कोटि का मानना उचित प्रतीत होता है। लेकिन इनमें उपकारक के रूप में नृत्य की प्रमुख भूमिका होती है, यह अवश्य स्वीकार करना होगा।

उपरूपकों के भेद

उपरूपकों की संख्या के प्रश्न पर आचार्यों में मतैक्य नहीं है। भोजराज ने बारह उपरूपक बताये हैं। वह परवर्ती विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा बताये गये सट्टक एवं नाटिका को उपरूपकों के अन्तर्गत नहीं रखते।[१] रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्यदर्पण में अन्य रूपक नाम से उनकी संख्या १३ बताई है, जो इस प्रकार है—सट्टक, श्रीगदित, दुर्मल्लिका, गोष्ठी, हल्लीस, प्रेक्षणक, रासक, नाट्य-रासक, काव्य, भाण और भाणिका।[२] साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने उपरूपकों के १८ भेद बताये हैं, जो इस प्रकार हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्य-रासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खणक, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीस एवं भाणिका।[३] आचार्य शारदातनय ने इनके २० भेद बताये हैं। त्रोटक, नाटिका, गोष्ठी, संलापक, शिल्पक, डोम्बी, श्रीगदित, भाण, भाणिका, प्रस्थान, काव्य, प्रेङ्खाणक, नाट्रासक, लासक (रासक), उल्लोप्यक, हल्लीस, दुर्मल्लिका, कल्पवल्ली, मल्लिका एवं परिजात।[४]

इन दोनों सूचियों में १५ नाम ही एक से हैं। विश्वनाथ के तीन भेद सट्टक, विलासिका, प्रकरणिका नये हैं। शारदातनय के ५ भेद—डोम्बी, भाण, मल्लिका, कल्पवल्ली एवं पारिजात नये हैं। इस प्रकार दोनों आचार्यों की सूचियों को मिलाने पर उपरूपक के कुल २३ भेद हो जाते हैं। शास्त्रीय ग्रन्थों में उपरूपकों की न्यूनाधिक संख्या इस बात का प्रमाण है, कि–इस विधा पर सामाजिक परिवेश की छाया बहुत अधिक है। जैसा समय आता गया, नये-नये प्रकारों की परिकल्पना की जाती रही और कभी-कभी पुरानी विधाओं का लोप होता गया।[५]

---

१. शृङ्गारप्रकाश, वी० राघवन

२. नाट्यदर्पण, पृष्ठ १९०

३. साहित्यदर्पण—६/४-६

४. भावप्रकाशन—९/२

५. भारतीय नाट्यशास्त्र और रङ्गमञ्च, डॉ० रामसागर त्रिपाठी, पृष्ठ १८७

सट्टक का परिचय एवं लक्षण

शोधार्थ गृहीत कृतियाँ 'कर्पूरमञ्जरी' एवं 'शृङ्गारमञ्जरी' को आचार्यों ने दृश्य काव्य के सट्टक नामक भेद के अन्तर्गत स्वीकार किया है। अतएव सट्टक के विषय में विशेष रूप से विचार करना अपेक्षित हो जाता है।

सट्टक का उद्भव—

सट्टक विधा का प्राचीनतम उपलब्ध उदाहरण राजशेखर-रचित कर्पूरमञ्जरी है, सौभाग्य से आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी में ही सट्टक का लक्षण प्राप्त होता है।[१] वैसे अभिनवगुप्त ने कोहल के नाम से सट्टक का उल्लेख किया है,[२] तथा राजशेखर कृत कर्पूरमञ्जरी को इसका उदाहरण माना है।[३] राजशेखर के पूर्ववर्ती काल में साडिक या साटक शब्द का प्रयोग नाट्य अभिनय के लिए मिलता है, किन्तु इसका स्वरूप ज्ञात नहीं है।[४] ई०पू० २०० के भरहुत के स्तूप के लेख में या साडक साटक शब्द मिलता है, जो सट्टक का पूर्व रूप प्रतीत होता है।[५]

यद्यपि व्याकरणीक रूप से 'सट्टकम्' पद चुरादिगणीय, देने या लेने या रहने या क्षति पहुँचाने अथवा बलवान होने के अर्थ वाली सट्ट धातु से ण्वुल प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है।[६] किन्तु यहाँ सट्टक शब्द को व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध करने की अपेक्षा उसके भाषागत विकास के आधार पर, इस पर विचार करना अधिक उचित होगा, क्योंकि उपरूपकों के लोक में प्रचलित नृत्त से

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/६

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८१

३. अभिनवभारती, भाग–२, पृष्ठ ५३६

४. नाट्यकला प्राच्य एवं पाश्चात्य, डॉ० सुदर्शन मिश्र, पृष्ठ ११७

५. (क) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१०

(ख) राजशेखर्स कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १९५

६. संस्कृत-हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ १०६१

उद्भूत होने की संभावना अधिक है तथा शास्त्रीय या नाट्यशास्त्रीय नियमों के आधार पर गढ़कर बने होने की संभावना अत्यल्प। लगभग ऐसा ही विचार रखते हुए डॉ० ए०एन० उपाध्ये महोदय ने 'चन्द्रलेहा' सट्टक की प्रस्तावना[१] में लिखा है कि—"संभवतः यह (सट्टक) द्रविड़ भाषा का शब्द है, 'क' प्रत्यय को हटा देने पर इसमें दो शब्द रह जाते हैं–'स' और 'अट्ट' या 'आट्ट'। संभवतः यह पहले किसी लुप्त विशेषण का विशेष्य था। द्रविड़ शब्द आट्ट या आट्टम् का अर्थ नृत्य या अभिनय होता है, जो मूल धातु अड्ड या आड्ड से बना है, जिसका अर्थ नाचना या हावभाव दिखाना होता है। यदि मूलशब्द नाचना होगा तब लुप्त शब्द रूपक होगा। अतएव नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन को सट्टक कहा जायेगा।"

किलष्ट कल्पना से युक्त इस मत को स्वीकार करने में कई आपत्तियाँ हो सकती हैं। प्रथम यह कि अगर नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन होने के कारण उसे सट्टक कहा गया है, तो सभी उपरूपक नृत्ययुक्त नाटकीय प्रदर्शन ही हैं, इस प्रकार तो सभी सट्टक कहलाने के अधिकारी थे, तो फिर अन्य उपरूपकों से इसकी भिन्नता क्या रही? इस आधार पर सट्टक शब्द उपरूपक का पर्याय मात्र हो सकता था, किन्तु ऐसा बिल्कुल नहीं है। दूसरी मुख्य आपत्ति यह है कि इसमें उपसर्ग की भाँति जुड़े 'स' एवं प्रत्यय की भाँति जुड़े 'क' का कोई प्रयोजन नहीं समझ में आता। इसमें किसी प्रकार काट छाँट कर के, नृत्य अर्थ देने वाले द्रविड़ शब्द अट्ट को प्राप्त करने का प्रयास मात्र दिखाई पड़ता है। तीसरी बात यह कि सट्टक को द्रविड़ शब्द आट्ट से जोड़ने का प्रयास किया गया है, जबकि सट्टक के प्राकृत साहित्य की विधा होने के कारण इसे प्राकृत भाषा से ही सम्बद्ध होना चाहिए, न कि द्रविड़ या अन्य किसी भाषा से।

उपर्युक्त मत के विपरीत सट्टक शब्द के साटक या साडक शब्द का विकसलित रूप होने की सम्भावना अधिक प्रतीत होती है, जैसा कहा गया है कि यह शब्द भरहुत के स्तूप में मिलता है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भूमिका में डॉ० जगन्नाथ जोशी द्वारा सूचित

जैसी प्रसिद्धि है कि हिन्दी भाषा के साड़ी शब्द की व्युत्पत्ति प्राकृत भाषा के साडिआ[१] शब्द से हुई है, जिसका संस्कृत रूप शाटिका है।

शाटिका एवं साटक शब्द में पर्याप्त ध्वनि साम्य है, यह सम्भव है कि शाटिका शब्द साटक शब्द से ही निष्पन्न हो। साटक शब्द एवं सट्टक शब्द तो निश्चय ही एक ही है। जिस प्रकार अज्ज शब्द से आज, अग्ग शब्द से आग, पञ्च से पाँच बनता है, उसी प्रकार सट्टक से साटक बनता है। अतः इसकी सम्भावना है कि साटक या सट्टक शब्द आरम्भिक काल में वस्त्र विशेष के लिए प्रयुक्त होता होगा, जो नारी या नर द्वारा धारण किया जाता रहा होगा। अतएव यह सम्भव है कि, साटक वस्त्र की यवनिका बनाकर अभिनीत नृत्य या नाट्य के लिए साटक या सट्टक शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हो गया हो; जो आगे चलकर उस नाट्य भेद के लिए रूढ़ हो गया हो, जिसमें साटक का प्रयोग यवनिका के लिए होता हो।

जैसा कहा गया है, कि उपरूपक जन सामान्य में प्रचलित परम्पराओं से उद्‌भूत हैं। सट्टक की प्राकृत भाषा इस मन्तव्य को और पुष्ट करती है, जो कि जन सामान्य की भाषा रही है। जन सामान्य अपने पास आसानी से उपलब्ध सामग्रियों का ही प्रयोग नृत्य, नाट्य आदि में करते रहे होंगे। ऐसे सन्दर्भ आज भी मिलते हैं। अतः सट्टक के सन्दर्भ में यह सम्भव है कि जन सामान्य किसी नाट्य गृह की अपेक्षा न करते हुए, जहाँ कहीं भी अपने पास आसानी से उपलब्ध हो जाने वाले साटक वस्त्र की यवनिका बनाकर, अपनी लोक भाषा में, नाट्य का अभिनय करते होंगे। यहीं से यह परम्परा साटक वाले नाट्य के रूप में प्रसिद्ध होकर सट्टक इस नाम को प्राप्त कर सकती होगी।

सट्टक में अङ्क के लिए जवनिकान्तर शब्द का प्रयोग इस अनुमान को पुष्ट करता है, कि इसमें

---

१. साडिआ शब्द का प्रयोग स्वयं राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में साड़ी के अर्थ में किया है—

विचक्षणा—'तहिं गच्छ जहिं मे पढमा साडिआ गदा।

(तत्र गच्छ यत्र मे प्रथमा शाटिका गता)'—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

यवनिका का विशेष महत्त्व रहा होगा, उसमें यह आकर्षण उसकी विशेष बनावट के कारण ही संभव है; जो साड़ी आदि जैसे सामान्य वस्त्र से निर्मित रही होगी। इस सम्बन्ध में डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित महोदय ने भी अनुमान किया है, कि यवनिका सट्टक वस्त्र की बनी होगी, इसलिए यह सट्टक नाम से प्रसिद्ध हुई होगी।[1] यह भी संभव है कि आसानी से पर्याप्त मात्रा में साटक (साड़ी) वस्त्र मिल जाने के कारण रोचकता के लिए क्रमशः लगी हुई एकाधिक यवनिकायें बनायी जाती हों, जिनकी संख्या कविकृत सट्टक की जवनिकान्तर संख्या के बराबर निश्चित की जाती हो तथा जिन्हें एक-एक करने हर जवनिकान्तर के प्रारम्भ में हटाया जाता हो। तभी एक यवनिका से दूसरी यवनिका के बीच प्रदर्शित भाग के लिए जवनिकान्तर शब्द का प्रयोग प्रारम्भ हुआ होगा।

सट्टक का लक्षण—

आज सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी में सट्टक का लक्षण उपलब्ध होता है। जिसके अनुसार जिस प्रबन्ध में नाटिकाओं का पूरा-पूरा अनुकरण हो, केवल प्रवेशक और विष्कम्भक न पाये जायँ, उसे सट्टक कहते हैं।[2] सट्टक की भाषा का जहाँ तक प्रश्न है, यद्यपि राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी को प्राकृत भाषा में निबद्ध किया है, लेकिन वे इसलिए उसे प्राकृत भाषा में नहीं लिखते कि सट्टक को प्राकृत में लिखा जाना चाहिए, अपितु प्राकृत का आश्रय उन्होंने इसलिए लिया है कि, यह संस्कृत की अपेक्षा मृदुलतर है।[3] किन्तु अभिनवगुप्त ने कर्पूरमञ्जरी के प्राकृत भाषा में निबद्ध होने को आधार मानते हुए सट्टक की भाषा को प्राकृत होना स्वीकार किया है—

---

१. भरत एवं भारतीय नाट्यकला, डॉ० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

२. 'सो सट्टओ त्ति भणई दूरं जो णाडिआइं अणुहरइ।
किं उण एत्थ पबेस अबिक्कंभाईं ण केवलं हींति।।
(तत् सट्टकमिति भण्यते दूरं यो नाटिका अनुकरोति।
किं पुनरत्र प्रवेशकविष्कम्भकौ न केवलं भवतः।।)'—कर्पूरमञ्जरी—१/६

३. कर्पूरमञ्जरी—१/७—१/८

तथाहि शृङ्गाररसे सातिशयोपयोगिनि(नी) प्राकृतभाषेति।

सट्टककर्पूरमञ्जर्याख्यः राजशेखरेण तन्मात्र एव निबद्धः।।[1]

भोजराज ने यद्यपि सट्टक के सम्बन्ध में कुछ अधिक ही लिखा, किन्तु भाषा के सम्बन्ध में उनकी परिभाषा अस्पष्ट हैं। सट्टक एक भाषा में हो इतना तो स्पष्ट है, किन्तु यह भाषा प्राकृत, संस्कृत से भिन्न अपभ्रंश हो या प्राकृत यह स्पष्ट नहीं है—

विष्कम्भक प्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषयाभवति।

अप्राकृत(प्राकृतया) संस्कृतया(?) स सट्टको नाटिका प्रतिभः।।[2]

भोजराज-रचित परिभाषा में 'अप्राकृतसंस्कृतया' पद को नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने यथावत स्वीकार किया है।[3] हेमचन्द्र तथा वाग्भट्ट ने भी 'अप्राकृतसंस्कृतया' पद को यथावत प्रस्तुत किया है। इससे सट्टक की परिभाषा सम्बन्धी समस्या का समाधान नहीं हो पाता। अप्राकृतसंस्कृतया के आधार पर चिदम्बरम चक्रवर्ती महोदय ने कल्पना की है कि—अपभ्रन्श में सट्टक की रचना होती है।[4]

आचार्य शारदातनय ने सट्टक की परिभाषा प्रस्तुत करते हुए, प्रकृष्टप्राकृतमयी शब्द का प्रयोग कर भाषा सम्बन्धी संदेह को दूर करने का प्रयास किया है।[5] इसके इस विवेचन से स्पष्ट है कि सट्टक की भाषा के सम्बन्ध में अस्पष्टता उनके पूर्व-काल तक थी, किन्तु उनके समय तक स्पष्ट हो चुकी थी।

---

१. अभिनवभारती, भाग–२, पृष्ठ ५

२. शृङ्गारप्रकाश, पृष्ठ— ५४०-४१, वी० राघवन द्वारा संशोधित।

३. 'विष्कम्भकप्रवेशकरहितो यस्त्वेकभाषया भवति।
अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको नाटिका।।'—नाट्यदर्पण, भाग–१, चतुर्थ विवेक, पृष्ठ २१३

४. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली, भाग–७, पृष्ठ १७१-७२

५. '...प्रकृष्टप्राकृतमयी सट्टकं नामतो भवेत'—भावप्रकाशन–८/१५८

आचार्य सागरनन्दी ने 'नाट्लक्षणरत्नकोश' में सट्टक की सविस्तार चर्चा करते हुए कहा है– कि "इसका स्वरूप नाटिका के अनुकरण पर निर्मित किया जाता है। इसमें कौशिकी तथा भारती वृत्ति की प्रधानता रहती है। इसमें रौद्र, वीर, भयानक तथा वीत्स रस एवं अवमर्श सन्धि नहीं होती। जब निकान्तर द्वारा मध्यान्तर होते हैं। इसके भाषा शौरसेनी, प्राच्या या महाराष्ट्री प्राकृत होती है। नायक राजा होता है, जो स्त्री पात्रों के समान प्राकृत भाषा का व्यवहार करता है, तथा कार्यवश संस्कृत भाषा का भी व्यवहार किया जा सकता है। किन्तु भाषा को प्राकृत रखना ही अधिक अच्छा है; क्योंकि यह इसके स्वरूप की प्रमुख विशेषता है।[१] भावप्रकाशनकार शारदातनय इसके उपर्युक्त लक्षणों के साथ–साथ विष्कम्भक एवं प्रवेशक को अस्वीकार करते हैं।[२] आचार्य विश्वनाथ इसमें नाटिका के सभी तत्वों के साथ-साथ अद्‌भुत रस की योजना आवश्यक मानते हैं।[३] अलंकारसंग्रहकार अमृतानन्दयोगी इसमें शृङ्गार एवं अद्‌भुत रस आवश्यक मानते हैं।

सट्टक के लक्षण के प्रसङ्ग में प्रायः सभी आचार्यों ने इसे नाटिकावत् कहा है। अतएव उसके लक्षण का अवलोकन अपेक्षित है। भरत का अनुसार–"नाट्य एवं प्रकरण के बन्धयोग से रूपक का एक अन्य रूप प्राप्त होता है, जिसे नाटी (नाटिका) कहते हैं।" इसका इतिवृत्त उत्पाद्य होता है। इसमें नायक सम्राट होता है, स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है, चार अंक होता हैं। यह ललित अभिनय तथा अच्छी प्रकार से विहित अर्थ से युक्त होती है। अनेक प्रकार के गीत, पाठ तथा रति

---

१. अथ सट्टकम्। तच्च नाटिकाप्रतिरूपकं, कैशिकीभारतीप्रधानं रौद्रवीरभयानकवीभत्समवमर्शशून्यम्। यथा कर्पूरमञ्जरी। अन्तर्यवनिकान्तम्। यथाङ्के यवनिकाच्छेदा भवन्ति तथात्रापि। शौरसेनीप्राच्यामहाराष्ट्रीयुक्तम् स्त्रीवद् राज्ञोऽपि प्राकृतपाठः कार्यात् संस्कृतपाठः। तत्र रूपकमेवेदं कार्यमिति राज्ञापि प्राकृतपाठः कर्तव्यः।' —नाट्यलक्षणरत्नकोशः, पृष्ठ ३०४

२. 'सैव प्रवेशकेनापि विष्कम्भेन विनाकृता'—भावप्रकाशन–८/१५८

३. 'सट्टकं प्राकृतशेषपाठ्यं स्यादप्रवेशकम्।
   न च विष्कम्भोऽप्यत्र प्रचुरश्चाद्भुतो रसः।।
   अङ्का जवनिकाख्याः स्युः स्यादन्यन्नाटिकासमम्।'—साहित्यदर्पण—६/२७६–२७७

संभोग इत्यादि इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं। नाटिका राजकीय व्यवहारों से युक्त होती है, तथा इसमें क्रोध, प्रसादन वर्णित होते हैं। नायक, उसकी देवी, दूती तथा नौकरानियाँ इसमें मुख्य पात्र होते हैं। इसमें अल्पविमर्शयुक्त अथवा विमर्शशून्य सन्धियाँ होती हैं।[1] इस प्रकार कहा जा सकता है कि सट्टक में ये सभी विशेषताएँ होनी चाहिए।

सट्टक एवं नाटिका के वस्तु विधान में एक प्रमुख अन्तर विष्कम्भक एवं प्रवेशक को लेकर है। सट्टक में इसका निषेध एवं नाटिका में इसका विधान होता है। सट्टक में इनके निषेध का प्रश्न सम्प्रति विचारणीय है।

विष्कम्भक एवं प्रवेशक अर्थोपक्षेपक है, जिनके माध्यम से भूत एवं भविष्य के कथा के नीरस या अनुचित अंश को सूचित किया जाता है। सट्टक में इनके निषेध के प्रश्न पर यह अनुमान किया जा सकता है कि—चूँकि सट्टक नाट्य विधा जन सामान्य के अधिक निकट रही है, और जन-सामान्य के लिए कोई बात कह कर बताने की अपेक्षा, उन घटनाओं को जिस रूप में घटी है या घटने वाली है, मंच पर प्रस्तुत करके दिखाना, उनके लिए ज्यादे आह्लादकारक होता। संभवतः इसीलिए सट्टक में प्रवेशक एवं विष्कम्भक का विधान न करने के लिए कहा गया है। यहाँ यह भी संभावना की जा सकती है, कि दो जवनिकान्तरों के बीच कथा को नीरसतापूर्वक सूचित करने से भोले सामान्य दर्शकों के उद्‌बुद्ध भाव या रस में विघ्न होता, जो कवि को स्वीकार्य नहीं था, यही कारण है कि इसकी भाषा तक को प्राकृत ही रखा गया है—ताकि जन-सामान्य को आसानी से बोधगम्य हो।

इस प्रकार सट्टक के लक्षणों के अव्याख्यायित अंश के पर्यालोचनोपरान्त कहा जा सकता है कि—'सट्टक की कथावस्तु कविकल्पित होती है। इसका नायक प्रख्यात वंश का राजा होता है, जो धीरललित होता है। इसका अङ्गीरस शृङ्गार होता है। इसमें स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है तथा

---

१. (क) साहित्यदर्पण—६/२७०-२७२

(ख) दशरूपक—३/४३-४८

दो नायिकायें होती हैं। इसमें कैशिकी वृत्ति के चारों अंग प्रयुक्त होते हैं तथा तदुपयुक्त चार जवनिकान्तरों की योजना होती है। प्रवेशक एवं विष्कम्भक का प्रयोग इसमें नहीं होता। रौद्र, वीर, भयानक एवं वीभत्स रस इसमें नहीं होते जबकि अद्भुत रस अनिवार्यतः होता है। अवमर्श सन्धि इसमें या तो होती नहीं, यदि होती भी है तो अत्यल्प। और इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है कि इसकी भाषा प्राकृत होती है।'

सट्टक : रूपक अथवा उपरूपक

सट्टक को भोजराज ने रूपक के अन्तर्गत परिगणित किया है, तो विश्वनाथ जैसे आचार्यों ने उपरूपक माना है। वस्तुतः यह किस कोटि का है—सम्प्रति यह विचारणीय है।

रूपक एवं उपरूपक के सम्बन्ध में जैसा कहा जा चुका है, कि रूपक रसाश्रित एवं उपरूपक भावाश्रित होता है। सामान्य रूप से रस को भाव का ही एक रूप माना जाता है, क्योंकि यह भी आस्वादित होता है।[१] किन्तु सूक्ष्म रूप से विचार करने पर रस से इसकी भिन्नता स्पष्ट हो जाती है। रस जहाँ आनन्द की चरमस्थिति स्वरूप है, वहीं भाव अपेक्षाकृत अवरकोटि की आनन्दानुभूति कराने वाला होता है। किसी कृति में भाव एवं रस के निर्णय का जहाँ तक प्रश्न है, यह अत्यन्त कठिन कार्य है। क्योंकि रसानुभूति के स्तर पर दोनों के मध्य सीमा रेखा खींचने का कार्य अत्यन्त सूक्ष्म परीक्षण द्वारा ही सम्भव है। यह आनन्दानुभूति व्यक्ति की प्रवृति, सहृदयता आदि पर भी निर्भर रहती है। एक ही कार्य विशेष में अलग-अलग व्यक्ति के आनन्द की सीमा अलग-अलग हो सकती है। जैसे एक खिलौने से खेलने में बालक को जितना आनन्द आ सकता है, उतना किसी प्रौढ़ को नहीं। उसी प्रकार किसी काव्यकृति में एक व्यक्ति को जितना आनन्द आयेगा, कोई आवश्यक नहीं कि दूसरे को भी उतना ही आनन्द आये। इस प्रकार आनन्दानुभूति के स्तर से भाव एवं रस का निर्णय कर पाना कठिन है। वैसे उनकी विभावादि सामग्रियों को

१. साहित्यदर्पण, व्याख्याकार-शालिग्राम शास्त्री, पृष्ठ १२४

देखकर मोटा अनुमान अवश्य किया जा सकता है, कि भाव का उद्‌बोधन मात्र होगा अथवा रस की अनुभूति होगी। किन्तु यह भी तो संभव है, कि उपरूपक विशेष में रसानुभूति के योग्य विभावादि का संयोजन हो। अतः उपरूपक होकर भी वह रसानुभूति में समर्थ होगा। जैसाकि विक्रमोर्वशीयम् नामक त्रोटक में रसानुभूति के हेतुओं का पूर्णतः संयोजन मिलता है, फिर भी वह त्रोटक कोटि का उपरूपक है। अतएव यही कहना सही है कि—भावाश्रयता एवं रसाश्रयता ही उपरूपक एवं रूपक का निर्धारक नहीं है। हाँ यह अवश्य है कि अधिकतर उपरूपक भावाश्रित ही पाये जाते हैं, किन्तु कुछ रसाश्रित भी हो सकते हैं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

पदार्थाभिनय एवं वाक्यार्थाभिनय की जहाँ तक बात है, इनसे तात्पर्य मात्र आङ्गिक एवं सात्त्विक अभिनय से है, क्योंकि पद के अनुसार आहार्य एवं वाचिक अभिनय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। नाट्‌यकार द्वारा अपनी कृति में मात्र वाचिक अभिनय के विषय में ही कुछ निर्देश किया गया होता है। आहार्य, आङ्गिक एवं सात्त्विक अभिनय करने का उत्तरदायित्व तो पूरी तरह नट पर नाट्‌यकारों ने छोड़ रखा है, इसके लिए संस्कृत साहित्य में कोई भी निर्देश संभवतः प्राप्त नहीं होता। फिर किसी रूपक या उपरूपक को देखकर यह कैसे कहा जा सकता है कि, उसमें पदार्थाभिनय की बात है, अथवा वाक्यार्थाभिनय की। यहाँ भी इन अभिनयों के लिए प्रस्तुत सामग्री के आधार पर ही मोटा अनुमान किया जा सकता है। जिन उपरूपकों में नृत्यों का समायोजन कवि द्वारा किया गया हो, वहीं पदार्थाभिनय संभव है। वैसे प्रायः उपरूपकों में नृत्यों की योजना करने की परम्परा रही है। लेकिन सामान्य रूप से नृत्य का समावेश होना एवं उसकी प्रमुखता होना दोनों ही अलग-अलग बातें हैं। रूपकों में भी नृत्य के प्रसंग दिख जाते हैं। इसी प्रकार उपरूपकों में भी दिखते हैं। लेकिन सभी उपरूपकों में उसकी प्रधानता ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। निश्चय ही जो उपरूपक नृत्य मार्ग से उपरूपक की स्थिति को प्राप्त किये हैं उनमें नृत्य की प्रधानता

होती है; लेकिन जो रूपकों के संकीर्णन के परिणाम हैं, उनमें भी नृत्य की प्रमुखता अनिवार्य रूप से होती है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। अतएव यहाँ यही कहना उचित है कि—उपरूपकों में प्रायः नृत्य की प्रधानता होती है; परन्तु कुछ में उनके सामान्य रूप भी हो सकते हैं।

वास्तव में उपरूपकों एवं रूपकों के विभाजन का प्रमुख आधार क्या है? इसके उत्तर में यहाँ यही कहना उचित है, कि ये उपर्युक्त दोनों बिन्दु तो इसके निर्धारक हैं ही, क्योंकि जहाँ ये दोनों हैं वहाँ तो उपरूपक अवश्य है; जैसाकि अधिकांश उपरूपकों में पाया ही जाता है। लेकिन जहाँ ये दोनों बिन्दु निर्णय नहीं कर पा रहे हों वहाँ तीसरे का आधार लिया जा सकता है, और वह है संकीर्णता का होना। अर्थात् ऐसे नाट्यों में दश प्रसिद्ध रूपक भेदों की परिशुद्धता को देखा जाना चाहिए। अगर किसी नाट्य कृति में ऐसी परिशुद्धता नहीं है एवं एकाधिक रूपकों के तत्त्वों का समिश्रण मिलता है, तो वह निश्चय ही उन कोटियों से च्युत है और ऐसा नाट्य उपरूपक ही हो सकता है।

सट्टक का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें भावाश्रयता हो अथवा न हो, नृत्य का समायोजन हो अथवा न हो; किन्तु इतना अवश्य है कि उसमें एकाधिक रूपकों का संकीर्णन मिलता है। अतएव च्युत कोटि का होने से सट्टक उपरूपक कोटि में ही परिगणित होने योग्य है।

सट्टक साहित्य की परम्परा

राजशेखर-विरचित कर्पूरमञ्जरी उपलब्ध सट्टकों में सबसे प्राचीन है। यद्यपि इससे पूर्ववर्ती किसी सट्टक का कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता, फिर भी राजशेखर को इस विधा का प्रवर्तक नहीं मान सकते। क्योंकि राजशेखर अन्य प्रसङ्गों में अपने विषय में जिस प्रकार की गर्वोक्तियाँ करते हैं उससे यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि—यदि सट्टक विधा के आदि प्रवर्तक राजशेखर होते, तो निश्चित ही इसके प्रणेता का श्रेय अपने आप को देने से नहीं चूकते। दूसरी विशेष बात

यह कि सट्टक किसे कहते हैं? इस प्रश्न के उत्तर में उन्होंने विद्वानों ने कहा है,[१] यह कहकर सट्टक का लक्षण प्रस्तुत किया है। अतः निश्चय ही राजशेखर से पूर्व सट्टक के लेखन एवं मञ्चन की परम्परा रही होगी। जैसाकि अभिनव-गुप्त ने कोहल को सट्टक से परिचित बताया भी है। ई०पू० २०० के भरहुत के शिलालेख में प्रयुक्त सादिक, सट्टिक, साडक या साटक शब्द सट्टक का पूर्ववर्ती ज्ञात होता।[२]

यह स्वीकार कर लेने पर कि राजशेखर से पूर्व सट्टक लेखन की परम्परा थी, तब भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह परम्परा ज्यादे प्रचलित नहीं रही होगी। यही कारण है कि राजशेखर को अपने सट्टक की रचना के साथ-साथ उसका लक्षण भी प्रस्तुत करना पड़ा, जिससे जो सट्टक से अपरिचित हों वे भी इस सट्टक के विषय में जान जाएँ। यह भी स्पष्ट है कि सट्टक का स्वरूप भी राजशेखर के समय पूरी तरह निर्धारित नहीं रहा होगा, तभी राजशेखर उसकी भाषा के सम्बन्ध में स्वतन्त्र दिखते हैं। इन्होंने प्राकृत में सट्टक की रचना इसलिए नहीं की, कि सट्टक प्राकृत में लिखा जाता है। अपितु अधिकाधिक सरसता के लिए संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का इन्होंने आश्रय लिया।[३] बाद के भी कुछ आचार्यों ने सट्टक को संस्कृत या प्राकृत किसी भी भाषा में लिखने की छूट दी है।[४] अतः यह अनुमान किया जा सकता है, कि राजशेखर से पूर्व संस्कृत या प्राकृत में निबद्ध सट्टकों का अस्तित्व रहा होगा।

राजशेखर के पूर्व-कालिक सट्टकों के विषय में यह अनुमान करना अनुचित न होगा, कि—

---

१. 'कधिदंच्चेब्ब छइल्लेहिं' (कथितमेव विदग्धैः)—कर्पूरमञ्जरी, प्रथम जवनिकान्तर, पृष्ठ ६

२. (क) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४११

(ख) राजशेखर्स कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १९५

३. कर्पूरमञ्जरी—१/८

४. (क) '...अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको...।'—शृङ्गार-प्रकाश, बी० राघवन, पृष्ठ ५४०

(ख) "...अप्राकृतसंस्कृतया स सट्टको...।" नाट्यदर्पण, ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, पृष्ठ २१३

हो सकता है उसका अस्तित्व आज के भोजपुरी भाषी क्षेत्रों में प्रचलित 'गोड़नचिया' नामक लोकनाट्य की तरह या उत्तर भारत में प्रचलित 'नौटंकी' की तरह का रहा हो, जो साहित्य का विषय न होकर केवल मञ्च तक ही सीमित रहा हो तथा केवल परम्परा द्वार सुन-सुनकर मञ्चित होता हो अथवा अपरिष्कृत साहित्य के रूप में निबद्ध होने के कारण उत्कृष्ट कोटि के रूपकों के मध्य अपने अस्तित्व को बचाये रखने में असमर्थ होकर कालकवलित हो गया हो।

वास्तविकता चाहे जो हो इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि—राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी ने बीज रूप में विद्यमान या मृतप्राय हो चुकी सट्टक विधा को जीवन प्रदान किया। कर्पूरमञ्जरी ने न केवल सट्टक के स्वरूप निर्धारण में अपना योगदान दिया, अपितु सट्टकों की कसौटी के रूप में प्रतिष्ठित होकर उस विधा को आगे बढ़ाने वालों के लिए प्रेरणा स्रोत एवं पथ प्रदर्शक बनी। रूपक को पूर्णतः प्राकृत में लिखने का यह प्रथम प्रयोग था, जो न केवल सफल रहा अपितु अत्यन्त लोकप्रिय भी हुआ, क्योंकि यह लोकभाषा एवं लोकजीवन के निकट था।

कर्पूरमञ्जरी के बाद प्राप्त सट्टक साहित्य में नयचन्द्र-विरचित रम्भामञ्जरी, मार्कण्डेय कवीन्द्र-विरचित विलासवती, रुद्रदास-विरचित चन्द्रलेखाँ विश्वेश्वर पाण्डेय-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी तथा कण्ठीरव घनश्याम के तीन सट्टक—आनन्दसुन्दरी, वैकुण्ठचरित एवं एक अज्ञातनामा सट्टक के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[१] यहाँ पर उन सब सट्टकों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना प्रासङ्गिक होगा।

(क) कर्पूरमञ्जरी—

राजशेखर-प्रणीत कर्पूरमञ्जरी सट्टक चार जवनिकान्तरों में निबद्ध है, जिसमें राजा चन्द्रपाल एवं कुन्तलदेश की राजकुमारी कर्पूरमञ्जरी की प्रणय कथा वर्णित है। इस कृति में सट्टक का अत्यन्त सुन्दर एवं निखरा हुआ रूप प्रस्तुत है; उसने बाद के सट्टकों के रूप, कथानक तथा वर्णन प्रकार

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८१-८३

के ऊपर व्यापक प्रभाव डाला है। इस पर अनेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। इसके टीकाकारों में कामराज धर्मदास, पीताम्बर, धर्मचन्द्र, कृष्णसूरि, नृसीमहाराज, अनन्तदास आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।[१] इसके कई संस्करण वर्तमान में प्रकाशित हैं।

कर्पूरमञ्जरी नामधारी अन्य कृतियाँ—कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रसङ्ग में यह कहना अनुचित न होगा कि—कर्पूरमञ्जरी नामक कम से कम दो अन्य कृतियाँ भी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होती हैं, जो सट्टक भिन्न विधा से सम्बद्ध हैं।

(i) कर्पूरमञ्जरी नामक एक कृति रजनीवल्लभ द्वारा प्रणीत हैं, जिसमें पौराणिक विषय पर आधारित विविध कविताएँ हैं।[२]

(ii) बाल कवि (१५३७ ई०) द्वारा प्रणीत कर्पूरमञ्जरी नामक एक अन्यकृति के विषय में भी सूचना प्राप्त होती है।[३]

(ख) रम्भामञ्जरी—

रम्भामञ्जरी सट्टक पन्द्रहवीं सदी के प्रसिद्ध जैन कवि नयचन्द्र द्वारा रचित है। इसमें काशी के राजा जयचन्द्र के रम्भा नामक सुन्दरी से विवाह करने का विचित्र प्रबन्ध प्रस्तुत किया गया है। इसमें तीन ही जवनिकान्तर हैं तथा कहीं-कहीं संस्कृत के श्लोक भी आते हैं। यह सट्टक अधूरा प्रतीक होता है। साहित्यिक दृष्टि से यह कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा निम्न कोटि का है। यह निर्णय सागर प्रेस बम्बई से सन् १८८९ ई० में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ।[४]

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ६३०

२. वही, पृष्ठ ३०७

३. वही, पृष्ठ ७९२ एवं ६५६

४. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

(ख) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ- ४२६-३०

(ग) विलासवती—

सम्प्रति यह सट्टक उपलब्ध नहीं है। इसके प्रणेता मार्कण्डेय कवीन्द्र ने इसका अपने ग्रन्थ 'प्राकृत-सर्वस्व' में निर्देश मात्र किया है।[१] वे १७वीं शदी के उत्तरार्द्ध के उत्कलनरेश मुकुन्ददेव के समकालीन थे।[२]

(घ) चन्द्रलेहा (चन्द्रलेखा)—

केरलदेशीय पारशववंशीय रुद्रदास द्वारा १६६० ई० के लगभग रचित चन्द्रलेहा सट्टक बहुत ही सुन्दर एवं सरस है। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता 'मानवेद' का अंग देश की राजकुमारी चन्द्रलेखा के साथ परिणय प्रसङ्ग का वर्णन बड़ा ही रोचक शैली में किया है। कर्पूरमञ्जरी की यत्र-तत्र छाया होने पर भी इस सट्टक की अपनी मौलिकता है। यह उपयोगी भूमिका के साथ डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये के सम्पादकत्व में भारती विधा ग्रन्थावली से १९४९ ई० में प्रकाशित हो चुका है।[३]

(ङ) शृङ्गारमञ्जरी—

इसके प्रणेता पं० विश्वेश्वर हैं, जो अपने युग के महान साहित्य स्रष्टा हैं। चार जवनिकान्तरों वाला यह सट्टक, काव्य की दृष्टि से बहुत ही प्रौढ़ रचना है। इसमें पं० विश्वेश्वर ने अपनी प्रतिभा के बल पर नवीन तथ्यों की उद्भावना की है। यद्यपि वे राजशेखर के पर्याप्त ऋणी हैं, परन्तु प्राकृत भाषा की, प्रवाहमयी सरस कविता लिखने में उनका प्रभुत्व अक्षुण्ण प्रतीत होता है, जो

---

१. 'पाणाअ गओ भमरो लब्भइ दुक्खं गइंदेसु।
सुहाअ रज्ज किर होइ रण्णौ।।—प्राकृतसर्वस्व—५/१३१

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

३. (क) वही, पृष्ठ ५८२
(ख) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१८-२२

निश्चय ही चमत्कारी है। इसके कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, जिसमें चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी भी एक है।[१]

शृङ्गारमञ्जरी नामधारी अन्य कृतियाँ—शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के प्रसङ्ग में यह ध्यातव्य है कि—संस्कृत भाषा में निबद्ध शृङ्गारमञ्जरी नामक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। ये सभी सट्टक भिन्न विधा से सम्बद्ध हैं, जिनका संक्षिप्त परिचय देना प्रासंङ्गिक होगा, जिससे शृङ्गारमञ्जरी सट्टक से उनकी भिन्नता स्पष्ट हो सके।

(i) भोज-कृत शृङ्गारमञ्जरी—यह धारा नरेश भोज (१०१८-१०६३ ई०) द्वारा रचित आख्यायिका है।[२]

(ii) राममनोहर-कृत शृङ्गारमञ्जरी—यह गीतकाव्य है।[३]

(iii) मानकवि-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—यह भी गीतकाव्य है।[४]

(iv) अज्ञात कवि रचित शृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति है, जिसके प्रणेता के विषय में जानकारी नहीं है। इसके प्रणेता ने 'रामचन्द्रोदय' नामक काव्य भी लिखा है।[५]

(v) अवधन सरस्वती-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति है। इसके कवि काञ्ची के निवासी थे।[६]

(vi) गोपालराय-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—पौढ़देव रायपुरम् निवासी, गोपालराय रचित यह

---

१. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

(ख) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४३०-३१

२. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ५०३

३. वही, पृष्ठ ३५६

४. वही, पृष्ठ ३५६

५. वही, पृष्ठ ७०२

६. वही, पृष्ठ ७०२

नाट्यकृति है।[१]

(vii) विश्वनाथ-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—वेमायमंत्री के दरबारी कवि विश्वनाथ प्रणीत यह नाट्यकृति है।[२]

(viii) रतिकर-रचित शृङ्गारमञ्जरी—यह नाट्यकृति भाण है।[३]

(ix) भोगनाथ-प्रणीत शृङ्गारमञ्जरी—विद्यारण्यमाधव (१३०२-१३८७ ई०) के भाई एवं राजा संगम द्वितीय के सहयोगी-भोगनाथ द्वारा रचित यह काव्य ग्रन्थ है।[४]

(x) अजितसेन या अजीतनाथ-कृत शृङ्गारमञ्जरी—यह काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है, इसमें तीन अध्याय तथा १२८ श्लोक हैं।[५]

(xi) केरल वर्मा-कृत शृङ्गारमञ्जरी—ट्रावनकोर निवासी केरलवर्मा (१८४५-१९१० ई०) जिन्हें केरल–कालिदास भी कहते हैं, द्वारा प्रणीत यह काव्यग्रन्थ है।[६]

(xii) अकबरशाह से सम्बन्धित शृङ्गारमञ्जरी—अकबरशाह अथवा बड़े साहब (१६४६-१६७२ या १६७५ ई०, जो गोलकुण्डा के सुल्तान अबुल-कुतुबशाह के गुरु थे) की प्रेरणा से किसी तेलगू विद्वान ने इस काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ की रचना मूलतः तेलगू भाषा में की थी, जिसे किसी अन्य ने 'शृङ्गारमञ्जरी' इस नाम से संस्कृत में अनूदित किया। इसमें नायक, नायिका के विषय के साथ मुख्यतः शृङ्गार रस का विवेचन है।[७]

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ७०३

२. वही, पृष्ठ ७०५

३. वही, पृष्ठ १०४४

४. वही, पृष्ठ २१३

५. (क) वही, पृष्ठ ७५२

(ख) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २४९

६. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ २५८

७. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २४७

(च) आनन्दसुन्दरी—

तञ्जौर के भोसलावंशीय राजा तुक्को जी (१७२९-१७३५ ई०) के मन्त्री कण्ठीरव घनश्याम (१७००-१७५०) द्वारा, चार जवनिकान्तरों में निबद्ध, यह प्रेमकथा-मूलक सट्टक है। इसके कथावस्तु का गठन कर्पूरमञ्जरी की शैली से सर्वथा भिन्न है। इसमें कवि ने दो गर्भ नाटकों की अवतारणा की है, जो मूलकथानक से सर्वथा सम्बद्ध हैं। यही इस सट्टक की नाटकीय विशिष्टता है। इसमें हास्य का पुट बड़े आकर्षक ढंग से दिया गया है। इसकी प्राकृत भाषा अपेक्षाकृत कम स्वाभाविक एवं रोचक है। इसमें मराठी शब्दों एवं क्रियाओं का अधिक प्रयोग है।[१] यह सन् १९५५ ई० में डा० ए०एन० उपाध्ये द्वारा सम्पादित होकर मोतीलाल बनारसीदास द्वारा प्रकाशित है।[२]

(छ) वैकुण्ठचरित—

यह कण्ठीरव घनश्याम द्वारा विरचित है, किन्तु अनुपलब्ध है।[३]

(ज) आज्ञातनामा सट्टक

कण्ठीरव घनश्याम ने उपर्युक्त दो सट्टकों के अतिरिक्त एक अन्य सट्टक का भी प्रणयन किया था,[४] लेकिन उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। डॉ० बल्देव उपाध्याय ने उस अज्ञातनामा सट्टक का नाम नवग्रहचरित होने की संभावना व्यक्त की है,[५] किन्तु यह अनुमान पूर्णतः अस्वीकरणीय है, क्योंकि घनश्याम विरचित नवग्रहचरित नाम की सट्टक भिन्न विधा की नाट्यकृति उपलब्ध है।[६]

---

१. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२
   (ख) प्राकृतभाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४२२-२६
२. प्राकृतभाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४२२
३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२
४. (क) आधुनिक संस्कृत नाटक, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ३२८
   (ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय (डॉ० उपाध्ये की पाण्डित्यपूर्ण भूमिका के आधार पर), पृष्ठ ५८३
५. संस्कृत साहित्य का इतिहास, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ ५८३
६. आधुनिक संस्कृत नाटक, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ ३२८

इनमें राजशेखर कृत-कर्पूरमञ्जरी एवं पण्डित विश्वेश्वर कृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टक, अपने कथागुम्फन, चरित्राङ्कन, रसपेशलता आदि में वैशिष्ट्य के कारण न केवल सट्टक साहित्य में अपितु सम्पूर्ण रूपक साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परिणामतः उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। इन दोनों सट्टकों में हर स्तर पर दिखाई पड़ने वाली पर्याप्त समानता इन दोनों के एक साथ अनुशीलन एवं पर्यालोचन के प्रति प्रेरित करती है। "राजशेखर-कृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वर-कृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोध के लिए प्रवृत्त होना इसी प्रेरणा का परिणाम है।

नाट्यशास्त्रियों ने नाट्य के लिए वस्तु, नेता एवं रस विषयिणी जिन मान्यताओं को प्रतिस्थापित किया है, उस कसौटी पर कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक कितने खरे उतरते हैं। काव्यशास्त्रियों की अलङ्कार, आदि सम्बन्धी मान्यताओं का कितना परिपालन इसमें हो पाया है, यह शोध की प्रमुख अपेक्षायें हैं।

●●●

द्वितीय-अध्याय

कवि-परिचय

राजशेखर

राजशेखर नाम धारण करने वाले कवि

(क) केरल-नरेश राजशेखर
(ख) यायावरवंशीय राजशेखर
(ग) जैन कवि राजशेखर
(घ) गीतगङ्गाधरकार राजशेखर
(ङ) कोल्लुरी परिवार के राजशेखर

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर

राजशेखर एवं उनका वंश
राजशेखर का समय
राजशेखर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि
राजशेखर का कृतित्व
राजशेखर का व्यक्तित्व

विश्वेश्वर

विश्वेश्वर नाम धारण करने वाले कवि

(क) श्रीधरदास द्वारा उद्धृत विश्वेश्वर
(ख) चमत्कारचन्द्रिकाकार विश्वेश्वर
(ग) चन्द्रालोक के टीकाकार विश्वेश्वर
(घ) लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर
(ङ) गीतगोविन्द के टीकाकार विश्वेश्वर
(च) बीसवीं सदी में कवि विश्वेश्वर

शृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर

विश्वेश्वर एवं उनका वंश
विश्वेश्वर का समय
विश्वेश्वर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि
विश्वेश्वर का कृतित्व
विश्वेश्वर का व्यक्तित्व

राजशेखर एवं विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक परिशीलन

द्वितीय-अध्याय

कवि-परिचय

राजशेखर

कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रणेता के रूप में राजशेखर का नाम प्रसिद्ध है। किन्तु संस्कृत साहित्य में 'राजशेखर' अभिधान धारण करने वाले अनेक कवियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। अतः कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर का अन्य से भिन्न रूप में परिचय प्राप्त करने हेतु, इस अभिधान को धारण करने वाले सभी कवियों का सामान्य परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

राजशेखर नाम धारण करने वाले कवि—

(क) केरल-नरेश राजशेखर—'शंकरदिग्विजय' नामक कृति से संकेत मिलता है कि—राजशेखर नामधारी केरल का शासक हुआ, जिसने तीन नाटकों की रचना करके शङ्कराचार्य को अर्पित किया। चगजाशेरि के समीपवर्ती 'तलइनइल्ल' नामक ग्राम से प्राप्त ७५० से ८५० ई० के शिलालेख में राजा राजशेखर का नाम उत्कीर्ण है,[१] जो संभवतः शंकरदिग्विजय में उल्लिखित राजशेखर ही हैं।

(ख) यायावरवंशीय राजशेखर—इन्होंने खुद अपना बहुविध परिचय दिया है। यही कर्पूरमञ्जरी सट्टक के प्रणेता हैं। इनके विषय में आगे सविस्तार चर्चा की जायेगी।

(ग) जैन कवि राजशेखर—राजशेखर[२] के नाम से प्रसिद्ध जैन कवि राजशेखर सूरी का समय १३४८ ई० के लगभग है। इनकी प्रसिद्ध कृति प्रबन्धकोश है, जिसमें २४ व्यक्तियों का प्रबन्ध विद्यमान

१. कर्पूरमञ्जरी–प्रस्तावना, चुन्नीलाल शुक्ल, पृष्ठ ५

२. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४५६

(ख) हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ २७५

है, जिससे यह चतुर्विंशति प्रबन्ध भी कहलाता है। ये तिलकसूरी के शिष्य थे।

(घ) **गीतगङ्गाधरकार राजशेखर**—ये नन्जराजशेखर या नन्जराज नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये सन् १७३९ से १७५९ ई० तक मैसूर राज्य के सर्वाधिकरण (राजस्व मन्त्री) एवं वास्तविकता में सम्राट-निर्माता थे।[१] इसके बाद उनका अधःपतन आरम्भ हुआ। १७७३ ई० में हैदरअली की कैद में बुरी तरह उनकी मौत हुई। इन्होंने 'गीतगङ्गाधर' नामक लघुकाव्य का प्रणयन किया। इन्होंने हलसीमहात्यम् नामक तेलगू गद्य का भी प्रणयन किया था।[२] इनके यशोगान में नृसिंहकवि ने 'नन्जराजयशोभूषणम्' नामक काव्य लिखा है।[३]

(ङ) **कोल्लुरी परिवार के राजशेखर**—ये आन्ध्र प्रदेश के गोदावरी जिले के कौसीनी नदी के किनारे स्थित पेरूरु (सोमनाथपुर) के रहने वाले नारायण के पौत्र एवं वेंकटेश के पुत्र थे। ये गौतमगोत्रीय एवं कोल्लुरी परिवार से सम्बद्ध थे। पेशवा माधवराव (१७६०–१७७२ ई०) ने इन्हें सम्मानित किया था। इनका एक अन्य नाम सोमेश्वर भी है। इन्होंने साहित्यकल्पद्रुम, भागवतचम्पू, शिवशतक, श्रीसचम्पू, अलङ्कारमकरन्द जैसी रचनाएं कीं।[४]

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर—

यायावर-वंशीय कवि राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन किया है। मध्यकालीन संस्कृत कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। यद्यपि इन्होंने अपने विषय में अनेक संकेत दिये हैं, फिर भी उनसे सम्बन्धित अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं, जिनके लिए और अधिक सूचनाओं की अपेक्षा है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर राजशेखर का यथासंभव परिचय प्रस्तुत है।

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ८०१–८०२

२. वही, पृष्ठ ३४४

३. वही, पृष्ठ ८०१–८०२

४. (क) वही, पृष्ठ ५०८ एवं ७८८

(ख) संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २६०

राजशेखर एवं उनका वंश—

"उपाध्यायो यायावरीयः राजशेखरः" बालरामायण के इस कथन से यह प्रतीत होता है, कि राजशेखर यायावरवंश के थे। यायावर का अर्थ है, जो निरन्तर चलने वाला हो। प्राचीन समय में ऋषियों में दो प्रकार के ऋषि होते थे—(१) यायावरीय एवं (२) शालीय। यायावरीयों का व्रत था, कि ये एक स्थान में न रहकर प्रायः यात्रा करते रहते थे। यद्यपि संन्यासियों के लिए भी यह नियम है, परन्तु यायावरीय संन्यासी नहीं होते थे, अपितु गृहस्थ या वानप्रस्थी सन्त थे। महाराष्ट्र तथा कुछ अन्य क्षेत्रों में आज भी कुछ ऐसे सन्त देखे जाते हैं, जो गाँवों और अनेक व्यक्तियों को साथ लेकर प्रायः यात्रा और भजन कीर्तन करते रहते हैं। ऐसे ही किसी यायावरीय महात्मा के वंश में जन्म लेने के कारण, राजशेखर ने गौरव वृद्धि के लिए अपने वंश को यायावरीय शब्द से अलंकृत किया है। राजशेखर का कुल कवियों के प्रसव के लिए प्रसिद्ध था। अकालजलद, सुरानन्द, तरल, कविराज आदि अनेक कवियों ने इस कुल को अलंकृत किया है।[१]

बालरामायण-नाटक की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए राजशेखर ने स्वयं लिखा है, कि—वे महाराष्ट्रचूड़ामणि अकालजलद के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र एवं दर्दुक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम शीलवती था।[२] इस नाटक की प्रस्तावना से यह भी पता चलता है, कि उनके पिता किसी राज्य के महामंत्री थे।[३]

अकालजलद इस यायावरकुल के अधिक प्रसिद्ध व्यक्ति प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि

---

१. समूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गणयन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।।—बालरामायण –१/१३

१. "तदामुष्यायणय महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुकिः शीलवतीसूनुरुपाध्यायश्रीराजशेखरः इत्यपर्याप्तं बहुमानेन।"—बालरामायण-प्रथम अंक

२. "सूक्तमिदं तेनैव मन्त्रिसुतेन।"—बालरामायण-प्रथम अंक

राजशेखर ने अपने पिता के सम्बन्ध में अत्यन्त साधारण परिचय देते हुए और अपने पितामह के लिए मौन रहकर, प्रपितामह का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया है। उनके नाम से परिचित होने में वे अपना गौरव समझते हैं। अकालजलद कौन थे और इन्होंने क्या-क्या लिखा है, यह पता नहीं चलता। वल्लभदेव-कृत 'सुभाषितावली'— में अकालजलदांकित एक पाठ्य दाक्षिणात्य के नाम से उद्धृत है, जो शार्ङ्गधर पद्धति में अकालजलद के नाम से ही संग्रहीत है। सुभाषितावली में और भी दो, तीन पद्य दाक्षिणात्य के नाम से उद्धृत हैं। संभवतः ये अकालजलद के ही हों। राजशेखर के कथनानुसार 'कादम्बरीराम' नामक कवि ने नाटकों की रचना की और उनमें अकालजलद के श्लोकों को इस प्रकार समाविष्ट किया कि वे श्लोक कादम्बरीराम के प्रतीत होते थे।[१] राजशेखर ने अकालजलद की काव्य प्रशस्ति लिखी है, जिससे प्रतीत होता है कि उन्होंने मुक्तक शैली के अनेक पद्य लिखे होंगे और वे तत्कालीन समाज में अत्यन्त आदरणीय व्यक्ति थे।[२]

सुरानन्द नामक कवि भी यायावर वंश के थे और राजशेखर के पूर्वजों में थे। उनके सम्बन्ध में राजशेखर ने लिखा है, कि—सुरानन्द चेदिदेश के राजा रणविग्रह की सभा के रत्न थे।[३] आप्टे महोदय ने सुरानन्द को राजशेखर का पितामह बतलाया है।[४] इनकी रचनाएं भू नहीं मिलतीं। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने अपहरण सम्बन्धी विवेचना में सुरानन्द का मत उद्धृत किया है।[५]

इसके अतिरिक्त यायावर वंश के कवियों में तरल एवं कविराज का नाम भी आता है, जिनके विषय में कोई जानकारी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। राजशेखर की पत्नी का नाम अवन्तिसुन्दरी

---

१. अकालजलदश्लोकैश्चित्रमात्मकृतैरिव।
   ख्यातः कादम्बरीरामो नाटके प्रवरः कविः।। जल्हण—सूक्तिमुक्तावली
२. अकालजलदेन्दोः सा हृद्या वचनचन्द्रिका।
   नित्यं कविचकोरैर्या पीयते न तु हीयते।।—जल्हण—सूक्तिमुक्तावली
३. नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः।
   कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्।।—सूक्तिमुक्तावली
४. राजशेखर द लाइफ एण्ड राइटिंग, आप्टे, पृष्ठ १६
५. 'सोऽयमुल्लेखवाननुग्राह्यो मार्ग' इति सुरानन्दः।—काव्यमीमांसा, अध्याय—१३

था, जो चौहान क्षत्रिय कुल की विदुषी कन्या थी।[१]

राजशेखर ने अपने वर्ण के विषय में कुछ नहीं बताया है, अतएव अनुमान के आधार पर कुछ विद्वान उन्हें ब्राह्मण[२] एवं कुछ क्षत्रिय[३] मानने के पक्षधर हैं। राजशेखर को क्षत्रिय मानने वाले विद्वानों के पक्ष में एकमात्र प्रबल तर्क उनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी का क्षत्रिय होना है, जो चौहानवंशीया थी। सामान्य रूप से एक क्षत्रिय कन्या का विवाह क्षत्रिय पुरुष से ही होता है, अतः राजशेखर क्षत्रिय रहे होंगे, ऐसा इस मत को मानने वालों का विचार है। किन्तु क्षत्रिय होने के सम्बन्ध में क्षत्रिय कन्या से विवाह के प्रमाण को पुष्ट नहीं माना जा सकता, क्योंकि राजशेखर एवं अवन्तिसुन्दरी का विवाह अन्तर्जातीय विवाह का उदाहरण भी हो सकता है, जैसा कि प्राचीन एवं मध्यकाल में अन्तर्जातीय विवाह होने के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

दूसरी ओर राजशेखर को ब्राह्मण सिद्ध करने वाले विद्वानों का प्रमुख तर्क यह है, कि– राजशेखर क्षत्रिय राजा के उपाध्याय थे, इसलिए निश्चय ही ब्राह्मण होंगे। दूसरी बात यह कि– उनके पिता राजा के अमात्य थे एवं अमात्य ब्राह्मण ही होता है, अतएव राजशेखर ब्राह्मण होंगे। यद्यपि इन तर्कों में भी कोई विशेष बल नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय वर्ण के भी उपाध्याय एवं अमात्य होने के उदाहरण मिलते हैं। किन्तु सामान्यतः ब्राह्मणों द्वारा ही उपाध्याय एवं अमात्य का पद धारण करने की परम्परा रही है, अतः राजशेखर के ब्राह्मण होने की मान्यता अपेक्षाकृत अधिक

---

१. कर्पूरमञ्जरी–१/११

२. (क) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं डा० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, पृष्ठ २०८

(ख) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३

(ग) प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, एन०सी० शास्त्री, पृष्ठ ४१४

३. (क) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका–गंगासरन राय, पृष्ठ ७

(ख) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका–चुन्नीलाल शुक्ल, पृष्ठ २

(ग) काव्यमीमांसा, भूमिका, पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, पृष्ठ ५

(घ) संस्कृत नाटक, ए०बी० कीथ (भाषान्तरकार–डॉ० उदयभानु सिंह), पृष्ठ २४४

बलवती है। ऐसी परिस्थिति में कर्पूरमञ्जरी के भरत-वाक्य[१] में प्राप्त यह वाक्य "भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिष सर्वदा"[२] राजशेखर के ब्राह्मण होने की संभावना को पुष्ट करता है। क्योंकि राजशेखर जैसा कवि जो अपने प्रति गर्वोक्तियाँ करता हो, अपने आप को बहुत बड़ा कवि एवं विद्वान मानता हो, यदि वह ब्राह्मण नहीं होता तो यह कथन कदापि न करता। उसके स्थान पर विद्वद्-वर्ग या कवि-वर्ग के लिए ऐसी बात कह सकता था।

यदि हम यहाँ राजशेखर को ब्राह्मण न मानें तो यह कथन राजशेखर की गर्वोक्तियों के प्रतिकूल जाता है। दूसरी ओर बौधायन धर्मसूत्र (३-१-१) तथा देवल (याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका-१-१२८) के कथन के आधार पर का काणे महोदय ने यायावर वंश को ब्राह्मण माना है।[३] अतः यह कहना सर्वथा उचित है कि राजशेखर ब्राह्मण थे।

राजशेखर के धर्म का जहाँ तक प्रश्न है, तो यद्यपि उन्होंने राम के प्रति विशेष आदर प्रदर्शित करते हुए बालरामायण जैसा नाटक लिखा है, कर्पूरमञ्जरी में चण्डी की स्तुति की है।[४] सरस्वती की जयकार ही है।[५] फिर भी शिव के प्रति उनका भक्तिभाव अन्य की अपेक्षा अधिक है। उनकी अधिकांश कृतियों का प्रारम्भ शिव-वन्दना के साथ होता है।[६] अतः उन्हें शैव मतावलम्बी स्वीकार किया गया है। कुछ आचार्यों ने उनके लिए उदारशैव शब्द का प्रयोग किया है।[७]

---

१. हारवर्ड ओरियन्टल सीरीज के संस्करण, (मोतीलाल बनारसीदास वाराणसी द्वारा प्रकाशित) में 'भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा' वाक्य नहीं मिलता।

२. कर्पूरमञ्जरी, सम्पादक—श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५५

३. कर्पूरमञ्जरी—भूमिका, गंगासरन राय, पृष्ठ ७ पर उद्धृत

४. कर्पूरमञ्जरी—४/१९

५. कर्पूरमञ्जरी—१/१

६. (क) बालरामायण—१/१, १/२
   (ख) विद्धशालभञ्जिका—१/१
   (ग) कर्पूरमञ्जरी—१/३, १/४

७. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३

राजशेखर का समय—

राजशेखर के समय के विषय में विभिन्न विद्वानों में भिन्न-भिन्न विचार हैं। बोरो महोदय ने भ्रमवश माधवाचार्य कृत शंङ्करदिग्विजय में उल्लिखित केरल-नरेश राजशेखर को यायावर राजशेखर मानते हुए उन्हें शंङ्कराचार्य का समकालीन एवं सप्तम शतक का माना है, जो अस्वीकरणीय है।

दूसरे मत के अनुसार ७५० ई० के आस-पास राज्य करने वाले काश्मीर-नरेश जयापीड के क्षीर-स्वामी नामक एक गुरु थे। अमरकोश पर टीका लिखने वाले क्षीरस्वामी नाम के एक आचार्य हुए हैं, जिनकी कृति में राजशेखरकृत विद्धशालभञ्जिका का एक श्लोक उद्धृत है। अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी का जयापीड के गुरु क्षीरस्वामी से समीकरण करते हुए, पीटर्सन महोदय ने राजशेखर को अष्टम शदी का मध्यवर्ती माना है, साथ ही महेन्द्रपाल नाम के शासक, जिनका गुरु होना राजशेखर ने स्वीकार किया है, को ७६१ ई० में शासन करता हुआ सिद्ध करने का प्रयास करते हुए, अपने मत की पुष्टि किया है। कनिंघम महोदय का भी यही मत है। आप्टे महोदय ने इन सब बातों पर विचार पर सप्तम और अष्टम शतक का मध्य राजशेखर का समय माना है। किन्तु जयापीड के गुरु क्षीरस्वामी ने ही अमरकोश पर टीका लिखी थी, इसके प्रमाण के अभाव के कारण, इस मत को स्वीकार करने में आपत्तियाँ हैं। टीका में भोज का उल्लेख हैं जिनका आविर्भाव काल ११वीं सदी है। अतः अमरकोश के टीकाकार क्षीरस्वामी को भोज के परवर्ती होना चाहिए। इस प्रकार राजशेखर को आठवीं शदी के मध्य में रखना सर्वथा अनुचित है।

सोमदेवकृत 'यशस्तिलकचम्पू' (९५९ ई०) एवं सोड्ढलकृत 'उदयसुन्दरी' (९९० ई०) में राजशेखर का उल्लेख है। 'तिलकमञ्जरी' (१००० ई०) एवं 'व्यक्ति-विवेक' (११५० ई०) में भी राजशेखर को उद्धृत किया गया है। दूसरी तरफ राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में अन्य आचार्यों के साथ-साथ उद्भट्ट (८०० ई०) एवं आनन्दवर्धन (८५० ई०) का उल्लेख किया है, जो

क्रमशः काश्मीर नरेश जयापीड (७७९–८१३ ई०) एवं अवन्तिवर्मन (८५७–८८४ ई०) के शासन काल में हुए थे। इस आधार पर राजशेखर का काल नवीं सदी के उत्तरार्द्ध से पूर्व दशवीं सदी के पूर्वार्द्ध के बाद नहीं होना चाहिए।

राजशेखर के काल–निर्धारण से सम्बन्धित दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य राजशेखर द्वारा अपने को कन्नौज नरेश महेन्द्रपाल का उपाध्याय बताना[१] तथा महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल को भी अपना संरक्षक बताया जाना है। कर्पूरमञ्जरी में वे अपने को निर्भयराज का उपाध्याय कहते हैं। विद्वानों ने निर्भयराज एवं महेन्द्रपाल को एक ही व्यक्ति माना है। सीवोदीन शिलालेख[२] से पता चलता है कि महेन्द्रपाल ने ९०३–९०७ ई० में राज्य किया था तथा उनके पुत्र महीपाल ने ९१७ ई० के लगभग राज्य किया था। इस आधार पर अनुमान किया जा सकता है, कि—राजशेखर का समय नवीं सदी का उत्तरार्द्ध एवं दशवीं सदी का पूर्वार्द्ध अर्थात् ८८० ई० से ९२० ई० के मध्य अवश्य रहा होगा। जर्मन विद्वान फ्लीट एवं कीलहार्न ने भी राजशेखर को नवम शतक के अंत एवं दशम शतक के प्रारम्भ में स्वीकार किया है।

राजशेखर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि—

बालरामायण से पता चलता है कि राजशेखर के पूर्वज महाराष्ट्र के रहने वाले थे। संभवतः इसी को आधार मानकर अनेक विद्वानों ने राजशेखर को महाराष्ट्र का निवासी बताया है।[३२] किन्तु

---

१. आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारां निधि–
स्त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत् कान्तः कवीनां गुरुः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः।।

२. इपीग्राफिक इण्डिका, कीलहार्न, आई, १७१ (नानूराम व्यास, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ २०९ पर उद्धृत)

३. (क) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५५९
(ख) संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ ४३३
(ग) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं नानूराम व्यास, पृष्ठ २०८

इस कथित महाराष्ट्र क्षेत्र के समीकरण के विषय में विद्वद्वर्ग में भ्रम की स्थिति है। प्रो० कोनो ने महाराष्ट्र से विदर्भ और कुन्तलदेश का समीकरण किया है।[१] किन्तु काव्यमीमांसा में स्वयं राजशेखर ने महाराष्ट्र को विदर्भ एवं कुन्तल से अलग दक्षिणापथ का एक भाग माना है। यद्यपि जार्ज ग्रियर्सन महोदय ने शौरसेनी प्राकृत से निकलने वाली भाषाओं के दक्षिण में पड़ने वाले भू-भाग को, महाराष्ट्र नाम दिया है।[२] इस आधार पर शौरसेनी भाषी मध्यप्रदेश से महाराष्ट्र को मिला हुआ होना चाहिए। किन्तु राजशेखर द्वारा महाराष्ट्र को दक्षिणापथ का हिस्सा मानने वाला विचार ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि महाराष्ट्र की एक सर्वथा भिन्न भाषा महाराष्ट्री प्राकृत रही है एवं मध्यदेश की उससे भिन्न शौरसेनी।

राजशेखर को महाराष्ट्र अर्थात् दक्षिणापथ का निवासी बताया जाना, सर्वथा उचित प्रतीत नहीं होता। राजशेखर द्वारा प्रस्तुत विवरण से मात्र इतना ही संकेत मिलता है कि उनके पूर्वज मूलतः महाराष्ट्र के निवासी थे। राजशेखर का अपना कोई सम्बन्ध महाराष्ट्र से रहा है, यह निष्कर्ष इस आधार पर निकालना अनुचित होगा। अगर महाराष्ट्र राजशेखर की जन्मभूमि होती तो अवश्य ही उसके प्रति उनका किसी भी सन्दर्भ में लगाव परिलक्षित हो जाता, परन्तु ऐसा कहीं से भी प्रतीत नहीं होता। जैसाकि दण्डी ने महाराष्ट्री प्राकृत की प्रभूत प्रशंसा की है, परन्तु राजशेखर के किसी भी कथन से ऐसा नहीं लगता कि वे महाराष्ट्र या महाराष्ट्री प्राकृत को कोई विशेष महत्त्व देते हैं।

दूसरी ओर कन्नौज[३] और पाञ्चाल[४] के प्रति राजशेखर का पक्षपात परिलक्षित होता है। कन्नौज के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा कि—दिशायें इसी नगर से माननी चाहिए। इस नगर को वे बड़ा

---

१. कर्पूरमञ्जरी—प्रस्तावना, श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा प्रकाशन, पृष्ठ १०

२. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ७, जार्ज ग्रियर्सन, पृष्ठ १२३

३. बालरामायण १०/८८-९०

४. बालरामायण १०/८६

पवित्र मानते हैं, तथा यहाँ की स्त्रियों को वेषभूषा, आभूषण, भाषा और व्यवहार में अग्रगामी बताते हैं।[1] काव्यमीमांसा में राजशेखर ने कहा है, कि—"यो मध्यदेशं निवसति स कविः सर्वभाषानिषण्णः।" इस कथन को राजशेखर के अपने सर्वभाषा चतुर होने के कथन से मिलाने पर यह बात अधिक पुष्ट हो जाती है, कि—मध्यदेश ही राजशेखर का जन्मस्थान था।[2] इस मान्यता की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि—उन्होंने मध्यदेश की भाषा शौरसेनी प्राकृत में ही कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन कर, उस भाषा को गौरवान्वित किया। सुरानन्द जिन्हें आप्टे महोदय ने राजशेखर का पितामह स्वीकार किया है, को राजशेखर ने चेदिमण्डलमण्डन कहा है। चेदि देश वर्तमान महाकौशल का एक भाग था, जो नर्वदा तट पर स्थित है। वर्तमान जबलपुर जिले की त्रिपुरी इसकी राजधानी थी। इससे स्पष्ट है कि सुरानन्द मध्यदेशवासी हो गये थे। संभव है कि उसके बाद उनके वंशज मध्यदेश में बस गये हों। इस आधार पर यही कहना उचित है, कि—राजशेखर का जन्मस्थान मध्यदेश में कहीं था, जहाँ उनके पूर्वज महाराष्ट्र से आकर बसे थे।[3]

जहाँ तक राजशेखर की कर्मभूमि का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में राजशेखर ने खुद अपने को कन्नौज नरेश महेन्द्रपाल का उपाध्याय बताया है तथा उनके पुत्र महीपाल को भी अपना संरक्षक स्वीकार किया है। अतः यह निर्विवाद है कि उनका कार्य क्षेत्र कन्नौज था। कुछ दिनों के लिए वे लाट नरेश के यहाँ चले गये थे, जिनकी अध्यक्षता में विद्धशालभञ्जिका का अभिनय किया गया था। यहाँ से लौटकर पुनः कान्यकुब्ज आये और महेन्द्रपाल के पुत्र महीपाल के सभासद बनकर रहे।[4] प्रो० कोनो ने किन्हीं शिलालेखों तथा साहित्यिक उल्लेखों[5] के आधार पर ऐसा अनुमान

१. बालरामायण —१०/८८-९०

२. कर्पूरमञ्जरी—प्रस्तावना, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १०

३. वही, पृष्ठ ११

४. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५६०

५. संभवतः "कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम्"—सूक्तिमुक्तावली के आधार पर।

किया है, कि—राजशेखर का अपने जीवन किसी भाग में चेदि राजवंश से अवश्य सम्बन्ध था। राजशेखर द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों एवं वहाँ की संस्कृति, लोगों की अभिरुचि आदि के सम्बन्ध में प्रस्तुत सन्दर्भ, उनके विभिन्न क्षेत्रों में परिभ्रमण का अनुमान कराते हैं। हो सकता है इसी क्रम में वे चेदि राज्य में जाकर कुछ समय तक रहे हों। अथवा उनका प्रारम्भिक जीवन चेदि राज्य में ही व्यतीत हुआ हो। कुछ उल्लेखों से अनुमान किया जाता है, कि—उनकी वृद्धावस्था वाराणसी में व्यतीत हुई थी।[१] संभवतः शिव-भक्त राजशेखर ने अपनी अंतिम सांस शिव की नगरी में ही लेने के लिए यहाँ निवास किया हो।

राजशेखर का कृतित्व—

राजशेखर ने स्वयं अपने बालरामायण में षट्-प्रबन्धों का निर्देश किया है।[२] वर्तमान में राजशेखर-प्रणीत काव्य-मीमांसा, बालरामायण, बालभारत (अथवा प्रचण्डपाण्डव), विद्धशालभञ्जिका एवं कर्पूरमञ्जरी ये पाँच ग्रन्थ उपलब्ध एवं प्रकाशित हैं। उनकी छठवीं कृति उपलब्ध नहीं है। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने अपने 'भुवनकोश' नामक एक भौगोलिक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, जो अनुपलब्ध है।[३] भुवनकोश ही उनकी छठवीं कृति होगी।

कुछ आचार्यों ने राजशेखरकृत ग्रन्थों की संख्या छः से अधिक होने का अनुमान किया है। यह अनुमान बालरामायण के, छः प्रबन्धों के प्रणेता वाले राजशेखर के कथन को आधार बनाकर ही किया गया है। राजशेखर ने किस क्रम से साहित्य सर्जना किया है, यह सुनिश्चित नहीं। यदि बालरामायण उनकी उपलब्ध कृतियों में अंतिम कृति हो, तब तो उसे लेकर छः रचनायें होती

---

१. "कर्णाटीदशनाङ्कितः...सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविर्वाराणसीं वाञ्छति।" औचित्य-विचार-चर्चा, पृष्ठ २७ (गंगासरन राय, कर्पूरमञ्जरी भूमिका में उद्धृत)

२. "विद्धि: नः षट्-प्रबन्धान्", बालरामायण १/२

३. (क) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, व्यास एवं पाण्डेय, पृष्ठ २०९

(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५६०

हैं। लेकिन यदि बालरामायण अंतिम रचना न होकर उपलब्ध कृतियों में पाँचवीं, चौथी, तीसरी, दूसरी अथवा पहली रचना हो तो? चूँकि उससे पूर्व पाँच रचनायें होनी चाहिए, इस आधार पर उनके कुल ग्रन्थों की संख्या कम से कम छः से लेकर ग्यारह के बीच कोई भी हो सकती है। श्री वी०एस० आप्टे एवं प्रो० कोनो महोदय ने राजशेखर की नाट्य रचनाओं का क्रम–कर्पूरमञ्जरी, विद्धशालभञ्जिका, बालरामायण, बालभारत इस प्रकार दिया है। यदि इस क्रम को सही माना जाय तो उनकी कुच रचनाओं की संख्या छः से अधिक सुनिश्चित होती है। श्री रामकुमार आचार्य[१] बालरामायण को, खुद बालरामायण की उक्ति के आधार पर, राजशेखर की प्रथम नाट्यकृति मानते हैं तथा उससे पूर्व कवि द्वारा कुछ काव्यों के प्रणयन का अनुमान करते हैं, जिनका जनता में अधिक स्वागत नहीं हुआ था। अगर यह अनुमान सही है तो, राजशेखर प्रणीत ५ काव्यों का अस्तित्व बालरामायण की रचना से पूर्व होना चाहिए। जैसाकि काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र ने राजशेखर प्रणीत 'हरविलास' नामक एक काव्य का उल्लेख किया है। सम्प्रति यह कृति उपलब्ध नहीं है। राजशेखर का यह कथन कि–'यद्यपि आलोचक उनके काव्यों को पसन्द नहीं करेंगे, फिर भी उनके नाटक बड़े आदर से पढ़े जायेंगे।' इस बात की पुष्टि करता कि, राजशेखर–प्रणीत कुछ काव्य ग्रन्थ अवश्य रहे हैं। सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषितावलि जैसे सूक्ति ग्रन्थों में राजशेखर के नाम से कई पद्य मिलते हैं, जो इस अनुमान को पुष्ट करते हैं।[२] उन पूर्ववर्ती ५ काव्यों मे से 'हरविलास' काव्य एक माना जाय तो शेष चार और काव्यों को मिलाकर राजशेखर–प्रणीत कुल ११ ग्रन्थ होने चाहिए। इस प्रकार राजशेखर का छः से अधिक ग्रन्थों का प्रणेता होना सिद्ध होता है। प्रस्तुत स्थल पर उनकी उपलब्ध कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

(i) काव्य-मीमांसा—वस्तुतः यह एक अपूर्ण रचना है, जो अधिकरणों या भागों वाले महाग्रन्थ

---

१. कर्पूरमञ्जरी–प्रस्तावना, पृष्ठ १३

२. (क) कर्पूरमञ्जरी, भूमिका, गंगासरन राय, पृष्ठ १२
   (ख) संस्कृत साहित्य की रूपरेखा–पाण्डेय एवं व्यास, पृष्ठ २०९

का कविरहस्य नामक एक अधिकरण मात्र है। यह अठ्ठारह अध्यायों में निबद्ध अलङ्कारशास्त्र (काव्यशास्त्र) का ग्रन्थ है, जिसमें काव्यशास्त्र का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत है। साहित्यशास्त्र के ग्रन्थों की सामान्य रूपरेखा से सर्वथा विलक्षण काव्यमीमांसा की रूपरेखा है। यह कवि के लिए उपयोगी जानकारी देने वाला एक विश्वकोश सा प्रतीत होता है। इसमें साहित्यशास्त्र के रस अलंकारादि विविध विषयों का स्वतन्त्र विवेचन नहीं किया गया, अपितु कवि तथा आचार्यों का उल्लेख, काव्यस्वरूप, कवि–कर्त्तव्य तथा कवि–समय आदि का विशद वर्णन किया गया है। वस्तुतः यह कवियों का मार्ग निर्देशक ग्रन्थ है। इसके आधार पर राजशेखर एक स्वतन्त्र 'कवि शिक्षा सम्प्रदाय' के प्रवर्तक माने जा सकते हैं।[१] यह ग्रन्थ चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से डॉ० गंगासागर राय के सम्पादकत्व में 'प्रकाश' हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है।

(ii) **बालरामायण**—राजशेखर की यह कृति दश विशालकाय अंकों में निबद्ध है, जिसमें राम की कथा को भव्य नाटक का रूप दिया गया है। इसमें राम नायक तथा रावण प्रतिनायक है। प्रसिद्ध रामकथा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर नाटक को अधिकाधिक रुचिकर बनाने का प्रयास किया गया है। कवि ने इसमें घटनाओं में कार्यान्विति दिखलाने का पूर्ण प्रयत्न किया है, परन्तु गत्यात्मकता का नाटक में नितान्त अभाव है। कवि वर्णन का इतना रसिक है कि, वह हमेशा ऋतु, मनुष्य, युद्ध आदि के वर्णनों में अपनी भारती को उलझाये रखता है। इसीलिए आचार्य बल्देव उपाध्याय को यहाँ तक कहना पड़ा कि—"हम राजशेखर को महाकवि मानते हैं, नाटककार नहीं।'[२] वीर रस की यह अद्वितीय रचना राजशेखर को महाकवियों की श्रेणी में स्थान देने के लिए अवश्य ही पर्याप्त होगी। इसका विशाल रूप इसे अभिनेय रूप होने से सर्वथा रोकता है। इसमें कथा का अनावश्यक विस्तार किया गया है। यह कृति चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी से डॉ० गंगासागर राय के सम्पादकत्व में प्रकाशित है।

---

१. काव्यप्रकाश—भूमिका, आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ ५५

२. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बल्देव उपाध्याय, पृष्ठ ५६३

(iii) **बालभारत**—यह 'प्रचण्डपाण्डव' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह महाभारत कथा का विराट नाटकीय रूप रहा होगा। किन्तु वर्तमान में इसके प्रारम्भिक दो अंक ही उपलब्ध होते हैं, जिसमें द्रौपदी स्वयंवर, द्यूतक्रीड़ा तथा द्रोपदीचीरहरण की घटनायें वर्णित हैं।

(iv) **विद्धशालभञ्जिका**—यह चार अङ्कों में निबद्ध नाटिका है। इसमें विद्याधर मल्ल नामक राजकुमार एवं मृगाङ्कावली तथा कुवलयमाला नाम की दो राजकुमारियों की प्रणय कथा निबद्ध है। इसका कथानक राजशेखर की अन्यकृति कर्पूरमञ्जरी की भाँति अत्यन्त रोचक है। इसकी रचना कवि ने चेदि नरेश के संरक्षण में रहकर की थी, जबकि अन्य रचनायें काव्यकुब्जेश्वर के संरक्षण में रहकर की गयी थीं। यह कृति चौखम्बा ओरियान्टालिया से प्रकाशित है।

(v) **कर्पूरमञ्जरी**—चार जवनिकान्तरों में विभक्त, प्राकृत भाषा में निबद्ध यह सट्टक श्रेणी का उपरूपक है। इसके पद्यों में महाराष्ट्री एवं गद्यों में शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया गया है। इस कृति के वस्तु-निबन्धन पर हर्ष की रत्नावली नाटिका का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। राजशेखर की इस नाट्यकृति का सर्वप्रथम मञ्चन उनकी पत्नी की इच्छा से हुआ था, जबकि अन्य कृतियों का राजाओं के आग्रह पर। इस आधार पर स्टीन कोनो महोदय कर्पूरमञ्जरी को राजशेखर की प्रथम नाट्यकृति मानते हैं।[१] कामराज, धर्मदास, पिताम्बर, धर्मचन्द्र आदि ने कर्पूमञ्जरी पर विद्वत्तापूर्ण टीकायें लिखी हैं। कर्पूरमञ्जरी का प्रकाशन १९वीं शदी के उत्तरार्द्ध में ही अनेक जगहों से हो चुका था। सम्प्रति अनेक प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित इसके कई संस्करण उपलब्ध हैं। शोधार्थ गृहीत इस कृति पर आगे के अध्यायों में सविस्तार चर्चा की जायेगी।

राजशेखर का व्यक्तित्व—

यह एक आधारभूत तथ्य है कि जिस प्रकार की भावना चित्त में उदित होती है, वही एक आकार बनाकर बाह्यजगत में दिखाई पड़ती है। बाह्य जगत और कुछ भी नहीं केवल अन्तर्मन

१. राजशेखर्स, कर्पूरमञ्जरी, स्टीन कोनो, पृष्ठ १८४

में उद्भूत होने वाले विज्ञानों की शृंखला मात्र है। ठीक यही बात कवि एवं उसकी कृतियों पर भी लागू होती है। कवि के व्यक्तित्व की छाप उसकी कृति पर पड़ना स्वाभाविक है, क्योंकि कृति कवि का कार्य है और कवि उसका कारणभूत तत्त्व। कवि का जो जीवन दर्शन होता है, उसी से वह अपनी कृति का ताना–बाना बुनता है। जगत के यथार्थ अनुभवों को वह अवसर पाकर अपनी कृति में यथास्थान प्रतिष्ठित करता है। अतएव कृति में कवि के व्यक्तित्व को ढूढ़ना दुःसाध्य नहीं है। इसी प्रकार कविराज राजशेखर की कृतियों के आधार पर उनके व्यक्तित्व की रूपरेखा तैयार की जा सकती है।

अनेक विद्वानों से विभूषित यायावर वंश में उत्पन्न होने के कारण राजशेखर ने अपने पूर्वजों से कविता की दिव्य प्रतिभा को पैतृक रिक्थ के रूप में प्राप्त किया था। उनकी शिक्षा पूर्ण थी तथा वे उस समय की समस्त विद्याओं से परिचित थे। काव्यमीमांसा को देखने से उनकी अद्वितीय प्रतिभा का पता चलता है। उनकी जीवन–संगिनी अवन्तिसुन्दरी उच्चकोटि की विदुषी थीं। राजशेखर ने काव्यमीमांसा में स्थान–स्थान पर अवन्तिसुन्दरी के मत का सादर उल्लेख किया है। कर्पूरमञ्जरी का प्रथम अभिनय उन्हीं के आदेश से किया गया था। हेमचन्द्र के अनुसार वे "देशीशब्दकोश" की प्रणेता हैं।

राजशेखर पर बड़बोलेपन का आरोप लगाया जाता है, कि—उन्होंने अपने को खुद वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ एवं भवभूति का अवतार बताया है, [१] वे खुद अपने को कवियों की सर्वोत्तम श्रेणी 'कविराज' की पदवी से अलंकृत करते हैं, इत्यादि। परन्तु यह राजशेखर का बड़बोलापन नहीं अपितु वास्तविकता है। वाल्मीकि का काव्य उनकी अनुभूति का विषय है। वाल्मीकि के समक्ष कोई पूर्व निर्मित काव्य मार्ग नहीं था, जिसका वे अनुशरण करते, अपितु उन्हें तो खुद अपना मार्ग खोजना एवं दूसरों के लिए मार्ग निर्मित करना पड़ा था। इसी प्रकार राजशेखर का कृतित्व भी उनकी

---

१. बालरामायण—१/१६

अनुभूति का परिणाम है। उन्होंने अनुभव किया कि समाज के एक समूह विशेष की नृत्यशैली या नाट्य परम्परा तथा भाषा इतनी सामर्थ्यवती है, कि उसके आश्रय में एक उत्कृष्ट नाट्यकृति की रचना की जा सकती है। कवियों को निर्देशित करने वाले कविशिक्षा ग्रन्थ की आवश्यता की अनुभूति भी उन्हें हुई। इस प्रकार वाल्मीकि की भाँति राजशेखर ने अपनी अनुभूति को कर्पूरमञ्जरी एवं काव्यमीमांसा के रूप में मूर्त्त रूप दिया, तथा वे सट्टक एवं कविशिक्षा सम्प्रदाय के संस्थापक बन गये।

ह्यग्रीव-वध महाकाव्य के रचनाकार भर्तृमेण्ठ वाल्मीकि के विपरीत शास्त्रीय कवि हैं। उन्होंने काव्यशास्त्र की मान्यताओं का पालन करते हुए साहित्य सर्जन किया है। राजशेखर को भी हम शास्त्रीय मान्यताओं का परिपालन करते हुए पाते हैं। विद्वानों द्वारा सट्टक के लक्षणानुसार उन्होंने कर्पूरमञ्जरी सट्टक का प्रणयन किया है, साथ ही इसके प्रारम्भ में सट्टक का विद्वत्सम्मत लक्षण भी प्रस्तुत किया है।

भवभूति की भाँति राजशेखर पूर्ण आत्मविश्वास एवं अपूर्व साहस के धनी कवि हैं। राजशेखर ने प्राकृत भाषा में नाट्य रचना का जो कार्य किया है, वह कोई साधारण कवि कदापि नहीं कर सकता, क्योंकि उसे सदैव इस बात का भय रहता है कि कदाचित् उसके काव्य को प्रतिष्ठा नहीं मिल पाये। अतएव वह मात्र वैसी ही रचना में प्रवृत्त होता है, जो आसानी से प्रतिष्ठित हो सके,अर्थात जिसकी अधिकांश मांग हो। राजशेखर ने इसकी परवाह न करते हुए, पूरे आत्मविश्वास के साथ प्राकृत भाषा को अपनी कृति का आधार बनाया। ऐसा ही भवभूति ने भी किया था। भवभूति ने करते हुए कि विद्वत समाज उसकी नाट्यकृति को समादृत करेगा कि नहीं; शृङ्गार या वीर रस प्रधान नाट्य लिखने की अब तक की परम्परा से हटकर, करूण रस का अंगी-रस के रूप में आश्रय लेते हुए 'उत्तररामचरितम्' जैसा महान नाटक लिखा था एवं उस रूप में अपने को प्रमाणित किया था। राजशेखर ने भी उसी प्रकार नयी परम्परा का प्रवर्तन कर अपने को प्रमाणित किया। उनकी

कृति कर्पूरमञ्जरी जनभाषा में निबद्ध होने के कारण जन-जन की कण्ठाहार हो गयी।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि राजशेखर में वाल्मीकि भर्तृमेण्ठ एवं भवभूति के गुण समाहित हैं। ऐसा कवि सामान्य कवि नहीं,निश्चय ही कविशिरोमणि है। उसे अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ एवं भवभूति का अवतार बताने का पूरा हक है। निश्चय ही वह कविराज की पदवी पर प्रतिष्ठित होने योग्य है। और फिर वह समय, जब कवि समाज में अपनी विद्वता प्रदर्शित करने की होड़ सी लगी थी, ऐसी परिस्थिति में अपने विषय में सगर्व बताना प्रंसगानुकूल ही था।

राजशेखर ने राजसी विलासिता की विषय वस्तु वाली कथा को लोकभाषा में निबद्ध किया था। निश्चय ही इस रूप में वे एक साथ उन दोनों ही वर्गों, सामान्य जन एवं राजपरिवार के लिए साहित्य सर्जना कर रहे थे। यह एक ही तीर से दो निशाने लगाने का उनका प्रयास था, जिसमें एक तो जन-सामान्य अपनी भाषा के माध्यम से राजाओं की विलासिता से अवगत हो सके। दूसरी तरफ राजकथा वाले नाट्य का,राजदरबारों में होने वाले मंचन के माध्यम से, जनभाषा को राजदरबारों में प्रतिष्ठा मिल सके। और यह कहा जा सकता है कि वे इसमें सफल रहे होंगे।

राजशेखर वस्तुतः कविराज थे। संस्कृत,प्राकृत पैशाची तथा अपभ्रंश भाषाओं में उनकी अवाधगति थी तथा इन भाषाओं में उनकी ललित लेखनी कमनीय कविता की सृष्टि करती थी। राजशेखर का बहुभाषाज्ञान एक विलक्षण वस्तु है, जिसे उन्होंने स्वयं इस प्रकार प्रकट किया है-

गिरः श्रव्यादिव्याः प्रकृतिमधुराः प्राकृतधुराः
सुभव्योऽपभ्रन्स सरसरचनं भूतवचनम्।
विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयाश्च ते इमे
निबद्धा यस्त्वेषां स खलु निखिलेऽस्मिन् कविवृषा।।
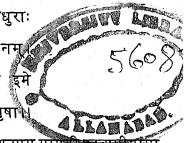
राजशेखर भूगोल के महान ज्ञाता थे। भारत के प्राचीन भूगोल की अनुपम सामग्री काव्यमीमांसा में भरी पड़ी है। बालरामायण का दशम अंक भी भौगोलिक वर्णनों से परिपूर्ण है। उन्होंने भूगोल से सम्बन्धित 'भुवनकोश' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा था, जो आज उपलब्ध नहीं है। ये कालिदास एवं महाराज हर्ष से प्रभावित प्रतीत होते हैं। अतः निश्चय ही इन्होंने साहित्य सर्जना से पूर्व साहित्यों का गाढ़ानुशीलन किया रहा होगा। राजशेखर की प्रतिभा महाकाव्य निर्माण के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

विश्वेश्वर

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के रचनाकार के रूप में विश्वेश्वर का नाम प्रसिद्ध है। किन्तु राजशेखर की भाँति विश्वेश्वर अभिधान धारण करने वाले भी अनेक संस्कृत कवि हो चुके हैं। अतः शृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर की पृथक पहचान हेतु विश्वेश्वर नामधारी समस्त कवियों का परिचय प्रस्तुत करना अपेक्षित है।

विश्वेश्वर नाम धारण करने वाले कवि–

(क) **श्रीधरदास द्वारा उद्धृत विश्वेश्वर**–बंगाल के शासक लक्ष्मणसेन के माण्डलिक बटुदास के पुत्र श्रीधरदास ने अपनी कृति–"सदुक्तिकर्णामृत" (१२०५ ई०) में चुने लेखकों की सूक्तियों को शामिल किया है,[१] जिसमें विश्वेश्वर नामक कवि का उल्लेख है। निश्चय ही ये १२वीं या उससे पूर्ववर्ती सदी के कोई कवि होंगे।

(ख) **चमत्कारचन्द्रिकाकार विश्वेश्वर**–विश्वेश्वर या विश्वेश्वर कविचन्द्र नाम से प्रसिद्ध ये वैंकटगिरि के शासक शिंगभूपाल (१३३० ई०) के दरबारी कवि थे। ये रसमीमांसा के लेखक काशीश्वर मिश्र के शिष्य थे।[२] उन्होंने "चमत्कारचन्द्रिका" नामक अलङ्कारशास्त्र विषयक विवेचनात्मक कृति का प्रणयन किया, जिसके उदाहरणों में शिंगभूपाल की प्रसंशा है। शिंगभूपाल–रचित रसार्णवसुधाकर के वास्तविक लेखक विश्वेश्वर ही प्रतीत होते हैं।[३]

(ग) **चन्द्रालोक के टीकाकार विश्वेश्वर**– जयदेवकृत काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ चन्द्रालोक पर 'राकागम' अथवा 'सुधागम' नामक टीका लिखने वाले गंगाभट्ट का उपनाम विश्वेश्वर था। इनका जन्म बनारस के प्रसिद्ध मराठा भट्ट परिवार में हुआ था। ये "दिनकरोद्योत" नामक ग्रन्थ के प्रणेता मीमांसक

---

१. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ३८५ एवं १०७३ (इन्डेक्स)

२. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ २५५

३. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ७७१

दिनकर (या दिवाकर) भट्ट के पुत्र एवं रामेश्वर के प्रपौत्र थे। उन्होंने १६७४ ई० में शिवाजी का राज्याभिषेक किया था। १६८०-८१ई० में सम्भाजी को इन्होंने स्वरचित "समय-नय" समर्पित किया था। इन्होंने मीमांसा तथा स्मृति विषयक कई ग्रन्थ भी लिखे।[१]

(घ) लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर–ये शृंगारमञ्जरी सटट्क के प्रणेता हैं। अपेक्षाकृत अर्वाचीन कवि होने के कारण इनके विषय में अपेक्षाकृत अधिक जानकारी उपलब्ध है। इनके सम्बन्ध में सविस्तार चर्चा आगे की जायेगी।

(ङ) गीतगोविन्द के टीकाकार विश्वेश्वर–जयदेवकृत गीतगोविन्द के टीकाकार के रूप में विश्वेश्वर नाम आता है।[२] इस टीका की पाण्डुलिपि तन्जौर के पुस्तकालय में सुरक्षित है।[३]

(च) बीसवीं सदी के कवि विश्वेश्वर–बीसवीं सदी के कवि विश्वेश्वर विद्याभूषण चट्टला नगरी के निवासी थे। इनके पिता का नाम कृष्णकान्त कृतिरत्न एवं माता का नाम कुसुमकामिनी देवी था। इन्होंने अपने पिता से तथा बाद में चट्टला संस्कृत महाविद्यालय में शिक्षा पायी थी। ये चट्टला संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापन कार्योपरान्त सेवा निवृत्त हुए। इन्होंने संस्कृत भाषा में 'मणिमालिका' नामक कथा 'वनवेणु' नामक गीतकाव्य, 'काव्यकुसुमाञ्जलि' एवं 'गङ्गासुर तरङ्गिणी' नामक खण्डकाव्यों के साथ-साथ चाणक्याविजय, द्वारावती, भरतमेलन जैसे लगभग १५ रूपको का प्रणयन किया, जिसमें कुछ प्रकाशित एवं कुछ अप्रकाशित हैं।[४]

शृङ्गारमञ्जरीकार विश्वेश्वर–

लक्ष्मीधर के पुत्र विश्वेश्वर शृङ्गारमञ्जरी सटट्क के रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। अपेक्षाकृत अर्वाचीन कवि होने के कारण शृङ्गारमञ्जरीकार के विषय में पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होता है।

---

१. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास, डॉ० सुनील कुमार डे, पृष्ठ १८७-१८९

२. हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, एम० कृष्णामाचारीयार, पृष्ठ ३४२

३. वही, पृष्ठ १०७३ (इण्डेक्स)

४. आधुनिक संस्कृत नाटक–भाग–२, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ १०२६

डॉ० जगन्नाथ जोशी जी ने शृङ्गारमञ्जरी सटट्क की भूमिका में एवं श्री लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय ने अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत अपने शोध प्रबन्ध-"संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान" में पण्डित विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।

विश्वेश्वर एवं उनका वंश-

विश्वेश्वर पाण्डेय[1] वर्तमान उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा नगर के समीपवर्ती 'पटिया' नामक ग्राम के निवासी थे। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के खोर नामक गांव के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके मूलपुरुष गजाधर के चार पुत्र थे-देवदत्त, हरिदत्त, शम्भूदेव तथा श्रीवल्लभ। इनमें श्रीवल्लभ तात्कालिन-चन्द्रवंश के राजा के राज्यकाल में खोर गांव से कुमायूँ आये। प्राप्त वंशावती के शीर्षभाग में प्रमाणस्वरूप इस प्रकार एक श्लोक मिलता है-

श्री खोरग्रामवास्तव्यः कान्यकुब्जकुलाग्रणीः।

श्रीवल्लभः समायातः कूर्माद्रौ गणपर्वते।।

इस वंश का गोत्र भरद्वाज था। यह वंश चन्द्रवंश के शासकों का राजगुरु था। राजगुरु होने से पटिया गांव इनके वंशजों को जागीर में मिला था। विश्वेश्वर पाण्डेय के प्रत्यक्ष पूर्वजों एवं वंशजों की वंशावली इस प्रकार उपलब्ध होती है।

गजाधर→श्रीवल्लभ→पद्मदेव→भवदेव→विष्णुदेव→मधुसूदन→जगन्नाथ→महेश्वर→वैकुण्ठ→वेणु (गिणि)→भरत→नारायण→लक्ष्मीधर→विश्वेश्वर→जयकृष्ण→जीवनाथ→गङ्गेश्वर (गंगाधर)→भुवनेश्वर→मुनीश्वर→देवेश्वर (चुन्नीलाल)। चुन्नीलाल १९१० ई० तक जीवित रहे, इनके

---

१. (क) शृङ्गारमञ्जरी सट्टक-प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी

(ख) संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान, (अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध) डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी।

बाद यह वंश नहीं चल पाया। मुरादाबाद में इनकी पत्नी ने एक पुत्र को गोद लिया, लेकिन वह परिवार छोड़कर चला गया। विश्वेश्वर के जयकृष्ण के साथ-साथ परशुराम नामक एक अन्य पुत्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है। विश्वेश्वर के बड़े भाई का नाम महानन्द एवं छोटे भाई का नाम उमापति था। विश्वेश्वर के पिता लक्ष्मीधर के दो बड़े भाई विश्वरूप और रामेश्वर थे। विश्वरूप अल्मोड़ा के चन्द्रवंशीय राजा बाजबहादुर चन्द्र (१६३८-१६७८ ई०) के राजगुरु थे। उन्हें राजदूत के रूप में औरंगजेब के दरबर में भेजा गया था। विश्वरूप के बाद उनके पुत्र श्रीनिवास भी बाजबहादुर चन्द्र के समय राजगुरु रहे।

विश्वेश्वर के पिता पण्डित लक्ष्मीधर साहित्य एवं व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होंने विश्वेश्वर को स्वयं पढ़ाया, जिसकी पुष्टि विश्वेश्वर द्वारा अपने सभी ग्रन्थों के मंगलाचरण में अपने पिता की गुरु रूप में की गयी स्तुतियों से होती है। अपने पिता के अतिरिक्त इन्होंने विश्वरूपात्यज यशोधर जी, जो इनके बड़े चचेरे भाई थे, से भी विद्या अध्ययन किया था, ऐसी कुमायूँ में प्रसिद्धि है।[१]

विश्वेश्वर का समय—

विश्वेश्वर पाण्डेय को हम, उनके ग्रन्थ 'अलङ्कारकौस्तुभ' और 'वैयाकरण-सिद्धान्तसुधानिधि' में भट्टोजि दीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ (१६३०-१६६०) के मतों का खण्डन करते हुए पाते हैं। किन्तु कहीं भी उन्होंने भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित अथवा प्रसिद्ध वैयाकरण नागेशभट्ट के मत का उल्लेख का नहीं किया है। अतः विश्वेश्वर निश्चय ही भट्टोजि दीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ के परिवर्ती तथा हरिदीक्षित के पूर्ववर्ती या समकालीन हैं। ऐसा कहा गया है कि हरिदीक्षित काशाी में विश्वेश्वर से मिले थे।

विश्वेश्वर के पुत्र जयकृष्ण ने शक संवत् १६३८ (सन् १७१६) में श्रावण शुक्ला दशमी तिथि को विश्वेश्वर-विरचित 'समञ्जसा' को लिपिबद्ध किया था।[२] 'समञ्जसा' की रचना से पूर्व विश्वेश्वर,

---

१. डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी एवं स्थानीय लोगों से प्राप्त सूचनाओं पर आधारित।

२. दिग्गुणर्तुशशलाञ्छनयुक्ते शालिवाहनशके जयकृष्णः।
श्रावणीयसितपक्षदशम्यां निर्मितिं पितुरिमां विलिलेख।।—(मन्दारमञ्जरी—भूमिका, पृष्ठ २ पर उद्धृत)

एक नाटिका, दो नाटक, एक सट्टक, अलंकारकौस्तुभ, वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, तर्ककुतूहल और नैषधभावप्रदीप की रचना कर चुके थे, क्योंकि इनका नाम समञ्जसा में आता है। विश्वेश्वर के द्वितीय पुत्र परशुराम ने शक संवतः १६३८ (सन् १७१६ ई०) में ही भावप्रदीप नामक नैषधकाव्यटीका को लिपिबद्ध किया था।[1] इस आधार पर कहा जा सकता है, कि—विश्वेश्वर के ग्रन्थों का रचनाकाल १७१६ ई० से पूर्व ही था। कदाचित् उनकी मृत्यु के बाद ही उनके पुत्रों ने अपने पिता के यशस्वी वैदुष्य का प्रसार करने के लिए लिपिबद्ध करने का कार्य किया है।

इन्हीं सब प्रमाणों के आधार पर डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने उनके ग्रन्थों का रचनाकाल १६९४ से १७११ ई० के मध्य माना है। विश्वेश्वर पाण्डेय के जीवनकाल के सम्बन्ध में तीन मत प्राप्त होते हैं—३२ वर्ष, ३४ वर्ष एवं ४० वर्ष का। इस आधार पर जोशी महोदर कुछ हेर-फेर के साथ विश्वेश्वर पाण्डेय के जीवनकाल को १६७५ से १७१५ ई० के मध्य मानने के पक्ष में हैं।[2] जबकि आचार्य बल्देव उपाध्याय ने इनके जीवनकाल के लिए अट्ठारहवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश शब्द का प्रयोग किया है।[3]

विश्वेश्वर की जन्मभूमि एवं कर्मभूमि—

अल्मोड़ा के समीपवर्ती पटिया गांव के निवासी लक्ष्मीधर, वृद्धावस्था में पुत्र प्राप्ति की कामना से अपनी धर्मपत्नी के साथ काशी में रहने लगे। उन्होंने मणिकर्णिकाघाट पर कोटिशिवार्चन अनुष्ठान

---

१. अस्मिन् व्याकरणत्रयीरसरसासंख्याः समा बिभ्रति
श्रीहालस्य शकेऽधिपञ्चामि सहोमासस्य पक्षे सिते।
श्रीहर्षोक्तिषु नैषधीयचरिते भावप्रदीपां कृतिं
श्रीताताङ्घ्रिसरोरुहां प्रथयितुं प्राक्पर्शुरामोऽलिखत्।।—(भावप्रदीपटीका—अंतिमसर्ग (पाण्डुलिपि), सरस्वती भवन ग्रन्थसूची—भाग-२, पाण्डुलिपि नं०—४११३४-४१)

२. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ६

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ५८२

विधि को सम्पादित किया। तदनन्तर भगवान विश्वनाथ ने स्वप्न में दर्शन देकर अपने समान पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। सात मास बाद ही उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। विश्वनाथ की कृपा से प्राप्त होने के कारण नवजात शिशु का नाम विश्वेश्वर रखा गया।[1] इस प्रकार विश्वेश्वर पाण्डेय का जन्म काशी में हुआ था।

विश्वेश्वर के पश्चात् उनके वंशजों को हम कूर्माचल में प्रतिष्ठित पाते हैं। साथ ही विश्वेश्वर ने अपने को 'कूर्माचल-चक्रवर्ती-गुरु'[2] भी घोषित किया है। इससे प्रतीत होता है कि विश्वेश्वर का कर्मक्षेत्र कूर्माचल ही रहा होगा। पंडित विश्वेश्वर ने भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित को शास्त्रार्थ में पराजित किया था एवं उन दोनों की मुलाकात काशी में हुई थी।[3] इस प्रकार अनुमान किया जा सकता है, कि—विश्वेश्वर का कार्यक्षेत्र काशी भी रहा है। डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय की सूचनानुसार विश्वेश्वर का अधिकतर समय अनूपशहर में बीता। इसके अतिरिक्त वे काशी तथा अल्मोड़ा में भी रहे।

विश्वेश्वर का कृतित्व—

विश्वेश्वर पाण्डेय ने अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण, दर्शन, नाटक, धर्मशास्त्र एवं तन्त्रशास्त्र—इन विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जो उनकी विचित्र प्रतिभा का प्रमाण है। आश्चर्य का विषय है, कि उनके अनेक ग्रन्थ कूर्माचल में प्राप्त नहीं हुए, अपितु अनूपशहर, बरेली,

---

१. (क) "अयं च वार्धक्ये एवानपत्यत्वक्लेशसन्तप्तमानसाभ्यां दम्पतीभ्यां प्रपप्तव्रततपः प्रसन्नेन यदृच्छया निग्रहानुग्रहयोः प्रभवता पार्वतीजानिना विश्वेश्वरेण मत्सदृशपुत्रमाप्नुहीति वितीर्णवरप्रसादात्मसमासादित पुत्र इति विश्वेश्वर एवं भक्तमनोरथपूरणावतीर्ण इति वदन्ति।"—वैराकरणसिद्धान्तसुधानिधि भूमिका, माधवशास्त्री, पृष्ठ ३

(ख) आर्यासप्तशती—भूमिका, पृष्ठ १ (डॉ० जगन्नाथ जोशी, शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना में उद्धृत)

२. वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, पृष्ठ ७१

३. शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ५

वाराणसी, अलवर, मद्रास, पूना तथा नेपाल में सुरक्षित हैं। अविकल रूप से सब ग्रन्थ एक स्थान पर नहीं मिलते। वाराणसी में संस्कृत विश्वविद्यालयीय सरस्वती भवन ग्रन्थागार में अनेक ग्रन्थ विद्यमान हैं। कुछ ग्रन्थ काशी में ही गणेशदत्त शास्त्री जी के निजी हस्तलिखित पुस्तक संग्रह में सुरक्षित हैं। नेपाल के राष्ट्रीय पुस्तकालय में भी कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हो सकते हैं। नेपाल के स्वर्गीय राजगुरु हेमराज पण्डित जी ने अपने निजी पुस्तकालय में इनके अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि कराई थी। इनके लिखे ग्रन्थों की तालिका 'आफ्रेक्ट' ने अपने 'कैटलागस कैटलागर' (ग्रन्थ और ग्रन्थकारों की सूची) में दी है, जो इस प्रकार है—(१) अलङ्कारप्रदीप (२) अलङ्कारकौस्तुभ (३) अलङ्कारमुक्तावली (४) रसचन्द्रिका (५) तर्ककुतूहल (६) तत्वचिन्तामणिदीधितिप्रवेश (७) कवीन्द्रकर्णाभरण (८) समञ्जसा (९) काव्यरत्नम् (१०) वैयाकरणसिद्धान्त सुधानिधिः (११) अशौचीयदशश्लोकीविवृत्तिः (१२) अभिधेयार्थचिन्तामणि (१३) आर्यासप्तशती (१४) मन्दारमञ्जरी (१५) रोमावलीशतकम् (१६) नैषधभावप्रदीप (१७) काव्यतिलक (१८) षड्ऋतुवर्णनम् (१९) होलिकाशतकम् (२०) वक्षोजशतकम् (२१) लक्ष्मीविलासः (२२) रुक्मिणीपरिणयम् (२३) अभिरामराघवम् (२४) नवमालिका (२५) शृङ्गारमञ्जरी।[१]

इनमें से कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं तथा कुछ टीकायें हैं। इनमें से कुछ उपलब्ध हैं तथा कुछ अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध ग्रन्थों में भी कुछ अभी अप्रकाशित हैं। इन सभी कृतियों का विषयानुसार संक्षिप्त परिचय क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) काव्य-शास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(i) अलङ्कारप्रदीप—यह ग्रन्थ पहली बार अलङ्कार-शास्त्र को आरम्भ करने वाले पाठकों के लिए लिखा गया जान पड़ता है, क्योंकि—इसमें केवल अर्थालङ्कारों को सरल शब्दावली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें अलङ्कारों के स्वरूप पर गहन शास्त्रीय विचार नहीं किया गया है। कुल ११९

१. कैटलागस कैटलागरम—भाग २, डियोकर आफ्रेक्ट, पृष्ठ १३९

अर्थालङ्कारों के सामान्य लक्षण एवं स्वरचित पद्यों में उदाहरण दिये गये हैं। १९२३ ई० में विष्णुप्रसाद भण्डारी के सम्पादकत्व में, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी से प्रकाशित हो चुका है।

(ii) अलङ्कारकौस्तुभ—यह अलङ्कार-शास्त्र का एक प्रौढ़ ग्रन्थ है। नव्य न्याय शैली में निबद्ध इस कृति में मम्मट सम्मत ६१ अर्थालङ्कारों के विभिन्न मतों का खण्डन-मण्डन परक शास्त्रीय विवेचन है। इसमें पण्डितराज जगन्नाथ के मतों का अधिकतर खण्डन किया गया है। अप्पय दीक्षित का भी उन्होंने उल्लेख किया है। अपने कनिष्ठ भ्राता उमापति का भी लेखक ने उल्लेख किया है। शास्त्रकार ने प्रसङ्गतः इसमें व्याकरण, न्याय, मीमांसा, वेदान्त आदि सभी शास्त्रों की चर्चायें की हैं, अनेक शास्त्रकारों के उदाहरण दिये हैं। जिससे यह ग्रन्थ सर्वाङ्गपूर्ण बन गया है। विश्वेश्वर ने इस ग्रन्थ पर अपनी स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है, जो परिकरालङ्कार तक ही मिलती है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन, लेखक की अपनी मूल शब्दावली सहित, शिवदत्त तथा के०पी० परब महोदयों के सम्पादकत्व में १८८९ ई० में, निर्णय सागर प्रेस बम्बई से हुआ है।

(iii) अलङ्कारमुक्तावली—अलङ्कार कौस्तुभ की रचना के उपरान्त, संभवतः उसे समझने के लिए एक अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा का अनुभव करते हुए आचार्य ने इसकी रचना की थी।[१] इसमें प्रस्तुत अलङ्कारों के लक्षण वही हैं जो अलङ्कारकौस्तुभ में है, परन्तु वृत्ति एवं उदाहरण भिन्न हैं। इसमें अन्य कवियों द्वारा रचित उदाहरणों के साथ-साथ स्वरचित उदाहरण भी आचार्य ने प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ का प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी से विष्णुप्रसाद भण्डारी महोदय के सम्पादकत्व में १९२७ ई० में हो चुका है। (अलङ्कारमुक्तावली नाम की रामसुधीश्वर, कृष्ण दीक्षित एवं लक्ष्मीधर दीक्षित की अन्य कृतियाँ भी उपलब्ध होती हैं।)

(iv) रसचन्द्रिका—यह काव्यशास्त्र का सारभूत ग्रन्थ है। इसका प्रतिपाद्य विषय नायक–नायिका

---

१. नानापक्षविभावनकुतुकमलङ्कारकौस्तुभं कृत्वा।
सुखबोधाय शिशूनां क्रियते मुक्तावली तेषाम्।।—अलङ्कारमुक्तावली

के भेद, वृत्ति निरूपण, रसनिष्पत्ति प्रक्रिया, रसभावादि विवेचन, मायारस की स्थापना के साथ-साथ उसका खण्डन आदि है। इसके उदाहरणों में आचार्य ने स्वरचित पद्यों को भी प्रस्तुत किया है। इसका प्रकाशन चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी से, १९२६ ई० में विष्णु प्रसाद भण्डारी महोदय के सम्पादकत्व में हो चुका है।

(v) **कवीन्द्रकर्णाभरण**—यह कवि शिक्षा सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। चार अध्यायों में निबद्ध इस कृति में चित्रकाव्य के ५८ भेदों का वर्णन है। इसमें पहेलियाँ, चक्रबन्ध, पद्मबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध आदि अनेक कठिन बन्धों का सफलतापूर्वक निबन्धन हुआ है। निर्णय सागर प्रेस बम्बई से१८९१ ई० में यह प्रकाशित हो चुका है।

(vi) **समञ्जसा (रसमञ्जरी टीका)**—यह टीका ग्रन्थ है जो भानुदत्त प्रणीत रसमञ्जरी पर लिखी गयी है। इसमें विश्वेश्वर ने रसमञ्जरी के पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतों की युक्ति पूर्वक आलोचना करते हुए काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमें काव्य-स्वरूप, काव्य-भेद, रस-स्वरूप, नायक-भेद आदि का निरूपण है। यह 'व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह अभी तक अप्रकाशित है, जिसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार में प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

(vii) **काव्यरत्नम्**—यह अनुपलब्ध ग्रन्थ है। डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने इसके काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ होने का अनुमान किया है।[१]

(ख) व्याकरण विषयक ग्रन्थ—

(viii) **वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधिः**—यह रचना अष्टाध्यायी सूत्र क्रम में, पातञ्जल महाभाष्य के समान व्याकरण का आकर ग्रन्थ है। इसमें कात्यायन, पतञ्जलि, कैय्यट, भर्तृहरि, हरदत्त, जिनेन्द्रबुद्धि,

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १६

भट्टोजि दीक्षित आदि अनेक वैयाकरणों के मतों की चर्चा करते हुए शास्त्रीय एवं दार्शनिक तत्वों को उद्घाटित किया गया है। इस ग्रन्थ में कात्यायन तथा पतञ्जलि के मतों की लाघव–गौरव चर्चा करते हुए विश्वेश्वर जी ने यथास्थान अनेक अस्पष्ट विषयों को स्पष्ट करते हुए अपने मत को स्थापित किया है। इसमें ३३ व्याकरण ग्रन्थ, ५ वैदिक ग्रन्थ, ६ वेदान्त ग्रन्थ, ५ मीमांसा ग्रन्थ, ४ न्याय ग्रन्थ एवं ७ साहित्य शास्त्र के ग्रन्थों के उद्धरणों को प्रस्तुत किया गया है।[१] इसमें नव्य न्याय की शैली में व्याकरण शास्त्र के प्रमेयों को तर्क के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रन्थ अधूरे रूप में (तृतीय अध्याय चतुर्थपाद के प्रथमाह्निक तक), चौखम्बा वाराणसी से प्रकाशित है, शेष अंश रघुनाथ पुस्तकालय जम्बू में प्रकाशन की प्रतीक्षा में है।

(ग) न्याय-दर्शन विषयक ग्रन्थ—

(ix) तर्ककुतूहल—यह न्याय दर्शन का प्रकरण ग्रन्थ है। यह दो परिच्छेदों एवं २४ अंशों में विभक्त है। नव्य न्याय शैली से प्रभावित इस ग्रन्थ में अनेक ग्रन्थकारों के उद्धरण दिये गये हैं। इसमें अद्वैत मत का खण्डन कर द्वैत मत का प्रबल समर्थन किया गया है। विश्वेश्वर पाण्डेय ने द्वैत मत का समर्थन करने के लिए अद्वैत वेदान्तियों के सिद्धान्तों के मूल में ही करारी चोट की है। वेदान्त दर्शन उपनिषद वाक्यों को प्रमाण मानते हैं, अतः ग्रन्थकार ने अद्वैत दर्शन की श्रुतिगम्यता का खण्डन कर युक्ति एवं प्रमाणों से उपनिषद वाक्यों का द्वैतपरक अर्थ प्रतिपादित किया है। साथ ही उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता, स्मृतियों, पुराणों आदि में प्राप्त अद्वैत–परक मतों का भी खण्डन किया है। यह ग्रन्थ तर्कशास्त्र में विश्वेश्वर पाण्डेय की प्रवीणता को व्यक्त कर उन्हें नैयायिक धुरन्धर बतलाने के लिए पर्याप्त है। यह ग्रन्थ श्री नित्यानन्द स्मारक समिति वाराणसी में श्री जनार्दन शास्त्री पाण्डेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो चुका है।

(x) **तत्वचिन्तामणिदीधितिप्रवेश**—यह नव्य न्याय का एक व्याख्यात्मक ग्रन्थ है, जो गंगेशोपाध्याय-

---

१. द्रष्टव्य—पं० माधवशास्त्री भण्डारी द्वारा लिखित प्रकृत ग्रन्थ की भूमिका के अंत में दी गयी सूची।

प्रणीत 'तत्वचिन्तामणि' की 'दीधति' व्याख्या पर टीका है। इसमें तर्कशास्त्रीय विचारों का प्रणयन बड़ी प्रौढ़ता के साथ किया गया है। यह कृति, मूलग्रन्थ तथा उसकी दधीति नामक टीका के दुर्लभ न्याय मतों को प्रस्फुटतया उन्मीलित करती है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है।

(घ) धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(xi) अशौचीयदशश्लोकीविवृत्ति–धर्मशास्त्र विषयक यह ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(ङ) तंत्रशास्त्र विषयक ग्रन्थ—

(xii) अभिधेयार्थचिन्तामणि—तन्त्रशास्त्र विषयक यह ग्रन्थ सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(च) काव्य विषयक ग्रन्थ—

(xiii) आर्यासप्तशती—यह गीतकाव्य है। यह कृति गोवर्धनाचार्य-विरचित आर्यासप्तशती से भिन्न है। इसमें ७६४ मुक्तक आर्याओं का संकलन है। इसकी प्रारम्भिक आर्याओं में कवि ने देवी–देवताओं, कवियों व अपने गुरु एवं पिता लक्ष्मीधर तथा कुमायूँ नरेश रुद्रचन्द्र की वन्दना की है। बाद की आर्यायों में वेद, दर्शन, व्याकरण आदि से सम्बन्धित शास्त्रीय चर्चायें सरसता पूर्वक की गयी हैं। इसमें भाषा तथा भाव दोनों उत्कृष्ट कोटि के हैं। विश्वेश्वर को अपने आर्या छन्द के प्रयोग पर गर्व था, और यह गर्व निष्कारण नहीं था। भाव तथा शब्द का संतुलन इस छोटे से छन्द में जिस प्रभावकारी ढंग से विश्वेश्वर ने किया है, वह इनके अभिमान का यथार्थ कारण है। विश्वेश्वर ने इस ग्रन्थ की टीका भी लिखी है। इस कृति का प्रथम प्रकाशन चौखम्बा संस्कृतियाँ सीरीज से एवं द्वितीय प्रकाशन उस्मानियाँ विश्वविद्यालय से हुआ है।

(xiv) मन्दारमञ्जरी—यह कथा कोटि का गद्य काव्य है, जिसके वर्णनक्रम एवं शैली पर बाण का प्रभाव है। विश्वेश्वर पाण्डेय न्याय एवं व्याकरण का पण्डित होने के कारण शास्त्रीय उपमाओं के प्रदर्शन से अपने आप को रोक नहीं पाये हैं, जिससे यह गद्यकाव्य कादम्बरी की अपेक्षा दुरूह हो गया है। मन्दारमञ्जरी का पूर्वभाग ही विश्वेश्वर द्वारा प्रणीत है, इसके उत्तर–भाग की रचना

उनके पुत्र या शिष्य द्वारा की गयी है, ऐसी कर्णपरम्परा है। इसके पूर्व–भाग का प्रकाशन तारादत्त पंत की संस्कृत टीका के साथ प्रोफेसर गोपालदत्त पाण्डेय के सम्पादन में पर्वतीय प्रकाशन मण्डल, काशी से हुआ है। उत्तर-भाग अभी अप्रकाशित है।

(xv) **रोमावलीशतकम्**—१०१ शृङ्गार प्रधान पद्यों वाली इस कृति में नायिका की रोमावली का मनोहारी वर्णन मिलता है, साथ ही रोमावली को जोड़ने वाली अधोवर्ती नाभि–गह्वर एवं उर्द्धवर्ती वक्षद्वय का भी शृङ्गारिक वर्णन अति मनोरम लौकिक रूपकों द्वारा किया गया है। यह शतक काव्य, काव्यमाला सिरीज के अष्टम गुच्छक से प्रकाशित है।

(xvi) **षड्ऋतुवर्णनम्**—यह कृति अनुपलब्ध है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें छहों ऋतुओं का वर्णन किया गया होगा।

(xvii) **काव्यतिलक**—यह शतक कोटि की रचना है। उसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार में सम्पादन की प्रतीक्षा में है।

(xviii) **होलिकाशतकम्**–यह कृति अनुपलब्ध है।

(xix) **नैषधभावप्रदीप**–यह श्रीहर्ष–प्रणीत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' पर लिखित टीका ग्रन्थ है, जो सम्पूर्ण नैषधीयचरित पर उपलब्ध नहीं है। नैषध की पाण्डित्यपूर्ण दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने वाले विद्वान विरले ही हैं। यह टीका नैषध के भाव को प्रकाशित करने वाली है। इसमें विश्वेश्वर ने अनेक पूर्ववर्ती टीकाकारों की आलोचना की है। यह सम्प्रति अप्रकाशित है। इसके प्रकाशित होने पर एक बड़े अभाव की पूर्ति होगी। इसकी पाण्डुलिपि सरस्वती भवन वाराणसी के ग्रन्थागार में सुरक्षित है।

(xx) **वक्षोजशतकम्**—यह शतक काव्य अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया है।

(xxi) **लक्ष्मीविलासः**—यद्यपि यह काव्य अभी तक अनुपलब्ध है, किन्तु इसके सम्बन्ध में डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय का अनुमान है कि–यह शतक काव्य था, तथा कवि ने इसमें अपने पिता

एवं गुरु लक्ष्मीधर की स्तुति के साथ-साथ उनकी जीवनी लिखी होगी।[1] यह अनुमान सत्य में कितना निकट है? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यहाँ यह अनुमान भी किया जा सकता है कि—कवि ने धन देवी 'लक्ष्मी' के कार्यों, क्रियाओं, परिणामों आदि पर आधारित शतक काव्य लिखा होगा।

(छ) रूपक साहित्य—

(xxii) रुक्मिणीपरिणयम्—यह नाट्यकृति सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। अलङ्कारकौस्तुभ[2] एवं अलङ्कारमुक्तावली[3] में इसके अनेक पद्य मिलते हैं। नाम के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि—इसकी कथावस्तु, कृष्ण-रुक्मिणी विवाह से सम्बद्ध होगी। इसी नाम का एक अन्य नाटक उपलब्ध है जो त्रावणकोर के रामवर्मन् (१७३५-८७ ई०) द्वारा रचित है।

(xxiii) अभिरामराघवम्—यह कृति भी अनुपलब्ध है। डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने इसके नाट्य कृति होने का अनुमान किया है,[4] जबकि डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी महोदय का अनुमान है कि यह खण्डकाव्य रहा होगा।[5] अलंकारकौस्तुभ[6] एवं अलंकारमुक्तावली[7] में इसके पद्य मिलते हैं।

(xxiv) नवमालिका—यह चार अङ्कों में निबद्ध नाटिका है, जो विजयसेन एवं नवमालिका की प्रेमकथा पर आधारित है। इस नाटिका का प्रधान रस शृङ्गार है। इसकी प्रस्तावना में नाटिकाकार ने नट द्वारा अपने गोत्र का परिचय करवाया है।[8] भाषा के आधार पर इसके कवि की प्रथम कृति

---

१. शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १६

२. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ २८१, ३८१

३. अलङ्कारमुक्तावली, पृष्ठ २४, ३६

४. शृङ्गारमञ्जरी प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०

५. "संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान" डॉ० लक्ष्मीदत्त जोशी, पृष्ठ ९७

६. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ १८०

७. अलङ्कारमुक्तावली, पृष्ठ ९, १८

८. नवमालिका नाटिका, पृष्ठ २

होने का अनुमान किया गया है।[1] यह 'मालवमयूर पत्रिका', मन्दसौर, म०प्र० से प्रकाशित है।

(xxv) शृङ्गारमञ्जरी—यह एक सट्टक है, जिसके विषय में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है एवं शोधार्थ गृहीत कृति होने के कारण अगले अध्यायों में इसकी सविस्तार चर्चा की जायेगी। यहाँ मात्र इतना कथनीय है, कि इसके उदाहरण अलङ्कारकौस्तुभ[2] और रसचन्द्रिका[3] में मिलते हैं। सर्वप्रथम इसका सम्पादन डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने पूना विश्वविद्यालय की शोधपत्रिका में १९६१ के अंङ्क में किया था। इस सट्टक की दो प्रतियाँ पूना के भण्डारकर शोधसंस्थान में विद्यमान थीं, जिसके आधार पर डॉ० उपाध्ये ने इस ग्रन्थ को सम्पादित किया। इसका द्वितीय प्रकाशन चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी से हुआ है, जिसे संस्कृतच्छाया, हिन्दी व्याख्या, साहित्यिक समीक्षा आदि से विभूषित करने का श्रेय कुमायूँ विश्वविद्यालय नैनीताल में (सन् १९९० ई०) उपाचार्य पद पर प्रतिष्ठित, डॉ० जगन्नाथ जोशी जी को है। डॉ० ए०एन० उपाध्ये ने चन्द्रलेहा सट्टक की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में विश्वेश्वर की इस कृति के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है।

विश्वेश्वर पाण्डेय प्रणीत उपर्युक्त कृतियों के रचनाक्रम के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना कठिन है। कुछ कृतियों के अनुपलब्ध होने से यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। फिर भी उनकी उपलब्ध कृतियों में यत्र तत्र उनकी अन्य कृतियों का उल्लेख होने से, कुछ कृतियों का पूर्ववर्ती एवं परवर्ती होना ज्ञात हो जाता है। कुछ कृतियों का उनकी लेखन शैली, विषय वस्तु आदि के आधार पर पूर्ववर्ती का अनुमान किया जा सकता है। सम्भवतः इसी आधार पर डॉ० जगन्नाथ जोशी महोदय ने प्रकाशित एवं कुछ अप्रकाशित कृतियों का क्रम इस प्रकार दिया है—नवमालिका, शृङ्गारमञ्जरी, अभिरामराघव, रुक्मिणीपरिणय, अलंकारकौस्तुभ, अलंकारप्रदीप, अलंकारमुक्तावली, रसचन्द्रिका, वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि, आयर्सिप्तशती, मन्दारमञ्जरी, कवीन्द्रकर्णाभरण, रोमावलीशतकम्, एवं तर्ककुतूहलम्।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—प्रस्तावना, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९

२. अलङ्कारकौस्तुभ, पृष्ठ ३४७

३. रसचन्द्रिका, पृष्ठ ९०

विश्वेश्वर का व्यक्तित्व

भगवान विश्वेश्वर के आशीर्वाद स्वरूप काशी में उत्पन्न हुए, विश्वेश्वर पाण्डेय पं० लक्ष्मीधर के सुपुत्र थे। इनका सम्पूर्ण परिवार ही वाग्देवी के वैभव-विलास से परिपूर्ण था। इनके पिता ने खुद ही इनके गुरु के दायित्व का भी निर्वाह किया था, जिसके लिए अपने ग्रन्थों के मंगलाचरण में पण्डित विश्वेश्वर, अपने गुरु एवं पिता को असीम श्रद्धा के साथ नमस्कार ज्ञापित करते हुए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। पंडित लक्ष्मीधर में पाण्डित्य के साथ-साथ कवित्व शक्ति का भी समन्वय था, यह उनके लिए प्रयुक्त विशेषणों से स्पष्ट होता है। विश्वेश्वर को यह शक्ति विरासत में प्राप्त हुई थी। इनके चचेरे भाई यशोधर जी उच्चकोटि के विद्वान थे। उनसे भी विश्वेश्वर ने शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था। अपने छोटे भाई उमापति के प्रौढ़-पाण्डित्य का परिचय स्वयं विश्वेश्वर ने 'अलंकारकौस्तुभ' के परिकरालंकार प्रकरण में दिया है।

विश्वेश्वर बाल्यकाल से ही मेधावी थे। कहा जाता है कि प्रखर बुद्धि होने के कारण वह जिस शास्त्र का अध्ययन करते, उसी शास्त्र में ग्रन्थ रचना भी तत्काल प्रारम्भ कर देते थे। दस वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने शास्त्रों पर ग्रन्थों का प्रणयन आरम्भ कर दिया था। एक किम्बदन्ती के अनुसार उन्होंने यशोधर जी से नैषध के अध्ययन के समय ही उसकी टीका लिखकर, उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया था।

संस्कृत के विद्वानों में अनेक शास्त्रों के ग्रन्थ-प्रणयनकर्ता प्रायः कम ही मिलते हैं। सामान्यतः किसी एक शास्त्र पर अधिकार प्राप्त करना भी दुष्कर हो जाता है, और फिर अनेक शास्त्रों पर समान रूप से अधिकार प्राप्त कर ग्रन्थ प्रणयन करना अलौकिक प्रतिभा सम्पन्नता का ही द्योतक है। विश्वेश्वर पाण्डेय ऐसे ही कवियों में एक हैं। वे आलोचनाशास्त्र के मर्मज्ञ एवं अपने युग के महान साहित्य स्रष्टा थे। उनका ज्ञान विशाल था। साहित्य, न्याय, व्याकरण, नाटक, गद्य, तन्त्र आदि विषयों पर जो कुछ भी इन्होंने लिखा है; वह केवल उत्कृष्ट ही नहीं अपितु इन्हें संस्कृत साहित्य

में अमर बनाने वाला है। इन्होंने विविध शास्त्रों पर मौलिक लेखन व्याख्या-रचना तथा खण्डन-मण्डन करके, एक ओर तो शास्त्रज्ञ एवं समीक्षा कुशलता का परिचय दिया; तो दूसरी ओर सरस-काव्य-धारा की हर विधा यथा-खण्डकाव्य, शतक-काव्य, स्तोत्र-काव्य, ऋतु-काव्य, गद्य-काव्य, महाकाव्य-व्याख्या, नाटक, नाटिका, सट्टक, आदि पर ग्रन्थ रचना करके उच्चकोटिक प्रतिभामण्डित कवित्व को घोषित, प्रमाणित एवं सूचित किया है। सट्टक की रचना करके विश्वेश्वर जी ने अपनी प्राकृत विषयक क्षमता का परिचय दिया है।

साहित्यशास्त्रीय तत्त्वों की विवेचना एवं नाट्य तत्त्वों की समीक्षा के लिए आपकी 'रसचन्द्रिका' एवं भानुदत्तरचित रसमञ्जरी की टीका 'समञ्जसा' पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करती है। अलंकारशास्त्र पर लिखे गये आपके ग्रन्थ अलंकारकौस्तुभ, अलंकारप्रदीप तथा अलंकारमुक्तावली काव्यशास्त्र पाण्डित्य के प्रतिबिम्ब ही हैं। नव्य-न्याय-शैली में निबद्ध आपका अलंकारकौस्तुभ ग्रन्थ, पाण्डित्य प्रदर्शन पूर्वक लिखा गया एवं काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का उद्घाटक है; जो संभवतः पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि की शैली में निबद्ध होने से, उन-उन ग्रन्थों को हतप्रभ करने की दृष्टि से लिखा गया होगा। निश्चय ही विश्वेवर, भट्टोजि दीक्षित एवं पण्डितराज जगन्नाथ के अनन्तर प्रधान मौलिक ग्रन्थकार हैं; जो संस्कृत की चिर-नूतनता को अपनी कृतियों द्वारा सुरक्षित रख गये हैं।

समग्र संस्कृत साहित्य में काव्यकला की मधुरता तथा दर्शनशास्त्र की प्रौढ़ता के समन्वय स्थल के रूप में श्रीहर्ष का स्थान सर्वथा स्थापित है। इसी शैली के पथिक विश्वेश्वर पाण्डेय भी एक ओर शास्त्रज्ञ दार्शनिक हैं, तो दूसरी ओर सरस-काव्य-कला के धनी। इसीलिए आप ने श्रीहर्ष के प्रौढ़ महाकाव्य नैषधीयचरित पर, विद्वतापूर्ण 'भावप्रदीप' नामक टीका के द्वारा अपने व्याख्या कौशल को दर्शित कर उनसे साम्य स्थापित करने का सफल प्रयास किया है।

व्याकरण एवं न्याय, विश्वेश्वर के वैदुष्य के विशाल स्तम्भ हैं। उनका व्याकरण ग्रन्थ-

'सिद्धान्तसुधानिधि' भट्टोजि दीक्षित के 'सिद्धान्तकौमुदी' से किसी भी अंश में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु खेद है कि यह आज सम्पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं है।

न्याय-शास्त्र-कौशल के परगामी वैदुष्य के परिचायक दो ग्रन्थ 'तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रवेश' एवं 'तर्ककुतूहलम्' आचार्य पाण्डेय को विशुद्ध तर्कशास्त्रियों तथा नव्य-नैयायिकों की अग्रपंक्ति में समासीन कर देते हैं। गंगेशोपाध्याय जैसे महान नैयायिक की अमरकृति पर टीका लिखने का साहस विश्वेश्वर पाण्डेय के अतिरिक्त कौन कर सकता है।

विश्वेवर की बहुसंख्यक एवं बहुविषयक कृतियों से उनकी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों का ज्ञान होता है। सामान्यतः कवि शास्त्रीय या प्रौढ़ रचनाएं उम्र के उत्तरार्द्ध में ही कर पाता है, परन्तु विश्वेश्वर के सन्दर्भ में यह अति आश्चर्य का विषय है कि मात्र ३४ (या ३२ या ४०) वर्ष की उम्र तक के अपने जीवनकाल में ही कवि ने सामान्य रचनाओं के साथ-साथ अनेक प्रौढ़ रचनाएं कीं, जो उनकी विचित्र प्रतिभा का परिचायक है। निश्चय ही वे वयोवृद्ध होने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर पाये, परन्तु अपने कार्यों द्वारा उन्होंने अपने आपको ज्ञानवृद्ध के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तुलनात्मक परिशीलन

व्यक्ति अपने काल एवं परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। राजशेखर एवं विश्वेश्वर के व्यक्तित्व का जहाँ तक प्रश्न है, तो उनकी कालावधि में लगभग सात शताब्दियों का अन्तर है। राजशेखर का अभ्युदय उस काल में हुआ, जब कवियों में एक-दूसरे से बड़ा एवं श्रेष्ठ कवि अपने को सिद्ध करने की होड़ लगी हुई थी। इसके लिए काव्य-सर्जना के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग हो रहे थे। राजशेखर ने भी अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करने हेतु, शिशु रूप में विद्यमान सट्टक विधा को कर्पूरमञ्जरी जैसा उपहार प्रदान कर, युग प्रवर्तक का कार्य किया। यह नवीं दशवीं सदी

के उस परिवेश का ही प्रभाव था, कि—राजशेखर को खुद अपने लिए गर्वोक्तियाँ करनी पड़ी। जहाँ तक विश्वेश्वर की बात है, तो ये उस काल के विभूति हैं, जब भारत में संस्कृतेत्तर भाषाओं में साहित्य सर्जना का दौर उत्कर्ष पर था। ऐसे परिवेश में संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में साहित्य सर्जना कर उसे लोकप्रिय बनाना, अपने आप न केवल बड़ी उपलब्धि है, अपितु इससे कवि का कवित्व स्वतः प्रमाणित हो जाता है।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर दोनों ही जन्मजात कवि थे। दोनों का परिवार विद्वानों का परिवार था। अतः दोनों को ही अपनी कवि प्रतिभा को निखारने हेतु तदनुकूल परिवेश के लिए भटकना नहीं पड़ा। दोनों ही विविध शास्त्रों के मर्मज्ञ एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। एक तरफ राजशेखर बहुभाषाविद् थे, तो विश्वेश्वर ने राजशेखर की अपेक्षा अधिक विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर, अपनी बहुज्ञता सिद्ध की थी।

राजशेखर यद्यपि प्रतिभाशाली हैं, उन्होंने न केवल नाट्य कृतियों का प्रणयन किया है, अपितु काव्यशास्त्रों जैसे गंभीर विषय पर भी विश्वेश्वर की भाँति अपनी लेखनी चलाई है, किन्तु वे आत्मश्लाघा करके अपने व्यक्तित्व के हल्केपन को उजागर करते हैं। अपने को सर्वभाषाचतुर कहने का प्रसंग हो या भर्तृमण्ठ वाल्मीकि एवं भवभूति का अवतार या अपने को कवियों में सर्वश्रेष्ठ पदवी 'कविराज' से सुशोभित करने का प्रसंग हो, ये सभी कथन उनके अहंकार को उद्घाटित करते हैं। यद्यपि विश्वेश्वर ने भी शृङ्गारमञ्जरी सट्टक मे अपने को अनेक उत्कृष्ट विद्वानों द्वारा सम्मानित[१], तर्कशास्त्र के शास्त्रार्थ में अजेय, सम्राट के आदेश की भाँति विद्वानों में सम्मान्य आदेश वाला आदि[२] कहकर राजशेखर के मार्ग का ही कुछ हद तक अनुशरण किया है, फिर भी इनका कथन राजशेखर की अपेक्षा सहज प्रतीत होता है; जो उनकी अपेक्षाकृत सरल हृदयता को द्योतित करता है।

राजशेखर ने क्षत्रिय कन्या से विवाह करके अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति भी

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/८

२. शृङ्गारमञ्जरी—१/१२

मजबूत की थी। 'ब्राह्मण क्षत्रिय कन्या से विवाह कर सकता है,' इस सैद्धान्तिक मान्यता को राजशेखर ने व्यवहारिकता प्रदान की, जो राजशेखर की दृढ़ता एवं दृढ़ इच्छाशक्ति को द्योतित करता है। उन्होंने सामान्य परम्परा से हटकर वह कर दिखाया, जो उन्हें समाज की परवाह न करने वाले के रूप में प्रतिष्ठित करता है। विश्वेश्वर इस दृष्टि से सामान्य एवं सरल प्रवृत्ति के प्रतीत होते हैं।

राजशेखर एवं उनके जीवनकाल के सम्बन्ध में विश्वेश्वर की अपेक्षा कम जानकारी है। उनकी कृतियों एवं कथनों के आधार पर अनुमानित उनका व्यक्तित्व विश्वेश्वर की अपेक्षा अधिक रहस्यपूर्ण है। राजशेखर अपने को सर्वभाषाचतुर कहते हैं। यदि हम विश्वेश्वर पर विचार करें तो इसमें सन्देह नहीं कि विश्वेश्वर संस्कृत एवं प्राकृत के अतिरिक्त अपने काल की सामान्य बोल-चाल की भाषा हिन्दी एवं अल्मोड़ा तथा वाराणसी से सम्बद्ध होने के कारण वहाँ की क्षेत्रीय बोलियों से अवश्य परिचित रहे होंगे। परन्तु विश्वेश्वर ने इस प्रकार का कथन करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। विश्वेश्वर ने अपने अल्प जीवनकाल में विविध विषयों पर अनेक कृतियों का प्रणयन किया, जिससे वे विषयगत एवं शैलीगत वैविध्य के कारण राजशेखर का अतिक्रमण कर गये हैं।

राजशेखर में विश्वेश्वर की अपेक्षा मौलिकता की कमी प्रतीत होती है। राजशेखर ने रामायण, महाभारत जैसे कथा के सम्पूर्ण कथानक को अपने नाट्यों का आधार बनाया है। वह स्वतन्त्र कथा का आधार लेकर अथवा रामायण, महाभारत के किसी अंश विशेष को आधार बनाकर भी सुन्दर नाट्य लिख सकते थे, परन्तु यह नहीं कर सके हैं। कर्पूरमञ्जरी एवं विद्धशालभञ्जिका की कथा में भी वे अपने पूर्ववर्ती हर्ष आदि कवियों से पर्याप्त सहायता लेते हुए दिखते हैं। यद्यपि उन्होंने इसमें कुछ परिवर्तन का प्रयास किया है, पर वह इतना स्वाभाविक नहीं बन पड़ा है जितना अपेक्षित है, जिसे कर्पूरमञ्जरी के प्रसङ्ग में आगे के अध्यायों में हम देखेंगे। राजशेखर के सम्बन्ध में यह भी नहीं कहा जा सकता कि कर्पूरमञ्जरी जैसे सट्टक विधा की कल्पना उनकी अपनी है। यह विधा पहले से विद्यमान थी, जैसा पिछले अध्याय में चर्चा की जा चुकी है, हाँ इतना अवश्य है कि सट्टक

के प्राकृत भाषा में प्रणयन की परम्परा का सूत्रपात राजशेखर ने ही किया। दूसरी तरफ विश्वेवर में मौलिकता कूट–कूट-कर भरी है। उन्होंने अनेक ऐसे विषयों पर अपनी लेखनी चलाई जो सर्वथा नवीन था। शृङ्गारमञ्जरी में भी उनके द्वारा कल्पित कथा सर्वथा स्वाभाविकता के साथ आगे बढ़ती है, जिसे हम आगे के अध्यायों में देखेंगे।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर में एक आश्चर्यजनक समानता यह है, कि दोनों का सम्बन्ध जीवन के किसी काल में वाराणसी से अवश्य रहा है। जहाँ वाराणसी में राजशेखर ने संभवतः अपनी वृद्धावस्था में निवास कर देहावसान को प्राप्त किया, वहीं विश्वेश्वर ने वाराणसी में जन्म लेकर, वहाँ अपना बचपन व्यतीत किया।

●●●

तृतीय-अध्याय

कथावस्तु-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी का कथानक

कर्पूरमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप

(ख) अन्तः स्वरूप

१-आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

२-अर्थोपक्षेपक ३-नाट्योक्ति

४-अर्थप्रकृतियाँ ५-कार्यावस्थायें

६-सन्धि-योजना ७-सन्ध्यङ्ग-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक

शृङ्गारमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप

(ख) अन्तः स्वरूप

१-आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

२-अर्थोपक्षेपक ३-नाट्योक्ति

४-अर्थप्रकृतियाँ ५-कार्यावस्थायें

६-सन्धि-योजना ७-सन्ध्यङ्ग-योजना

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों के कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन

तृतीय-अध्याय

कथावस्तु-विवेचन

आचार्यों ने वस्तु, नेता एवं रस को नाट्य के भेदक तत्व के रूप में स्वीकार किया हैं;[१] जो अपनी बहुरूपता एवं विभिन्नता के कारण दश प्रकार के रूपकों एवं १८ या २० अथवा इससे से अधिक प्रकार के उपरूपकों के भेद का आधार प्रस्तुत करते हैं। इनमें जो प्रथम भेदक तत्व वस्तु हैं; उसे ही कथा, इतिवृत्त, कथावस्तु, कथानक आदि नामों से भी जाना जाता हैं। रूपककार सामाजिक के समक्ष रंङ्गमञ्च पर पात्रों के माध्यम से विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के द्वारा रस की पुष्टि कराता हुआ, जिन घटनाओं को प्रस्तुत करता हैं; वही उस रूपक की कथावस्तु हैं। इस प्रकार वस्तु का स्वरूप पात्र एवं रस की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि वही पात्र एवं रस के लिए आधार प्रस्तुत करता हैं।

सट्टक में कथावस्तु योजना का जहां तक प्रश्न हैं, यह नाटिका के समान ही हुआ करती हैं, केवल प्रवेशक एवं विष्कम्भक इसमें नहीं होता। इनके अभाव का कारण सम्भवतः यह हैं, कि इसकी कथानक योजना करते समय दर्शक के रूप में जन-सामान्य को ध्यान में रखा जाता होगा। इस दृष्टि से सूचित करने योग्य घटनाओं को भी अभिनीत कर प्रस्तुत करना ही उचित समझा गया होगा, जिससे जन-सामान्य उन घटनाओं को अच्छी तरह समझ सके, जो घटित हुई हैं तथा कथा प्रवाह की कड़ी को विच्छिन्न सा अनुभव करते हुए उनके रसानुभूति में कोई बाधा न हो।

नाटिका की भाँति सट्टक की कथा भी दृश्य विधान की दृष्टि से सामान्यतः चार भागों में विभाजित होती हैं, जिसे अंक न कहकर जवनिकान्तर नाम दिया गया हैं। नाटिका की भाँति इसका नायक भी प्रख्यात वंश में उत्पन्न एवं धीरललित होता हैं तथा कथा कवि-कल्पित होती हैं। इसमें अपने

१. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः।—दशरूपक-१/१०

लक्षणों सहित शृङ्गार रस अङ्गी होता है। इस प्रकार सट्टक में लघुकथा को नाटिका की अनेक विशेषताओं से युक्त करके प्रस्तुत करने का उद्देश्य कम से कम समय में सामान्य दर्शकों को उस रसानन्द की अनुभूति कराना रहा है, जिसका आस्वादन नाटिका के अभिजात्य दर्शक किया करते थे।

कथावस्तु के अन्तर्गत आधिकारिक वृत्त के साथ-साथ आश्यकतानुसार प्रासंगिक वृत्तों की भी योजना हुआ करती है। कथानक अर्थप्रकृतियों, कायवस्थाओं, अर्थोपक्षेपकों, संधियों, सन्ध्यङ्गों आदि की दृष्टि से निबन्धित रहते हुए, फल की तरफ सतत् अग्रसर रहकर अन्ततः फल प्राप्ति के साथ पूर्ण हुआ करता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का वस्तु विवेचन

विवेच्य कृति कर्पूरमञ्जरी में सट्टककार ने जिस कथावस्तु को अपनी लेखनी द्वारा अनुरंजित किया है, उसका नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं के आधार पर विभिन्न प्रकार से विश्लेषण किया जा रहा है। सम्प्रति इसी सन्दर्भ में कर्पूरमञ्जरी का संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत है।

कर्पूरमञ्जरी का कथानक—

चार जवनिकान्तरों में निबद्ध कर्पूरमञ्जरी–सट्टक के प्रथम जवनिकान्तर में, प्रस्तावना के बाद राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, विदूषक एवं विचक्षणा का प्रवेश होता है। वसन्त के वर्णन को लेकर विदूषक एवं विचक्षणा में विवाद हो जाता है, जिससे विदूषक रुष्ट होकर चला जाता है, एवं पुनः भैरवानन्द नामक सिद्ध योगी को साथ लेकर लौटता है। भैरवानन्द राजा की इच्छा एवं विदूषक के परामर्श से विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपनी योगशक्ति से प्रकट करता है। राजा कर्पूरमञ्जरी को देखकर उसके प्रति आकर्षित होता है। शशिप्रभा एवं वल्लभराज की पुत्री कर्पूरमञ्जरी रानी विभ्रमलेखा की मौसेरी बहन है। रानी उससे मिलकर बहुत प्रसन्न होती है एवं भैरवानन्द की अनुमति से उसे कुछ दिनों के लिए अपने पास रख लेती है।

द्वितीय जवनिकान्तर के आरम्भ में ही ज्ञात हो जाता है कि—राजा एवं कर्पूरमञ्जरी एक दूसरे पर आसक्त हैं। राजा कर्पूरमञ्जरी की स्मृति में विह्वल है और उसके सौन्दर्य की बार-बार प्रशंसा करता है। उधर कर्पूरमञ्जरी भी राजा पर मुग्ध हो उठी है। दासी विचक्षणा कर्पूरमञ्जरी द्वारा केतकी के पल्लव पर लिखित एक पत्र राजा को देकर उससे कर्पूरमञ्जरी की दशा का वर्णन करती है। विदूषक भी कर्पूरमञ्जरी के वियोग में राजा की दशा का वर्णन करता है। विचक्षणा एवं विदूषक के सहयोग से राजा मरकतकुञ्ज में छिपकर कर्पूरमञ्जरी को देखता है, जहाँ कर्पूरमञ्जरी महारानी द्वारा लगाये गये कुरबक, तिलक एवं अशोक वृक्षों का क्रमशः आलिङ्गन, कटाक्षपात एवं फटापादाघात द्वारा दोहदपूर्ति करती है। सन्ध्याकाल के साथ ही यह जवनिकान्तर समाप्त हो जाता है।

तृतीय जवनिकान्तर में, राजा एवं विदूषक अपने -अपने स्वप्न का वृतान्त सुनाते हैं। राजा को स्वप्न में कर्पूरमज्जरी अपनी सय्या पर दिखाई पड़ी थी। किन्तु जैसे ही उसनें उसका आंचल पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया था, वह हाथ छुड़ाकर भाग गयी थी एवं राजा की नींद खुल गयी थी। विदूषक के स्वप्नानुसार वह गङ्ाजी की धारा में सो गया और मेघों ने जल के साथ उसे पी लिया । मेघ के अन्दर छिपा हुआ वह जल की बूँदों के रूप में सीपी में गया, जहाँ मोती बन गया। विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरते हुए वह मोती की माला के रूप मे रानी के गले में गया था, जहाँ राजा द्वारा किये गये गाढ़ालिंगन के कारण स्तनों के बीच दब जाने से उसकी नींद खुल गयी थी। इस प्रसंग में दोनों में प्रेम, यौवन एवं सौन्दर्य पर चर्चा होती है। तदनन्तर राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी से मिलने, सुरंग के रास्ते प्रेमदोद्यान में जाने तथा राजा द्वारा कर्पूरमज्जरी का आलिङ्गन कर लेने की घटनायें घटित होती हैं । उधर रानी को कर्पूरमञ्जरी का राजा से मिलने का वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। इसलिए कर्पूरमञ्जरी घबराकर सुरंग के रास्ते रक्षागृह में चली जाती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर में, रानी ने कर्पूरमञ्जरी को कठोर नियन्त्रण में रख दिया है , जिससे राजा के साथ उसकी मुलाकात न हो सके। राजा वट-सावित्री महोत्सव देखने जाता

है, जहाँ उसे सारंगिका द्वारा सायंकाल अपना विवाह होने की बात ज्ञात होती है, क्योंकि रानी ने भैरवानन्द से गौरी प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा करवा करके, दक्षिणा स्वरूप घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने का वचन दिया है, जिससे राजा चक्रवर्ती पद प्राप्त कर सके। क्योंकि घनसारमञ्जरी का चक्रवर्ती पति की पत्नी होना सुनिश्चित है। अंततः घनसारमञ्जरी से राजा की शादी होती है। कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है, यह बात रानी को मालूम नहीं रहती है। शादी के बाद भेद खुलता है, तथा भरतवाक्य के साथ सट्टक की समाप्ति होती है।

कर्पूरमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप—

बाह्य स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए स्रोत के आधार पर कथावस्तु के प्रख्यात उत्पाद्य एवं मिश्र तीन भेद प्रसिद्ध हैं।[१] कर्पूरमञ्जरी सट्टक को यदि इस दृष्टि से आकलित किया जाय तो, स्पष्ट है कि इसका कथानक उत्पाद्य[२] कोटि का है। यद्यपि इसमें विदर्भ एवं लाट जैसे ऐतिहासिक स्थलों का नामोल्लेख हुआ है तथा राजा चन्द्रपाल का नाम भी इतिहास में आता है, किन्तु कर्पूरमञ्जरी के साथ उनकी प्रणय कथा एवं विवाह की घटनाएं ऐतिहासिक नहीं हैं। इस प्रकार यह नाट्यशास्त्रियों द्वारा सुनिश्चित सट्टक के कवि कल्पित[३] होने की व्यवस्था के सर्वथा अनुरूप है। इस सन्दर्भ में यह अवश्य कहा जा सकता है, कि कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु पर हर्ष की रत्नावली का व्यापक प्रभाव है।

पात्रों की तीन कोटियाँ है—दिव्य, मर्त्य एवं दिव्यादिव्य। इस दृष्टि से कथावस्तु के भी दिव्य, मर्त्य एवं दिव्यादिव्य भेद किये जाते हैं।[४] इस आधार पर कर्पूरमञ्जरी की कथा को मर्त्यलोकीय

---

१. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।—दशरूपक-१/१५
२. उत्पाद्यं कविकल्पितम्—दशरूपक-१/१५
३. द्रष्टव्य—नाटिका का लक्षण, दशरूपक-पृष्ठ २४१, नाटिका की ही भाँति सट्टक की कथा भी होती है।
४. दशरूपक, श्रीनिवास शास्त्री व्याख्यायित, पृष्ठ १६-१७

कथा की कोटि में रखा जा सकता है, क्योंकि उसके पात्र दिव्य-लोकीय न होकर सांसारिक मानव हैं। यद्यपि कथा का एक पात्र भैरवानन्द दिव्य यौगिक शक्ति से राजा के समक्ष कर्पूरमञ्जरी को उपस्थित करता है, परन्तु इस घटना मात्र से इस कथा को दिव्यादिव्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता। इस कोटि में परिगणित होने के लिए नायक को दैवीय शक्ति से युक्त होकर, सांसारिक कार्यों में संलग्न होना चाहिए। क्योंकि कथा नायक को ही केन्द्र बिन्दु बनाकर गुम्फित रहती है। जब नायक ही दिव्यादिव्य की कोटि से बाहर है, तो फिर कथा में चाहे जितने चमत्कारी कार्य हों उसे दिव्यादिव्य की कोटि में नहीं रख सकते। दूसरी विशेष बात यह है, कि—भैरवानन्द जो चमत्कारी कार्य करता है, वह योगशक्ति से करता है, यह बात स्पष्टतः कही गयी है। यह योगशक्ति यौगिक क्रियाओं के द्वारा सांसारिक लोगों को प्राप्त होती रही है, अतः इसका कार्य भी सांसारिक कार्य की कोटि में ही आने योग्य है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक मर्त्यलोकीय है।

त्रिवर्ग को कथा का फल बताया गया है, जिसे कभी शुद्ध, कभी एक से अनुगत और कभी अनेक से अनुगत कहा गया है।[१] इस आधार पर वस्तु की काम-प्रधान, अर्थ-प्रधान, एवं धर्म-प्रधान ये तीन कोटियाँ हो जाती है। इस दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी के कथानक पर यदि विचार किया जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि—इसका परम्-प्रयोजन 'काम' है। यद्यपि चक्रवर्तित्व रूप अवान्तर प्रयोजन 'धर्म' की सिद्धि भी नायक को होती है, परन्तु कथानक 'काम' नामक पुरुषार्थ को लक्ष्य में रखकर ही निरन्तर आगे बढ़ रहा है। जब ज्येष्ठा नायिका, नायक के धर्म रूप प्रयोजन चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के लिए अज्ञानवश घनसारमञ्जरी के छद्मरूप में कर्पूरमञ्जरी से राजा की शादी करवाती है, तब काम पुरुषार्थ रूप मुख्य प्रयोजन की सिद्धि होती है। अतः कहा जा सकता है कि—यहाँ धर्म से अनुगत काम कथानक का मुख्य फल है।

---

१. कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानुबन्धि च—दशरूपक १/१६

(ख) अन्तः स्वरूप–

भारतीय नाट्य शास्त्रकारों ने आधिकारिक एवं प्रासंगिक वृत्त, अर्थोपक्षेपक, नाट्योक्ति, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थायें, सन्धि, सन्ध्यङ्ग आदि बिन्दुओं को दृष्टि में रखते हुए कथावस्तु के आन्तरिक स्वरूप पर विचार किया है। अतएव कर्पूरमञ्जरी के कथानक का भी इन्हीं दृष्टिकोणों से परिशीलन प्रस्तुत है।

(१) आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

कथानक के आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक दो प्रसिद्ध भेद हैं।[१] विवेच्य कृति में आधिकारिक वृत्त[२] का जहाँ तक प्रश्न है, नायक चन्द्रपाल एवं नायिका कर्पूरमञ्जरी का विवाह तथा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति ही इस रूपक का फल है। अतएव फल से सम्बद्ध सम्पूर्ण वृत्त ही नाटक का आधिकारिक वृत्त मानने योग्य है। भैरवानन्द द्वारा कर्पूरमञ्जरी को उपस्थित करना, नायक का उसके प्रति आकर्षित होना, नायक नायिका का प्रमदोद्यान में मिलना, इसे जानकर देवी द्वारा कर्पूरमञ्जरी को कठोर नियन्त्रण में रखना, पुनः भैरवानन्द द्वारा घनसारमञ्जरी के छद्म रूप में कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा चन्द्रपाल का विवाह, चक्रवर्तित्व की प्राप्ति आदि सम्पूर्ण घटनाएँ आधिकारिक वृत्त के अन्तर्गत आती हैं।

प्रासङ्गिक वृत्त दो प्रकार का होता है-पताका एवं प्रकरी।[३] इनमें से पताका पर यदि विचार करें तो यह कर्पूरमञ्जरी सट्टक में उपलब्ध नहीं होता। यद्यपि विदूषक, भैरवानन्द आदि जैसे अन्य महत्वपूर्ण पात्र इसमें हैं, तथा विविध प्रकार के कार्यों में संलग्न भी हैं, परन्तु इनकी अपनी कोई

---

१. ...... वस्तु च द्विधा । तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।।—दशरूपक–१/११

२. अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम् ।।—दशरूपक–१/१२

३. प्रासङ्गिकं पराधस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक् ।।—दशरूपक–१/१३

अलग कथा नहीं है, और न ही मुख्य प्रयोजन में सहायक स्वरूप उनका अपना कोई प्रयोजन ही है, जिससे कि वे पताका के अस्तित्व को साकार कर सकें। प्रकरी का भी कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सर्वथा अभाव है।

(२) अर्थोपक्षेपक

कथानक के दृश्य अंश का प्रस्तुतीकरण द्वारा चतुर्विध अभिनय के माध्यम से किया जाता है, किन्तु कथानक के सूच्य अंश को विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकास्य एवं अंकावतार के माध्यम से प्रस्तुत करने की व्यवस्था है, जिसे अर्थोपक्षेपक नाम से अभिहित किया जाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अर्थोपक्षेपकों की क्या व्यवस्था है, सम्प्रति यह विचारणीय है।

(अ) विष्कम्भक—

विष्कम्भक वह सूच्य अर्थोपक्षेपक है, जिसमें मध्य श्रेणी के पात्रों द्वारा अतीत या भावी घटनाओं की संक्षिप्त सूचना दी जाती है।[१] कर्पूरमञ्जरी सट्टक कोटि का उपरूपक है। अतः लक्षणानुसार इसमें विष्कम्भक का सर्वथा अभाव है।

(ब) प्रवेशक—

इस अर्थोपक्षेपक में, नीच कोटि के पात्रों द्वारा, अतीत या भावी घटनाओं की संस्कृतेतर भाषा के माध्यम से संक्षिप्त सूचना दी जाती है। इसकी योजना सदा दो अंकों के बीच की जाती है।[३] सट्टक के लक्षणानुसार कर्पूरमञ्जरी में विष्कम्भक की भाँति प्रवेशक का भी अभाव है।

---

१. अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः।।—दशरूपक १/५८

२. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः।।—दशरूपक-१/५९

३. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।।
प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः।—दशरूपक-१/६०-६१

(स) चूलिका—

जहाँ यवनिका के उस ओर अन्दर बैठे पात्रों के द्वारा कथा की सूचना दी जाती है, वह चूलिका कहलाता है।[1] कर्पूरमञ्जरी में चूलिका के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(i) प्रथम जवनिकान्तर में एक-एक करके दो वैतालिकों द्वारा नेपथ्य के भीतर से राजा के प्रति उनकी प्रशस्ति एवं वसन्त की शोभा का वर्णन किया गया है—

(नेपथ्ये)

वैतालिकः—जअ पुब्बदिंअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णऊर! लीलाणिज्झिअराढदेस! विक्कमक्कंतकामरूअ? हरिकेलीकेलिआरअ! अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण!सब्बंगसुंदरत्तणरमणिज्ज! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारंभो। इह हि-

पंडीणं गंडबालीपुलअणचबला कंचिबालाबलीणं
माणं दो खंडअंता रइरहसकला लोचलोचप्पिआणं।
कण्णाडीणं कुणंता चिउरतरलणं कुतंलीणं पिएसुं
गुंफंता णेहगंथिं मलअसिहरिणो सीअला बांति बाआ।।

द्वितीयः— जादं...बि दिसाभाएसु लग्गेहिं ब।।[2]

अर्थात् नेपथ्य में वैतालिक कहता है, कि—पूर्व दिशा के स्वामी! चम्पा नगरी का पालन करने वाले! राढ़देश को खेल–खेल में ही जितने वाले! कामरूप देश के विजेता! हरिकेली देश में बिहार करने वाले! पराजित किये हुये लोगों में सुवर्ण की तरह चमकने वाले! सब अंगो के सौन्दर्य से युक्त हे राजन! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखकारक हो। यहाँ पर पाण्ड्य देश की रमणियों के कपोलों में रोमाञ्च उत्पन्न करने वाली, काञ्ची देश की कामनियों के अपने प्रिय सम्बन्धी प्रणयकोप को सायं प्रातः भंग करने वाली, चोलदेश की चपल नारियों को संभोग

१. अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।।—दशरूपक–१/६१
२. कर्पूरमञ्जरी—१/१५–१६

के लिए प्रेरित करने वाली, कर्णाट देश की स्त्रियों के केशपार को शिथिल बनाती हुई, कुन्तल देश की स्त्रियों को अपने प्रेमियों के आलिंगन पाश में बाँधती हुई मलायचल की ठण्डी हवायें चल रही हैं। (पुनः दूसरा वैतालिक कहता है.........।)

यहाँ राजा की वीरता सुखद वातावरण आदि की सूचना दी गयी है। यह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

(ii) प्रथम जवनिकान्तर के अन्तिम चरण में दो वैतालिक क्रमशः सन्ध्या के आगमन को राजा के प्रति सूचित करते हैं।[१] यह चूलिका है, जिसके माध्यम से सामाजिक को सन्ध्या के आगमन की सूचना दी जा रही है।

(iii) तृतीय जवनिकान्तर में मञ्च पर राजा एवं विदूषक हैं, तभी नेपथ्य से आवाज आती है–"सहि कुरंगिए! इमिरा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ कामं किलिस्सामि........देहदाहं च में।[२] अर्थात्, सखि कुरंगिके! इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त उकता गयी हूँ। कमलनाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार साँपों की तरह लगते हैं। पंखों की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलती है। यन्त्रधाराओं का जल भी तप रहा है। चन्दन का लेप भी शरीर का ताप दूर नहीं करता है।" इस प्रकार यहाँ नेपथ्य के अन्दर से नायिका के कामपीड़ा की सूचना दी जा रही है। अतः यहाँ चूलिका है।

(iv) तृतीय जवनिकान्तर में दो वैतालिकों द्वारा क्रमशः चन्द्रोदय की सूचना देना[३] चूलिका का उदाहरण है।

इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर में अन्त में वैतालिकों द्वारा सन्ध्या के आगमन की सूचना

---

१. कर्पूरमञ्जरी–१/३५-३६
२. कर्पूरमञ्जरी–३/२०
३. कर्पूरमञ्जरी–३/२५-२८

देना[१], तृतीय जवनिकान्तर के अंतिम चरण में नेपथ्य में कोलाहल का होना,[२] जिससे महारानी के आने की सूचना मिलती है आदि, चूलिका के अन्य उदाहरण हैं।

(द) अङ्कास्य—

जहाँ एक अंक की समाप्ति के समय, उस अंक में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छुटे हुए अर्थ की सूचना दी जाती है, वह अङ्कास्य कहलाता है।[३] कर्पूरमञ्जरी सट्टक के किसी भी जवनिकान्तर के अन्त में, किसी भी पात्र द्वारा, किसी छुटे अर्थ की सूचना से सम्बन्धित कोई कथन, नहीं किया गया है। अतः इसमें अङ्कास्य का अभाव है।

(य) अङ्कावतार–

जहाँ प्रथम अंक की वस्तु का विच्छेद किये बिना दूसरे अंक की वस्तु आगे चले, वहाँ अंकावतार होता है।[४] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में ऐसा कोई भी जवनिकान्तर नहीं जो पूर्व जवनिकान्तर के अन्त के बाद अविछिन्न रूप से अवतरित हुआ हो। यहाँ दो जवनिकान्तरों के प्रत्येक स्थल में स्पष्टतः विच्छिन्नता है। प्रत्येक जवनिकान्तर पूर्व जवनिकान्तर से असम्बद्ध स्वतन्त्र रूप से आरम्भ हो रहा है।

---

१. (नेपथ्ये)
वैतालिकः-सुहसंझा भोदु देवस्स (सुखसन्ध्या भवतु देवस्य)—
लोआणं लोअणेहिं सह कमलवणं अद्धणिद्दं कुणन्तो
मुञ्चन्तो तिक्खभावं सह अ सरभसं माणिणीमाणसेहिं।
मञ्जिठ्ठारत्तसुत्तच्छविकिरण चओ चक्कवाएक्कमित्तो
जादो अत्थाचलत्थी सपदि दिणमणी पक्कणारंगपिंगो।।
(लोकानां लोचनैः सह कमलवनमर्द्धनिद्रं कुर्वन्
मुञ्चंस्तीक्ष्णभावं सह च सरभसं मानिनीमानसैः।
मञ्जिष्ठारक्तसूत्रच्छविकिरणचयश्चक्रवाकैकमित्रं
जातोऽस्ताचलार्थी सपदि दिनमणिः पक्वनारङ्गपिङ्गः।।)—कर्पूरमञ्जरी—२/५०

२. कर्पूरमञ्जरी,श्रीरामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ १२४

३. अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात् ।—दशरूपक–१/६२

४. अङ्कावतारस्त्वङ्कान्ते पातोऽङ्कस्याविभागतः।—दशरूपक–१/६२

(३) नाट्योक्ति

नाट्योक्ति ही वह प्रमुख साधन है जिसके माध्यम से नाट्य की कथावस्तु निरन्तर आगे बढ़ती है। इसे नाट्य धर्म, अभिनय के नियम, नाटकीय संवाद एवं कथोपकथन भी कहते है। पाश्चात्य नाट्य शास्त्रियों ने इसे कथानक से अलग तत्त्व माना है, जब कि भारतीय नाट्यशास्त्री इसे कथानक का अंग स्वीकार करते हैं। नाट्योक्ति के आधार पर कथानक के सर्वश्राव्य, अश्राव्य एवं नियतश्राव्य रूप तीन विभाजन किये जाते हैं।[१] कर्पूरमञ्जरी के कथानक में ये तीनों ही रूप प्राप्त होते हैं।

(अ) सर्वश्राव्य–

मञ्चस्थ सभी पात्रों के सुनने योग्य कथन को सर्वश्राव्य या प्रकाश कहा जाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी में इसका क्षेत्र विस्तृत है। कुछ गिने–चुने अश्राव्य एवं नियतश्राव्य अंशों को छोड़कर कर्पूरमञ्जरी का सम्पूर्ण कथानक सर्वश्राव्य के अन्तर्गत आता है।

(ब) अश्राव्य–

मञ्चस्थ किसी भी पात्र के ऐसे कथन को, जो मञ्चस्थ अन्य किसी भी पात्र के द्वारा सुनने योग्य न हो, अश्राव्य कहते हैं। इसे स्वगत एवं आत्मगत नाम से भी जाना जाता है।[३] कर्पूरमञ्जरी में स्वगत कथनों का बाहुल्य है, जिसके कतिपय स्थल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं–

(i) प्रथम जवनिकान्तर में योगबल से उपस्थित की गयी कर्पूरमञ्जरी, अन्य सभी पात्रों को, आकृति, वेश आदि से उनके क्रमशः राजा, रानी, योगीश्वर एवं सेवकगण होने का अनुमान करते हुए मन में कहती है–"एसो महाराओ को बि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि। एसा बि एदस्स महादेवी तक्कीअदि अद्धणारीसरस्स बिअ अकहिदा बि गोरी। ऐसो को बि जोईसरो।

---

१. नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते–दशरूपक–१/६३
२. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्–दशरूपक–१/६४
३. अश्राव्यं स्वगतं मतम्–दशरूपक–१/६४

एस उण परिअणो। (विचिन्त्य) ता किं ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि?[1]

अर्थात्, इस गंभीर और मधुर शोभासमुदाय से मालूम पड़ता है कि ये कोई महराज हैं, अर्द्ध नारीश्वर भगवान शंकर की पार्वती की तरह यह भी उनकी रानी प्रतीत होती हैं। ये कोई योगीश्वर हैं। ये सेवकगण हैं। (सोचकर) न मालूम क्या बात है कि स्त्रियों के साथ होते हुए भी उनकी निगाहें मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई हैं यह कथानक का अश्राव्य अंश है। कथानक में इसका समायोजन दर्शक को यह बताने के लिए किया गया है कि-कर्पूरमञ्जरी बिना बताये ही अन्य पात्रों को उनके गुण विशेष से पहचान चुकी है। राजा की गम्भीर एवं मधुर आकृति कर्पूरमञ्जरी को प्रभावित कर रही है। राजा कर्पूरमञ्जरी को आदर पूर्वक देख रहा है। राजा द्वारा अन्य स्त्रियों के साथ होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को इस प्रकार देखा जाना; कर्पूरमञ्जरी को इस बात का अनुमान कराता है, कि राजा के मन में उसके प्रति विशेष आकर्षण है, इत्यादि। इस प्रकार यह अश्राव्य अंश कथा के प्रस्तुतीकरण में उसी प्रकार सहायक है जिस प्रकार श्राव्य अंश होता है।

(ii) प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी द्वारा वल्लभराज एवं शशिप्रभा को क्रमशः अपने पिता माता के रूप में बताये जाने पर देवी के स्वगत कथन हैं-"जो मह माउस्सआए पई होदि। (यो मम मातृष्वसु : पतिर्भवति)" एवं "सा वि मे माउस्सिआ (साऽपि मे मातृष्वसा)"[2] ये कथन सामाजिक को इस बात की जानकारी देते हैं कि—कर्पूरमञ्जरी देवी की मौसेरी बहन है साथ ही देवी का यह कथन "ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पतिं अन्तरेण इदिसी रूवरेहा होदि। ण क्खु वेदूरिअभूमिगब्भुप्पत्तिं अन्तरेण वेदूरिअमणि सलाआं पिप्पज्जदि। (न खलु शशिप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति। न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते।)"[3] यह दर्शकों को बता रहा है, कि रानी भी इस बात को स्वीकार करती है, कि कर्पूरमञ्जरी अपूर्वसुन्दरी है, किन्तु

---

१. कर्पूरमञ्जरी,श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ३३-३४
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ४०
३. वही, पृष्ठ ४०

वह राजा आदि के समक्ष इस बात को प्रकट नही करना चाहती।

(iii) द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में प्रतिहारी का स्वगत कथन–"कधं अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसंचओ ताओ विअ अक्खरपंतीओ ता वसन्तवण्णणेव सिढिलआमि से तग्गदं हिअआवेअं। (कथमद्यापि स एव ताडीपत्रसंचयः, ता एव अक्षरपंक्तयः, तत् वसन्तवर्णनेन शिथिलयामि अस्य तद्गतं हृदयावेगम्।)"[१] यह इस तथ्य को प्रकट कर रहा कि राजा कर्पूरमञ्जरी के विरह में प्रतिदिन ताड़पत्र पर एक ही तरह की अक्षरपंक्तियाँ (चित्र) अंकित करता है। उसका हृदयावेग प्रबल हो चुका है। उसके परिचर उसकी इस दशा से चिन्तित हैं तथा उसके मनोविनोद का प्रयास करने में संलग्न हैं।

प्रथम जवनिकान्तर की प्रस्तावना में सूत्रधार का स्वगत कथन–"पण्होत्तरं क्खु एदं। (प्रश्नोत्तरं खलु एतत् ।)"[२]; तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक के स्वगत कथन–"भोदु एव्वं दाव। (भवतु एवं तावत्।)"[३] तथा "भोदु, लीलोज्जाणं जेव्व गच्छम्ह। (भवतु,लीलोद्यानमेव गच्छामः।)"[४] चतुर्थ जवनिकान्तर में भैरवानन्द के स्वगत कथन–"अज्ज वि ण आअच्छदि देवी। (अद्यापि नागच्छति देवी।)"[५] एवं "इअं कप्पूरमञ्जरीठाणं अण्णेसिदुं गत। (इयं कर्पूरमञ्जरीस्थानमन्वेष्टुं गता।)"[६]; चतुर्थ जवनिकान्तर में ही महादेवी के स्वगत कथन–"ता पुणो तहिं गमिस्सं। (तत् पुनस्तत्र गमिष्यामि)"[७] एवं "झाणविमाणेण णिव्विग्घपरिसप्पिणा तं आणेदि महाजोई। (ध्यानविमानेन निर्विघ्नपरिसर्पिणा तामानयति महायोगी।)"[८] ये सभी अश्राव्य के अन्य उदाहरण हैं, जो गंभीर अर्थ की व्यञ्जना करते

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ ४६
२. वही, पृष्ठ ६
३. वही, पृष्ठ ९५
४. वही, पृष्ठ ११५
५. वही, पृष्ठ १४७
६. वही, पृष्ठ १४८
७. वही, पृष्ठ १४८
८. वही, पृष्ठ १४९

हुए कथा के विकास एवं प्रस्तुति में सहायक हुए हैं।

(स) नियतश्राव्य–

मञ्चस्थ नियत जनों के सुनने योग्य कथन को नियतश्राव्य कहते हैं।[१] यह दो प्रकार का होता है–जनान्तिक एवं अपवारित।[२] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में नियतश्राव्य के दो स्थल उपलब्ध होते हैं, जिसमें एक अपवारित है एवं एक जनान्तिक। प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के सौन्दर्य पर मुग्ध हुआ राजा, उसके द्वारा मनोहरतापूर्वक देखे जाने पर विदूषक से अपवारित[३] में कहता है–

"एदाए–

जं मुक्का सबणंतरेण तरला तिक्खा कउक्खच्छडा
शुंगाधिट्ठिअकेदअग्गिमदलद्दोणीसरिच्छच्छई।
तं कप्पूररसेण णंधवलिदो? ज्योण्हाअ णंण्हाबिदो?
मुत्ताणं घणरेणुण व्व छुरिदो? जादोम्हि एत्थंतरे।।"[४]

अर्थात्, इस नायिका ने कानों तक फैले हुए, चञ्चल तथा केतकी के दल रूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे ऐसा मालूम पड़ता है कि जैसे मैं कर्पूर के जल से धो दिया गया हूँ, या चाँदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियों का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है। यहाँ अपवारित के प्रयोग द्वारा दर्शकों को यह बतलाने का प्रयास किया जा रहा है कि–कर्पूरमञ्जरी ने राजा को तीक्ष्ण कटाक्षों से देखा है, जो प्रेम प्रदर्शन का सूचक होता है। यही कारण है कि राजा अपने आप को धन्य समझ रहा है एवं इस बात का रानी आदि अन्य पात्रों को आभास नहीं है। मात्र विदूषक से ही वह अपनी आसक्ति सम्बन्धी बात करता है,

---

१. '..... नियतस्यैव श्राव्यम् ....।'–दशरूपक–१/६४
२. द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्–दशरूपक–१/६५
३. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्–दशरूपक–१/६६
४. कर्पूरमञ्जरी–१/२९

जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि विदूषक उसके प्रेम प्रसङ्ग का सहयोगी है।

जनान्तिक का उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर में मिलता है। कर्पूरमञ्जरी से शादी के प्रसंग में राजा उसे देखता है एवं उसके सौन्दर्य का गुणगान सबके सामने करने लगता है। इससे कहीं देवी रुष्ट होकर शादी में अवरोध न पैदा कर दे, अतः राजा को चुप कराने के उद्देश्य से विदूषक जनान्तिक[१] में उससे कहता है–"सच्चं किदं तुए आभाणकं। तडं गदाए वि णावाए ण विससीदव्वं; ता तुण्हिं चिट्ठ। (सत्यं कृतं त्वया आभाणकम्। तटं गताया अपि नौकाया न विश्वसितव्यम्; तत्तूर्णीं तिष्ठ)"[२]

(४) अर्थप्रकृतियाँ

कथानक में फल सिद्धि के लिए जो उपाय अपनाये जाते हैं, उन्हें अर्थप्रकृतियाँ कहते हैं।[३] अर्थप्रकृति का शाब्दिक अर्थ है फल का हेतु।[४] ये अर्थप्रकृतियाँ पाँच है–बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य। कर्पूरमञ्जरी सट्टक का कथानक, अपने निश्चित लक्ष्यों कर्पूरमञ्जरी एवं चन्द्रपाल का विवाह तथा चक्रवर्तित्व की प्राप्ति के प्रति सतत् प्रयत्नशील है। अर्थप्रकृतियाँ कथावस्तु को सफलता की ओर ले जाती हैं, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है।

(अ) बीज–

उस फल का निमित्त बीज कहलाता है, जिसका आरम्भ में सूक्ष्म रूप से और आगे चलकर अनेक प्रकार से विस्तार होता है।[५] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में भैरवानन्द द्वारा किसी

---

१. त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम् ।।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।–दशरूपक–१/६५–६६

२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य सम्पादित, पृष्ठ १५१

३. प्रयोजनसिद्धहेतवः अर्थप्रकृतयः।–दशरूपक–संपादक श्री निवास शास्त्री, पृष्ठ २०

४. अर्थः फलं तस्य प्रकृतयः उपाया फलहेतवः इत्यर्थः।–अभिनवभारती–१९,२०।

५. स्वल्पोदिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।–दशरूपक–१/१७

भी कार्य को कर सकने की सामर्थ्य सम्बन्धी जो यह कथन है, कि–

"दंसेमि तं पि ससिणं बसुहाबइण्णं
थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिबलए मह जं ण सद्धं।।"[१]

अर्थात्, 'चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ। सूर्य का भी आकाशमार्ग में रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणों तक की स्त्रियों को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको मैं न कर सकूँ।' यही कर्पूरमञ्जरी सट्टक का बीज है, जो आदि से लेकर अन्त तक विद्यमान रहता है। यहाँ चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतार सकने सम्बन्धी कथन से राजा चन्द्रपाल के पृथ्वी के अधिपति होने, एवं सूर्य के रथ को रोक सकने सम्बन्धी कथन से राजा के चक्रवर्ती पद प्राप्त करने की अभिव्यञ्जना हुई है। कथन के उतरार्द्ध से अपूर्व स्त्रीरत्न प्राप्त करने की अभिव्यञ्जना हुई है। इसी कथन से प्रेरित होकर राजा विदूषक से अपूर्व स्त्रीरत्न के विषय में पूँछकर एवं उसके विषय में जानकर उसे उपस्थित करने की प्रार्थना करता है। अपूर्व सुन्दरी कर्पूरमञ्जरी के उपस्थित हो जाने पर सम्पूर्ण कथा उसी के चतुर्दिक आगे बढ़ती है। इस प्रकार भैरवानन्द के इस कथन में बीज नामक अर्थप्रकृति विद्यमान है।

(ब) बिन्दु–

अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन में विच्छेद प्राप्त हो जाने पर, जो उसके सातत्य का कारण होता है, वह बिन्दु कहलाता है।[२] अवान्तर बीज[३] नाम से प्रसिद्ध बिन्दु का उदाहरण तृतीय जवनिकान्तर में प्राप्त होता है, जहाँ विदूषक द्वारा अपने स्वप्न का वृत्तान्त

१. कर्पूरमञ्जरी–१/२५
२. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्–दशरूपक–१/१७
३. दशरूपक, व्याख्याकार–श्रीनिवास शास्त्री

बताने एवं उसके बाद प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी शास्त्रीय चर्चा रूप अवान्तर प्रयोजन से, और कर्पूरमञ्जरी की प्राप्ति रूप मुख्य प्रयोजन में विच्छेद आ जाता है। मुख्य प्रयोजन में आये विच्छेद के सातत्य का कारण नेपथ्य में कथित कर्पूरमञ्जरी का यह कथन है–'सखि कुरंगिके इस शिशिरोपचार से कमलिनी की तरह अत्यन्त उकता गयी हूँ, कमलनाल विष की तरह मालूम पड़ता है, हार सापों की तरह लगते हैं। पंखों की हवा भी अपने मित्र अग्नि को ही फैलाती है, यह यन्त्रधाराओं का जल भी तप रहा है, चन्दन का लेप भी शरीर का ताप दूर नहीं करता।'[१] इसे सुनकर एवं विदूषक द्वारा प्रेरित होकर राजा कर्पूरमञ्जरी की प्राप्ति रूपी फल के लिए पुनः उद्यत हो जाता है। इस प्रकार अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति से कथावस्तु के मुख्य प्रयोजन के अविच्छेद्य का कारण रूप यह कथन ही सट्टक का बिन्दु है।

(स) पताका–

अनुबन्ध सहित, प्रधान वृत्त के साथ दूर तक चलने वाला प्रासंगिक वृत्त पताका कहलाता है।[२] जैसा की पहले ही कहा जा चुका है कि कर्पूरमञ्जरी सट्टक में पताका नामक प्रासंगिक वृत्त नहीं प्राप्त होता है।

(द) प्रकरी–

जो प्रासंगिक वृत्त मुख्य कथा में मात्र थोड़ी दूर तक चलता है वह प्रकरी कहलाता है।[३]

१. (नेपथ्ये)
सहि कुरंगिए! इमिणा सिसिरोवआरेण णलिणीविअ कामं किलिस्सामि–
विसं व्व विसकन्दली विसहरो व्व हारच्छडा
वअस्समिव अत्तणो किरइ तालवेण्टाणिलो।
तहा अ करणिग्गलं जलइ जन्तधाराजलं
ण चन्दणमहोसहं हरइ देहदाहं च मे।।–कर्पूरमञ्जरी–३/२०

२. सानुबन्धं पताकाख्यं.......।–दशरूपक–१/१३

३. '.....प्रकरी च प्रदेशभाक्।'–दशरूपक–१/१३

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकरी का भी अभाव है।

(य) कार्य–

फल के अधिकारी व्यक्ति का व्यापार ही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।[१] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में, राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह एवं चक्रवर्तित्व की प्राप्ति रूपी फल के लिए, फलाधिकारी राजा द्वारा नायिका से विवाह करने का जो उद्योग किया गया है, वही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

(५) कार्यावस्थायें

फल को लक्ष्य करके किये गये, नायक के व्यापार की भिन्न-भिन्न अवस्थायें ही कार्यावस्थाय कहलाती हैं, जो पाँच हैं– आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एंव फलागम।[२] कार्यावस्थाओं की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी सट्टक का परिशीलन प्रस्तुत है।

(अ) आरम्भ–

प्रचुर फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता मात्र का होना ही आरम्भ कहलाता है।[३] कर्पूरमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में, अद्वितीय स्त्री रत्न देखने की उत्सुकता राजा में पैदा होती है। विदूषक द्वारा ऐसे स्त्री रत्न के विषय में जानकर, वह भैरवानन्द से उसे उपस्थित करने का अनुरोध करता है। नायिका के उपस्थित हो जाने पर, राजा उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है, जो विदूषक के प्रति राजा की उक्तियों से स्पष्ट है।

राजा विदूषक से अपवारित में कहता है कि–"इस नायिका ने कानों तक फैले हुए, चञ्चल तथा केतकी के दलरूपी द्रोणी के समान छवि वाले तीक्ष्ण कटाक्षों से जो मुझको देखा है, उससे

---

१. दशरूपक, व्याख्याकार-श्रीनिवास शास्त्री, पृष्ठ २१
२. अवस्थाः पञ्चकार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।।–दशरूपक–१/१९
३. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।–दशरूपक–१/२०

ऐसा मालूम पड़ता है कि—जैसे मैं कर्पूर के जल से दो दिया गया हूँ या चाँदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है, अथवा मोतियों का अंगराग मुझ पर लगा दिया गया है।"[१] नायिका में भी राजा के व्यक्तित्व के प्रति औत्सुक्य प्रकट होता है, जो उसके स्वगत कथन से प्रतीत हो रहा है। नायिका अपने मन में कहती है कि—"इस गंभीर और मधुर शोभा-समुदाय से अनुमान लगता है, कि ये कोई महाराज हैं।...न मालूम क्या बात है कि स्त्रियों के साथ होते हुए भी इनकी निगाहें मेरी ओर बड़े आदर से लगी हुई हैं।"[२] नायिका द्वारा राजा को देखने सम्बन्धी राजा के कथन से भी, नायिका में राजा के प्रति औत्सुक्य का होना स्पष्ट होता है, जिसमें राजा ने अपवारित में यह कहा कि—"..तीक्ष्ण कटाक्षों से (नायिका ने) जो मुझको देखा है।"[३] इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

(ब) यत्न—

फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेग पूर्वक उद्योग करना ही यत्न या प्रयत्न कहलाता है।[४] द्वितीय जवनिकान्तर में विचक्षणा नायिका का प्रेमपत्र लेकर राजा के पास आती है। इस घटना से प्रारम्भ करके तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा नायिका का साक्षात्कार एवं प्रेमालाप पर्यन्त, यत्न नामक कार्यावस्था है। क्योंकि इस बीच नायिका द्वारा नायक को प्रेमपत्र भेजना, चित्र में देखने की भाँति राजा द्वारा नायिका के नख से शिखा तक आभूषित आभरण के सौन्दर्य का वर्णन सुनना एवं तत्सम्बन्धी कल्पनायें करना, नायक द्वारा नायिका को मरकतकुञ्ज के प्रासाद से

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/२९

२. नायिका—(सर्वानवलोक्य स्वगतम्) एसो महाराओ को बि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि।.........(विचिन्त्य) ता किं ति एदस्स महिलासहिदस्स दिट्ठी मं बहु मण्णेदि?— कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३३-३४

३. जं मुक्का सबणंतरेण तरला तिक्खा कडक्खच्छडा...।—कर्पूरमञ्जरी-१/२९

४. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः।—दशरूपक-१/२०

झूलते हुए देखना, आदि घटनाएँ; नायक एवं नायिका दोनों द्वारा एक दूसरे की प्राप्ति के लिए योजनापूर्वक किये गये प्रबल प्रयास की परिणाम हैं। अतएव यह यत्न (या प्रयत्न) नामक कार्यावस्था है।

(स) प्राप्त्याशा—

उपाय के होने तथा विघ्न की आशंका होने से जो फल प्राप्ति की संभावना मात्र है, वह प्रात्याशा कहलाता है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध में, नायिका के साक्षात्कार एवं आलिंगन के उपरान्त प्रमदोद्यान में प्रेमालाप के प्रसंग में, नायिका के आत्यन्तिक प्राप्ति रूप फल के सभी उपायों के विद्यमान होने पर, फलागम स्पष्टतः झलकता हुआ सा प्रतीत होता है। ऐसी परिस्थिति में रानी विभ्रमलेखा रूपी विघ्न की आशंका से नायिका कर्पूरमञ्जरी सुरंग के मार्ग से रक्षागृह में लौट जाती है। तब फलागम आशा और निराशा के बीच झूलने लगता है। अर्थात् फलप्राप्ति के सम्बन्ध में निश्चय नहीं हो पाता, उसकी आशा मात्र रह जाती है। यही अवस्था प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

(द) नियताप्ति—

विघ्नों के हट जाने पर फलप्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।[२] चतुर्थ जवनिकान्तर के उत्तरार्द्ध में राजा को घनसारमञ्जरी (जिसका पति चक्रवर्ती होगा) से अपना विवाह होने की सूचना मिलती है। राजा यह जानकर कि—यह भैरवानन्द के कार्यों का परिणाम है, अर्थात् भैरवानन्द घनसारमञ्जरी के छद्म रूप में कर्पूरमञ्जरी से उसकी शादी करवाने की योजना बनाये हुए है, उसे कर्पूरमञ्जरी एवं चक्रवर्ती पद रूप फल की प्राप्ति का निश्चय सा हो जाता है। कथानक में यही नियताप्ति नामक कार्यावस्था है। भैरवानन्द द्वारा दक्षिणा के लिए रानी को वचनबद्ध करके एवं कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के रूप में प्रस्तुत करके राजा से उसके विवाह की स्वीकृति लेकर, विघ्न का

---

१. उपायापायशङ्काभ्याम् प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।—दशरूपक-१/२१

२. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता।—दशरूपक-१/२१

निवारण कर दिया गया है। राजा के प्रति जनान्तिक में कहे विदूषक के कथन—"सच्चं किदं तुए आभाणकं। (सत्यं कृतं त्वया आभाणकम्)"[१] से स्पष्ट है कि—रुकावटें टल गयी हैं। राजा को सारंगिका द्वारा उसी दिन सायंकाल उसके विवाह होने का समाचार बताने से नियताप्ति का प्रारम्भ होता है तथा कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा द्वारा अग्नि की भाँवरें लेने तक उसकी स्थिति रहती है।

(य) फलागम—

पूर्ण रूप से फल की प्राप्ति फलागम नामक कार्यावस्था है।[२] चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह सम्पादित हो जाता है एवं उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होती है, यही समग्रफल की प्राप्ति है। यही फलागम नामक कार्यावस्था है। राजा ने फलप्राप्ति के आनन्दातिरेक में स्वयं ही उसे स्पष्ट करते हुए कहा है—

कुन्तलेस्सरसुआकरफस्सफ्फारसोक्खसिढिलीकिदसग्गो।
पालएमि वसुहातलरज्जंचक्क वट्ठिपदवीरमणिज्जं।।[३]

अर्थात्, कुन्तलदेश के राजा के पुत्री कर्पूरमञ्जरी के करस्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ण भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती के साथ सारे महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ।

६. सन्धि-योजना

नाट्य की कथावस्तु में किसी एक प्रयोजन से अन्वित होने पर, किसी अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध होना पाया जाता है, यह सन्धि कहलाता है।[४] इनकी संख्या पाँच है—मुख, प्रतिमुख-गर्भ, अवमर्श एवं निर्वहण।[५] कर्पूरमञ्जरी में क्रमशः इनका विवेचन प्रस्तुत है।[४]

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्रीरामकुमार आचार्य,पृष्ठ १५१
२. समग्रफलसंपत्तिः फलयोगो......।—दशरूपक-१/२२
३. कर्पूरमञ्जरी-४/२२
४. अन्तरैकार्थसंबन्धः सन्धिरेकान्वये सति।—दशरूपक-१/२३
५. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।—दशरूपक-१/२४

(अ) मुखसन्धि–

जहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति होती है, वह मुखसन्धि है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक में भैरवानन्द का कथन रूप जो कथा का बीज है, वह नायक एवं नायिका के एक दूसरे के दर्शन से उद्भूत हुए प्रेम रूप आरम्भ नामक कार्यावस्था के साथ मिलकर, दूसरे प्रयोजन यत्न जिसमें नायिका द्वारा राजा को प्रेम पत्र दिया जाता है, से जोड़ता है। कथा की यह सन्धि मुखसन्धि[१] है, जो भैरवानन्द के कथन से लेकर नायिका द्वारा प्रेम पत्र भेजने के कथांश के पूर्व तक विद्यमान है। यह बीज एवं आरम्भ के योग से निष्पन्न है। यह आरम्भ नामक एक प्रयोजन से सम्बद्ध बीज रूप में स्थित कथा को, प्रयत्न नामक दूसरे एक प्रयोजन से सम्बद्ध कर रही है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि–

जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य रूप में एवं कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भेद होता है, वह प्रतिमुखसन्धि कहलाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी सट्टक में राजा एवं कर्पूरमञ्जरी के मिलन का हेतु जो अनुराग रूपी बीज है, उसका प्रथम जवनिकान्तर में उपक्षेप किया गया है। द्वितीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा कर्पूरमञ्जरी का स्मरण करते हुए किये गये तत्सम्बन्धी कथन, जैसे "उस समय मेरा लगातार ध्यान करती हुई, उस नायिका का लता की तरह सुकुमार शरीर, चार तरह का हो गया,"[३] इत्यादि द्वारा वह अनुराग कुछ लक्ष्य है, अर्थात् दिखाई पड़ रहा है। प्रतिहारी के स्वगत कथन–"क्यों आज वही ताड़पत्र और वे ही अक्षर पंक्तियाँ हैं,"[४] द्वारा वह अनुराग कुछ–कुछ समझा भर गया है, अतः अलक्ष्य है। पुनः विदूषक के कथन कि–"अरी विचक्षणे क्या यह सब सच है?"[५] द्वारा यह

१. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा।–दशरूपक–१/२४
२. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्।–दशरूपक–१/३०
३. जाआ तीअचउव्विधा तणुलआ णिज्झाअअंती अ मं।–कर्पूरमञ्जरी–२/१
४. कधं अज्ज वि सो ज्जेव तालीपत्तसंचओ,ताओ विअ अक्खरपंतीओ।–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४६
५. अइ विअक्खणे! सव्वं सच्चं एदं?–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

अनुराग कुछ-कुछ अलक्ष्य एवं विचक्षणा के कथन-"सब सच ही समझो।"[1] द्वारा लक्ष्य है। इस प्रकार बीज का कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य रूप में उदभेद होता है, अतः यहाँ प्रतिमुखसन्धि है।

(स) गर्भसन्धि-

जहाँ दिखाई देकर खोये गये बीज का बार-बार अन्वेषण किया जाता है, वह गर्भसन्धि है।[2] कर्पूरमञ्जरी सटट्क के तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा बताये गये अपने स्वप्न की घटना के अनुसार-राजा की सय्या पर कर्पूरमञ्जरी के आने से उसके प्राप्ति की आशा होती है, हाथ छुड़ाकर भाग जाने पर नीद के भंग होने से स्वप्न का मिलन बाधित होता है। पुनः कर्पूरमञ्जरी के साथ राजा का साक्षात्कार होता है, जिससे उसकी प्राप्ति की पुनः आशा होती है। किन्तु ज्येष्ठा नायिका विभ्रमलेखा के आगमन का समाचार आशा भंग कर देता है। यहाँ दिखायी देकर खोये हुए बीज का बार-बार अन्वेषण किया गया है। अतः यहाँ गर्भसन्धि है। यहाँ पताका नामक अर्थप्रकृति नहीं है, केवल प्रात्याशा नामक कार्यावस्था है, जो गर्भसन्धि का आवश्यक तत्व है।

(स) अवमर्शसन्धि-

जहाँ क्रोध से व्यसन से अथवा प्रलोभन से फलप्राप्ति के विषय में विमर्श किया जाता है, तथा जिसमें गर्भसन्धि द्वारा निभिन्न बीजार्थ का सम्बन्ध दिखाया जाता है, वह अवमर्शसन्धि कहलाती है।[3] प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम-अध्याय में सटट्क के लक्षण के प्रंसग में जैसा कि सुनिश्चित किया जा चुका है कि—इसमें या तो अवमर्श सन्धि, नहीं होती अथवा होती है तो अत्यल्प कर्पूरमञ्जरी सटट्क का जहाँ तक प्रश्न है, उसमें अल्प विमर्श प्राप्त होता है। चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा कर्पूरमञ्जरी का हाल जानने के लिए उत्सुक है, वह विदूषक से उसके विषय में जिज्ञासा

---

१. सव्वं सच्चअरं।—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

२. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।—दशरूपक-१/३६

३. क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्श इति स्मृतः।।—दशरूपक-१/४३

करता है। तदनन्तर विदूषक द्वारा कर्पूरमञ्जरी को कड़े पहरे में रखने सम्बन्धी कथन[१] से विघ्न की उपस्थिति बताई गयी है। इस विघ्न के हटने पर फल प्राप्ति सुनिश्चित है। अंततः विघ्न दूर करने का उपाय खोजा जाता है, जिसके तहत छद्म रूप में राजा की कर्पूरमञ्जरी से शादी करवाने के लिए रानी को तैयार करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। भैरवानन्द के प्रयास से नियताप्ति सुनिश्चित होती है। यहाँ फलप्राप्ति हेतु विमर्श किया गया है। प्रकरी का यहाँ अभाव है, परन्तु नियताप्ति नामक कार्यावस्था है। अतः यहाँ अवमर्शसन्धि है।

(य) निर्वहणसन्धि–

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख सन्धि आदि में, अपने स्थान पर बिखरे हुए प्रारम्भ आदि अर्थों का, मुख्य प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है; वह निर्वहणसन्धि कहलाती है।[२] कर्पूरमञ्जरी सटट्क के चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में राजा का कर्पूरमञ्जरी से विवाह सम्पन्न होता है, साथ ही उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति भी होती है। यहाँ पञ्चम कार्यावस्था फलागम का कार्य अर्थात् नायक-व्यापार नामक अर्थप्रकृति के साथ समन्वय हो रहा है। इस प्रंसग में भैरवानन्द,

---

१. राजा–(विदूषकं प्रति) वअस्स! अत्थि तग्गदा का वि वत्ता? (वअस्य! अस्ति तद्गता काऽपि वार्ता?)
विदूषकः–अत्थि, सुणादु पिअवअस्स, कधेमि सुहासिदं दे। जदो पहुदि कप्पूरमञ्जरी रक्खाभवणादो सुरंगादुआरे देवीए दिट्टा, तदो पहुदि तं सुरंगादुआरं देवीए बहलसिलासञ्चएण णीरन्धं कदुअ पिहिदं। अणंगसेणा कलिंगसेणा कामसेणा वसन्तसेणा विब्भमसेण त्ति पञ्चसेणाणामधेआओ चामरधारिणीओ फारप्फुरक्किदकरवालहत्थपाइक्कसहस्सेण सह कारामन्दिरस्स रक्खाणिमित्तं पुव्वदिसाए णिउत्ताओ।........सेणाए अज्झक्खीकिदाओत्ति। (अस्ति, शृणोतु प्रियवयस्यः, कथयामि सुभाषितं ते। यतः प्रभृति कर्पूरमञ्जरी रक्षाभवनात् सुरङ्गाद्वारे देव्या दृष्टा, ततः प्रभृति तत् सुरङ्गाद्वारं देव्या बहुलशिलासञ्चयेन नीरन्ध्रं कृत्वा पिहितम्। अनङ्गसेना, कलिङ्गसेना, कामसेना, वसन्तसेना, विभ्रमसेनेति पञ्च सेनानामधेयाश्चामरधारिण्यः स्फारस्फुरत्करवालहस्तपदातिसहस्रेण सह कारामन्दिरस्य रक्षानिमित्तं पूर्वदिशि नियुक्ताः।......सेनायाः अध्यक्षीकृता इति।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३४–३७

२. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।–दशरूपक–१/४८–४९

विदूषक आदि के कार्यों का, जो मुखसन्धि में बिखरे पड़े है, राजा के एक कार्य कर्पूरमञ्जरी समागम के लिए समाहार होता है, जो भैरवानन्द एवं राजा के इस वार्तालाप द्वारा दिखाई पड़ रहा है–

भैरवानन्द–महाराज ! और आप की क्या इच्छा पूर्ण करूँ?

राजा–योगीश्वर! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है। क्योंकि कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के कर स्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती सम्राट होकर महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ।[१] प्रस्तुत स्थल पर निर्वहणसन्धि है।

७. सन्ध्यङ्ग-योजना

पाँचो सन्धियों में प्रत्येक के अनेक अङ्ग होते हैं, जिनकी कुल संख्या ६४ बताई गयी है। विभिन्न नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उनके नाम एवं क्रम भिन्न-भिन्न प्राप्त होते हैं। कर्पूरमञ्जरी सटट्क में प्रयुक्त पाँचों सन्धियों के प्रमुख सन्ध्यङ्गों का विवेचन प्रस्तुत है।

(अ) मुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग–

(i) उपक्षेप– बीज का शब्दों में रखना उपक्षेप कहलाता है।[२] कर्पूरमञ्जरी सटट्क में भैरवानन्द का जो यह कथन है कि---चन्द्रमा को पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ।---भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मै न कर सकूँ। कहिए क्या करूँ?[३] यहाँ बीज को शब्दों में रखा गया है, अतः यहाँ मुखसन्धि का उपक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ii) परिकर–बीज की वृद्धि परिकर है।[४] राजा भैरवानन्द से कुछ भी कर सकने की बात सुनकर, विदूषक से जो यह कहता है कि–"वयस्य! तुमने कहीं कोई अद्वितीय स्त्री रत्न देखा है?–

---

१. कर्पूरमञ्जरी–४/२२
२. बीजन्यास उपक्षेपः।–दशरूपक–१/२७
३. कर्पूरमञ्जरी–१/२७
४. तद्बाहुल्यं परिक्रिया।–दशरूपक–१/२७

--बतलाओ।"[1] यह परिकर है, क्योंकि यहाँ बीज की उत्पत्ति का ही बाहुल्य दिखाया गया है।

(iii) परिन्यास– बीज की निष्पत्ति परिन्यास कहलाती है।[2] विदूषक द्वारा वैदर्भ नगर में कन्या रत्न देखने एवं उसे बुलाने की बात कहने पर, राजा उस कन्या रत्न को बुलाने की बात दुहराता है।[3] यहाँ उक्षिप्त बीज अङ्कुरोत्पादन के लिए समर्थ हो गया है, जो फल की सिद्धि में समर्थ है। अतएव यहाँ परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) परिभावना–अद्‌भुत बात का समावेश होना ही परिभावना है।[4] भैरवानन्द के द्वारा कर्पूरमञ्जरी को प्रकट किये जाने पर, राजा उसके प्रकट होने की घटना एवं उसके सौन्दर्य को देखकर कौतुहल पूर्वक कह उठता है–"अहह! आश्चर्य है! आश्चर्य है!! इसकी आँखों का अंजन धुला हुआ है, इसकी आँखें लाल हैं, इत्यादि।"[5] यहाँ अद्‌भुत भाव का समावेश होने से परिभावना है।

(v) विलोभन–गुणों का वर्णन विलोभन कहलाता है।[6] कर्पूरमञ्जरी को देखकर विदूषक कहता है–"अहो! क्या सौन्दर्य है? त्रिवली से युक्त इसकी कमर बच्चे की मुठ्ठी में पकड़ी जा सकती है, इत्यादि।[7]" यहाँ नायिका के गुणों के वर्णन में नायक का विलोभन किया गया है, जो नायक नायिका के समागम का हेतु अनुराग रूपी बीज का जनक है। अतएव यहाँ विलोभन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) समाधान–संक्षेप में उक्षिप्त बीज का पुनः स्पष्ट रूप से आधान ही समाधान है।[8] भैरवानन्द के द्वारा उपस्थित की गयी नायिका राजा के सम्बन्ध में मन में कहती है–"स्त्रियों के साथ रहने

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३०
२. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।–दशरूपक–१/२७
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३१
४. (क) परिभावोऽद्‌भुतावेशः।–दशरूपक–१/२९
(ख) कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना।–साहित्यदर्पण–६/८६
५. कर्पूरमञ्जरी–१/२६
६. गुणाख्यानं विलोभनम्।–दशरूपक–१/२७
७. कर्पूरमञ्जरी–१/३०
८ पुनर्न्यासः समार्हितिः।–नाट्यदर्पण–१/५३

पर भी उसकी निगाहें मेरी ओर बड़े आदर के साथ लगी हैं।" उधर राजा भी विदूषक से अपवारित में कहता है कि—"उस नायिका के कानों तक फैले हुए चञ्चल तथा केतकी के दल रूपी द्रोणी के समान छवि वाले कटाक्षों से जो मुझको देखा है,---।"[१] इन दोनों के कथनों से यहाँ स्पष्ट हो रहा है कि एक दूसरे के प्रति दोनों में प्रेमाङ्कुर फूट चुका है। यहाँ बीज का स्पष्टतः आधान होने से समाधान है।

(vii) प्राप्ति—बीज के सम्बन्ध में सुख का प्राप्त होना प्राप्ति है।[२] नायिका द्वारा देखे जाने पर नायक अपनी अनुभूतियों को इस प्रकार व्यक्त करते हुए कहता है—"ऐसा ज्ञात होता है जैसे जल द्वारा धो दिया गया हूँ या चांदनी में मुझे स्नान करा दिया गया है अथवा मोतियों का अङ्गराग मुझ पर लगा दिया गया है।[३] यहाँ नायक की सुख की अनुभूतियाँ वर्णित हैं, अतः प्राप्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) युक्ति—प्रयोजन का निर्णय करना युक्ति कहलाता है।[४] कर्पूरमञ्जरी का अपनी मौसेरी बहन के रूप में परिचय प्राप्त कर देवी उसके लिए भैरवानन्द से कहती है—"पन्द्रह-बीस दिन के लिए इसको यहीं रहने दो, बाद में अपने ध्यान रूपी विमान से इसको वापस ले जाना।" भैरवानन्द निवेदन स्वीकार कर लेता है।[५] यहाँ नायक नायिका के आत्यन्तिक मिलन रूप प्रयोजन के उद्देश्य से देवी के कथन द्वारा उपाय का समायोजन किया गया है। अतः युक्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) भेद—पात्रों का रङ्गस्थल से भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से बाहर जाना भेद कहलाता है।[६] यह

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३४

२. प्राप्तिः सुखागमः।—दशरूपक-१/२८

३. कर्पूरमञ्जरी-१/२९

४. संप्रधारणमर्थानां युक्तिः।—दशरूपक-१/२८

५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ४१

६. (क) भेदनं पात्रनिर्गमः।—नाट्यदर्पण-१/४४
   (ख) संघातभेदनार्थो यः सः भेदः।—नाट्यशस्त्र, अध्याय-१९

नायक के रङ्गभूमि से निकलने का भी निमित्त होता है। प्रथम जवनिकान्तर के अंतिम चरण में राजा भैरवानन्द के उचित सत्कार हेतु सुलक्षणा से कहने विचक्षणा को भेजता है। देवी कर्पूरमञ्जरी के वस्त्राभरण आदि ठीक करने के लिए अंतःपुर में जाने की आज्ञा राजा से माँगती हैं एवं राजा अनुमति देता है।[१] इस प्रकार यहाँ विभिन्न उद्देश्य से पात्रों के संघात का भेदन हो रहा है, अतः भेद नामक मुखसन्धि का अङ्ग है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग–

(i) विलास–रति के लिए जो इच्छा होती है वह विलास कहलाती है।[२] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में नायक, नायिका के प्रति रति भाव की ईहा में उन्मत्त सा हो गया है। वह कहता है–"चंचल नेत्रों वाली वह तरुण नायिका, सदा मेरे चित्त में बसी रहती है, उसके गुण सदा मुझे याद आते रहते हैं, वह मेरे सय्या पर सोती हुई सी प्रतीत होती है, इत्यादि।"[३] यहाँ नायिका के प्रति नायक की ईहा का वर्णन होने से विलास नामक प्रतिमुखसन्धि का अङ्ग है।

(ii) परिसर्प– पहले देखे गये एवं पुनः नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[४] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में नायक, नायिका के विरह में व्यथित है, किन्तु असमय में भैरवानन्द द्वारा केतकी पुष्प खिलाने सम्बन्धी प्रसंग से बीज नष्ट सा हो जाता है। ऐसी स्थिति में विचक्षणा नायक को नायिका का प्रेमपत्र देती है, जिसे वह पढ़ता है।[५] उसके माध्यम से पुनः बीज का अन्वेषण किया गया है। अतएव यहाँ परिसर्प है।

(iii) विधूत–सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरूचि ही विधूत कहलाती है।[६] कर्पूरमञ्जरी की दशा का

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ४२
२. रत्यर्थेहा विलास स्याद्।–दशरूपक–१/३२
३. कर्पूरमञ्जरी–२/४
४. दृष्टनष्टानुसर्पणम्।–दशरूपक–१/३२
५. कर्पूरमञ्जरी–२/८
६. विधूतं स्यादरतिः।–दशरूपक–१/३३

वर्णन करते हुए कहा गया है कि-"चन्दन रस उसके शरीर में जलन उत्पन्न कर रहा है। चन्द्रमा उसकी देह को जलाता है, इत्यादि।"[१] एवं राजा की अवस्था सम्बन्धी कथन है कि-"चाँदनी गर्म मालूम पड़ती है, चन्दन का रस विष की तरह लगता है, इत्यादि।"[२] यहाँ सुखप्रद पदार्थों के प्रति अनादर प्रदर्शित है, अतः विधूत है।

(iv) शम—अरति की शान्ति शम कहलाती है।[३] नायिका का पत्र पढ़कर राजा कहता है कि-"यह कथन तो काम के वेग को शान्त करने वाली औषधि के समान है।"[४] यहाँ अपने प्रति कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को जानकर राजा की अरति शान्त हो जाती है। अतः शम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) नर्म—परिहास युक्त वचन नर्म कहलाता है।[५] विदूषक राजा से क्रोधित सा होकर कहता है—"मैने तो उस (कर्पूरमञ्जरी) का सब अलङ्कारों के साथ वर्णन किया और आप को वह उस अवस्था में याद आती है जब स्नान करके उसके सारे प्रसाधन बिगड़े रहते हैं।"[६] यहाँ बीज के उद्‌घाटन सम्बन्धी परिहास का वर्णन है, अतः नर्म नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) नर्मद्युति—उस नर्म से उत्पन्न धृति ही नर्मद्युति मानी गयी है।[७] विदूषक का परिहास युक्त वचन सुनकर राजा कहता है—"बड़े दुख की बात है कि सुन्दर नितम्बों वाली स्त्रियाँ अपनी अनोखी वेश रचना के द्वारा मुग्धों का मन अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।"[८] यहाँ से प्रारम्भ करके "युवास्था में बिना शृङ्गार के ही शरीर सुन्दर रहता है।"[९] तक विदूषक के परिहास से उत्पन्न धृति का वर्णन

---

१. कर्पूरमञ्जरी-२/१०
२. कर्पूरमञ्जरी-२/११
३. तच्छमः शमः।—दशरूपक-१/३३
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ५५
५. परिहासवचो नर्मः।—दशरूपक-१/३३
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य-पृष्ठ ६४
७. धृतिस्तज्जा द्युतिर्मता।—१/३३
८. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ६५
९. वही, पृष्ठ ६८

है। अतः नर्मद्युति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) प्रगमन–बीज के सम्बन्ध में उत्तरोत्तर वचन ही प्रगमन है।[१] विचक्षणा का कथन कि– "कर्पूरमञ्जरी महाराज से प्रेम करती है, यह बात महाराज को सन्तोष पहुँचाती है, परन्तु उसे चन्द्रमा की किरणों से अपने को बचाने का समाचार डर उत्पन्न करता है, इत्यादि"[२] से लेकर विदूषक के कथन है, कि–"कामदेव रूपी चतुर चित्रकार उपर वर्णन किये गये विलास पूर्ण झूला झूलने के विस्तृत चित्र को किसके हृदय पर चित्रित नहीं करता"[३] तक; राजा, विदूषक, विचक्षणा के मध्य वार्ता के माध्यम से बीज के सम्बन्ध में उत्तरोत्तर कथन किया गया है। अतः यहाँ प्रगमन है।

(viii) निरोधन–हित का रुक जाना निरोधन है।[४] झूला झूलती हुई नायिका झूले से उतरकर चली जाती है, जिससे राजा द्वारा उसे देखकर आनन्दित होने का हित बाधित हो जाता है, जैसा कि वह खुद कहता है–राजा (दुख के साथ) "अरे! कर्पूरमञ्जरी उतर पड़ी, झूला खाली हो गया और उसे देखने के लिए लालायित मेरी आँखें भी खाली हो गयी।"[५] यहाँ निरोधन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) उपन्यास–उपाय सहित कथन ही उपन्यास कहलाता है।[६] कर्पूरमञ्जरी एवं राजा दोनो काम ज्वर से पीड़ित हैं। इसके उपचार एवं एक दूसरे का दर्शन कराने के उपाय के रूप में विचक्षणा विदूषक से कहती है, कि–"महाराज के साथ मरकतकुञ्ज के द्वार पर कुछ देर ठहरो, ताकि दोनों को एक दूसरे का दर्शन हो जाने पर शिशिरोपचार सामग्री छोड़ दिया जाय।"[७] यहाँ उपन्यास है।

---

१. उत्तरा वाक्प्रगमनम्।–दशरूपक–१/३४
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ६९
३. वही, पृष्ठ ७८
४. हितरोधो निरोधनम्।–दशरूपक–१/३४
५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ७८
६. उपन्यासस्तु सोपायम्।–दशरूपक–१/३५
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ८३

(स) गर्भसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) मार्ग—प्रकृत विषय के सम्बन्ध में यथार्थ कथन मार्ग है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में नायक प्रकृति विषय नायिका प्राप्ति से सम्बन्धित अपने स्वप्न की यथार्थ बात यथावत विदूषक से कहता है, कि–"मुझे याद पड़ता है कि कमल के समान मुखवाली वह कर्पूरमञ्जरी मेरी विहार सय्या पर आयी और नीलकमल जैसे अपने नेत्रों से प्रहार करने की इच्छा से एकाएक मेरी भुजाओं में बैठ गयी, तब मैंने भी कुतूहल से एकदम अपने अंचल में धीरे से उसको पकड़ा, लेकिन वह छुड़ा कर भाग गयी और मेरी निद्रा टूट गयी।"[२] यहाँ यथार्थ कथन होने से मार्ग है।

(ii) क्रम—सोची हुई वस्तु की प्राप्ति क्रम कहलाती है।[१] ३राजा और विदूषक एकाएक खिड़की के द्वार से अन्तःपुर में विरहव्यथित कर्पूरमञ्जरी के पास पहुँचते हैं। राजा को देखकर नायिका कह उठती है—"अरे! यह एकाएक चन्द्रमा कैसे उतर आया।"[४] यहाँ से लेकर महाराज के कथन—"मेरी जिन आँखों ने तुमको देखा है उनकी मैं सुवर्ण के फूलों से पूजा करूँगा।"[५] तक नायिका एवं नायक को उनकी सोची हुई वस्तु अर्थात् एक दूसरे की प्राप्ति होती है, अतः यहाँ क्रम नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(iiii) अनुमान—किसी चिह्न से किसी बात का निर्णय करना अनुमान कहलाता है।[६] नेपथ्य में कोलाहल को सुनकर, विदूषक महारानी के आने का अनुमान करते हुए कहता है—"महारानी ने प्रियसखी को धोखा दिया ऐसा समझा हूँ।"[७] यहाँ अनुमान नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. मार्गस्तत्त्वार्थकीर्तनम्—दशरूपक–१/३८
२. कर्पूरमञ्जरी–३/३
३. क्रमः संचिन्त्यामानाप्तिः।–दशरूपक–१/३९
४. कर्पूरमञ्जरी,रामकुमार आचार्य, पृष्ठ–११२
५. वही, पृष्ठ–११४
६. अध्यूहो लिङ्गतोऽनुमा।—दशरूपक–१/४०
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२४

(iv) अभूताहरण—प्रकृत विषय से सम्बद्ध छलपूर्वक कार्य ही अभूताहरण है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के अंत में नायक-नायिका के मिलन प्रसंग में महारानी के आगमन की सूचना मिलती है, जिस पर कुरंगिका कहती है—"प्रिय सखि धोखा देकर, तुमसे महाराज के मिलने का समाचार पाकर, महारानी आ रही हैं" इत्यादि। अंततः कर्पूरमञ्जरी कहती है—"महाराज मुझे आज्ञा दें जिससे मैं सुरंग मार्ग से रक्षागृह में चली जाऊँ और महारानी को आप से मिलने का वृतान्त मालूम न हो।"[२] यहाँ सूचित है कि सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी महारानी से छल करके महाराज से मिलने आयी है। पुनः सुरंग मार्ग से रक्षागृह में जाकर महारानी से छल कर रही है। अतः यहाँ छलपूर्वक कार्य होने से अभूताहरण है।

(v) उद्वेग—शत्रु से उत्पन्न भय उद्वेग है।[३] तृतीय जवनिकान्तर के अंत में महारानी के आगमन का समाचार सुनकर नायिका भयभीत होती है एवं जाने की अनुमति चाहती है।[४] यहाँ कर्पूरमञ्जरी के लिए महारानी प्रेम में विघ्नकारी होने से शत्रु रूप ही हैं। यहाँ उद्वेग नायक सन्ध्यङ्ग है।

(द) अवमर्शसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) विद्रव—वध, बन्धन आदि का वर्णन विद्रव है।[५] चतुर्थ जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी को कड़े पहरे में अर्थात् बन्धन में रखने की बात कही गयी है।[६] अतएव विद्रव नामक अवमर्शसन्धि का अङ्ग है।

(ii) आदान—कार्य संग्रह आदान कहलाता है।[७] सारंगिका राजा से कहती है कि—"महारानी

---

१. अभूताहरणं छद्म।—दशरूपक–१/३८
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२५
३. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः।—दशरूपक–१/४२
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १२५
५. विद्रवो वधबन्धादिः।—दशरूपक–१/४५
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १३४–१३७
७. आदानं कार्यसंग्रहः।—दशरूपक–१/४८

कहती हैं कि आज शाम को आप का विवाह कराऊँगी।"[१] यहाँ कार्य का संग्रह दिखलाया गया है, अतः आदान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) प्रसङ्ग—गुरुजनों का कीर्तन प्रसङ्ग कहलाता है।[२] महारानी द्वारा महाराज का विवाह घनसारमञ्जरी से करवाने के निर्णय की बात सुनकर राजा कहता है कि—"यह सब भैरवानन्द का काम है ऐसा सोचता हूँ। चन्द्रमा के अतिरिक्त कौन चन्द्रकान्त मणि की पुतली को पिघला सकता है। शरद् ऋतु में शेफालिका के पुष्पों को पवन के अतिरिक्त कौन खिला सकता है।"[३] यहाँ श्रेष्ठ भैरवानन्द का गुण कीर्तन किया गया है, अतः प्रसङ्ग नामक अवमर्शसन्धि अङ्ग है।

(य) निर्वहणसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) ग्रथन—फल के उपक्षेप को ग्रथन कहा जाता है।[४] सारंगिका राजा को संदेश देती है कि—"महारानी के द्वारा बनवाये गये प्रमदोद्यान के मध्य में स्थित वटवृक्ष के नीचे चामुण्डा देवी के मंदिर में भैरवानन्द और महारानी आयेंगी, आज दक्षिणा में कौतूहल से विवाह किया जायेगा, महाराज यहीं ठहरें।"[५] यहाँ पर फल की सूचना दी जा रही है, अतः ग्रथन है।

(ii) सन्धि—बीज का संधान ही सन्धि कहलाता है।[६] सुरंग से निकलकर कर्पूरमञ्जरी भैरवानन्द को प्रणाम करती है, जिसके आशीर्वाद स्वरूप वह कहता है कि—"उचित वर पाओ।"[७] यहाँ बीज का फलागम से अन्वित करके संधान किया गया है, इस प्रकार यहाँ सन्धि नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४३
२. गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः।-दशरूपक-१/४६
३. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४५
४. ग्रथनं तदुपक्षेपो।—दशरूपक-१/५१
५. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४५
६. सन्धिर्बीजोपगमनम्।-दशरूपक-१/५१
७. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४७

(iii) समय—दुःख का दूर हो जाना समय कहलाता है।[१] विदूषक विवाह के अवसर पर राजा से जनांतिक में कहता है—"तुम्हारा मनोरथ सफल हो गया।"[२] इसमें दुःख का दूर हो जाना स्पष्ट हो जाता है, अतएव समय नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) प्रसाद—प्रसन्न करने का प्रयास प्रसाद कहलाता है।[३] विवाह के प्रसंग में विदूषक द्वारा कर्पूरमञ्जरी का नाम उच्चारण करने एवं इसे सुनकर रानी द्वारा चौंकने पर भैरवानन्द रानी के उस भाव को जानकर उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से विदूषक से कहता है—"तुम तो भूल में हो, घनसारमञ्जरी को कर्पूरमञ्जरी का दूसरा नाम समझते हो।"[४] यहाँ प्रसन्न करने का प्रयास होने से प्रसाद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) आनन्द—अभीष्ट की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है।[५] राजा एवं कर्पूरमञ्जरी का विवाह सम्पन्न होता है, जिसमें राजा घूमने का अभिनय करता है।[६] यहाँ नायक को अभीष्ट की प्राप्ति होती है। अतः आनन्द नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) कृति—लब्ध अर्थ का स्थिरीकरण कृति कहलाता है।[७] विवाहोपरान्त दक्षिणा पाकर विदूषक आशीर्वाद देता है—"कल्याण हो।"[८] इस आशीर्वचन द्वारा राजा को प्राप्त चक्रवर्तित्व एवं नायिका रूपी फल का स्थिरीकरण किया गया है। अतः यहाँ कृति नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. समयो दुःखनिर्गमः।—दशरूपक—१/५२
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५१
३. प्रसादः पर्युपासनम्।—दशरूपक—१/५२
४. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५२
५. आनन्दो वाञ्छितावाप्तिः।—दशरूपक—१/५२
६. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५३
७. लब्धस्थिरीकरणं कृति।—प्रतापरुद्रीय—३/२१
८. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५४

(vii) काव्यसंहार—वरदान की प्राप्ति काव्यसंहार है।[१] चतुर्थ जवनिकान्तर में अंतिम चरण में भैरवानन्द राजा से कहता है कि—"महाराज! और आपकी क्या इच्छा पूर्ण करूँ।"[२] यहाँ इस कथन द्वारा काव्यार्थ का उपसंहार किया गया है। अतएव यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

(viii) आभाषण—प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करना आभाषण या भाषण कहलाता है।[३] राजा प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करते हुए भैरवानन्द से कहता है—"योगीश्वर! इससे बढ़कर और प्रिय क्या हो सकता है, क्योंकि कुन्तल देश के राजा की पुत्री कर्पूरमञ्जरी के कर स्पर्श के निरतिशय आनन्द से मुझे स्वर्ग भी तुच्छ जान पड़ता है और चक्रवर्ती होकर सारे महीतल पर मैं राज्य कर रहा हूँ।"[४] इस प्रकार यहाँ आभाषण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) प्रशस्ति—शुभ का कथन प्रशस्ति कहलाता है।[५] चतुर्थ जवनिकान्तर के अंत में राजा भैरवानन्द के प्रति कहता है—"तब भी ऐसा हो जाए—सारे सज्जन वृन्द सत्यभाषण तथा सदाचार में आनन्द का अनुभव करें। दुष्ट गण हमेशा दुःख भोगते रहें। ब्राह्मणों के आशीर्वाद सर्वदा सत्य निकलें, इत्यादि।"[६] यहाँ शुभ अर्थ का कथन किया गया है, अतः प्रशस्ति नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

---

१. वराप्तिः काव्यसंहारः।—दशरूपक-१/५४
२. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५४
३. प्राप्तकार्यानुमोदनमाभाषणम्—प्रतापरुद्रीय-३/२१
४. कर्पूरमञ्जरी-४/२२
५. प्रशस्तिः शुभशंसनम्।—दशरूपक-१/५४
६. कर्पूरमञ्जरी-४/२३

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का वस्तु-विवेचन

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कथावस्तु चार जवनिकान्तरों में विभाजित है। वस्तु को विवेचित करने से पूर्व उसे संक्षेप में प्रस्तुत करना अपेक्षित है, जो इस प्रकार है।–

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक

प्रथम जवनिकान्तर में राजा राजशेखर एवं विदूषक, उद्यान में अपने–अपने स्वप्न की बातें कहते हैं। राजा स्वप्नदृष्ट एक सुन्दरी का उल्लेख करता है, जिसकी रूपमाधुरी पर वह मोहित है। विदूषक ने राजा को स्वप्न में ऐरावत हाथी पर बैठा हुआ देखा था। राजा स्वप्न की सुन्दरी को पाने का अभिलाष विदूषक से व्यक्त करता है, जिसे शृङ्गारमञ्जरी की अंतरङ्ग परिचारिका एवं सहेली वसन्ततिलका सुन लेती है। कहीं वह रानी को बता न दे, इससे राजा आशंकित है। अतएव उसे विश्वास में लेकर स्वप्न की बात उससे स्पष्टतः बताता है, एवं उसका चित्र बनाकर दिखाता है, जिसे वसन्ततिलका अन्तःपुर में रहने वाली शृङ्गारमञ्जरी के रूप में पहचान करती है। वह नायिका की तरफ से एक कवित्वपूर्ण पद्य राजा से निवेदित करती है, जिसमें उसने महाराज के प्रति अपना प्रेम व्यक्त किया है। यहाँ नायक एवं नायिका का एक–दूसरे के प्रति प्रेम स्पष्ट हो जाता है। वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी को सन्देश पहुँचाने चली जाती है।

द्वितीय जवनिकान्तर में नायक नायिका की स्मृति में विह्वल है। शृङ्गारमञ्जरी के दर्शन के लिए विदूषक उपाय सोचता है। देवी के संदेशानुसार राजा मदनपूजा के लिए, विदूषक के साथ मदनोद्यान में जा रहा है। इस अवसर पर विदूषक की आँख फड़कती है, जिस पर वसन्ततिलका व्यङ्ग्य करती है। परिणामतः दोनों में विवाद हो जाता है, जो शास्त्रीय विवाद का रूप धारण कर लेता है। इसके निर्णय हेतु देवी शृङ्गारमञ्जरी को बुलवाती है। महाराज शृङ्गारमञ्जरी को देख लेते हैं, विदूषक का उपाय सफल हो जाता है। अंततः रानी को दोनों के प्रेम का पता चल जाता है। प्रेम सहयोगी होने के कारण विदूषक एवं वसन्ततिलका का मिलना बन्द करवा दिया जाता है, एवं नायिका को

बन्दी बनाकर रख दिया जाता है।

तृतीय जवनिकान्तर में नायिका पर महारानी की कड़ी निगरानी वर्णित है। विदूषक किसी तरह वसन्ततिलका से मिलता है, जिससे उसे ज्ञात होता है कि—नायिका का विरह संताप असह्य है। वह काम संताप के कारण लतापाश से गला घोंट कर मरना चाहती है, तथा मात्र इस आश्वासन पर जीवित है कि—माधवी लता के मण्डप में महाराज से उसका मिलन होगा। अतः विदूषक की प्रार्थना पर राजा नायिका की रक्षा हेतु उस स्थान पर जाता है। शृङ्गारमञ्जरी को वसन्ततिलका ले आती है। नायिका, नायक बातें करते हैं। राजा नायिका को प्रेम का पूरा आश्वासन देता है। जब वह जाना चाहती है, उस समय भी राजा उससे प्रेम बनाये रखने को कहते हैं।

चतुर्थ जवनिकान्तर में राजा नायिका के मिलन को याद करता है, साथ ही रानी के क्रूर व्यवहार से दुःखी एवं निराश है, क्योंकि रानी ने वसन्ततिलका एवं विदूषक को भी बन्दी बना रखा है। किसी प्रकार कारागार से मुक्त विदूषक भाग्य को कोसता दिखाई पड़ता है एवं राजा के पूछने पर बताता है, कि—पार्वती की पूजा करके लौटते हुए महारानी को दिव्य वाणी सुनाई पड़ी कि—"पति की सेवा करना ही पतिव्रता का धर्म है।" ऐसी वाणी सुनते ही महारानी ने हम सभी को कारागार से छोड़ दिया। इसके बाद महारानी, वसन्ततिलका एवं शृङ्गारमञ्जरी के साथ महाराज के पास आती है, एवं शृङ्गारमञ्जरी को राजा के लिए उपहार के रूप में प्रस्तुत करती हैं; राजा उसे स्वीकार करता है। इसी समय मन्त्री चारुभूति आकर राजा का चक्रवर्ती के रूप में अभिवादन करता है तथा शृङ्गारमञ्जरी का पूर्व वृतान्त बताता है, जिसके अनुसार वह अवन्तिराज जटाकेतु की पुत्री है। मातङ्ग ऋषि से यह ज्ञात होने पर कि—'उसका पति चक्रवर्ती राजा होगा'; उसने शृङ्गामञ्जरी को ले आकर रानी के पास रखा था। महारानी यह जानकर दुःखित होती है, कि–उसने आत्मीय को कष्ट दिया। पश्चात्ताप के साथ वह शृङ्गारमञ्जरी एवं राजा का विवाह करवा देती है। नायिका देवी को धन्यवाद देती है। महाराज अभीष्ट प्राप्ति से प्रसन्न होते हैं तथा अंत में सभी के मंगल की कामना करते हैं।

शृङ्गारमञ्जरी के कथानक का स्वरूप

(क) बाह्य स्वरूप–

शृङ्गारमञ्जरी का कथानक स्रोत की दृष्टि से उत्पाद्य कोटि का है। इस प्रकार यह सट्टक के लक्षण के पूर्णतः अनुरूप है, जिसमें कहा गया है कि—सट्टक का कथानक कवि कल्पित होता है। यद्यपि इसमें अवन्ति जैसे ऐतिहासिक स्थल एवं इतिहास में वर्णित राजा राजशेखर का उल्लेख है, किन्तु इसके अन्य पात्रों एवं कथा का इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है और न ही कथा पुराणों या महाभारत–रामायण जैसे महाकाव्यों की उपजीवी है। यह भी कर्पूरमञ्जरी की भाँति उन तमाम घटनाओं को इकट्ठा करके नये ढंग से गुम्फित हुई है, जिसका समायोजन भास के नाटकों एवं हर्ष की नाटिकाओं में किया गया है।

पात्र की दृष्टि से यह कथा मर्त्य की कोटि में रखी जा सकती है, क्योंकि इसके सभी पात्र मानवीय गुणों वाले विशुद्ध इहलोक के प्राणी हैं। यद्यपि आकाशवाणी की घटना दैवीय है, परन्तु मात्र इस घटना के कारण यह दैवीय या दिव्यादिव्य की कोटि में रखने की पात्रता नहीं प्राप्त कर लेता, क्योंकि इस घटना में मानवीय व्यवहार का ही उद्‌घाटन किया गया है, जो कथानक में आवश्यक मोड़ ले आने हेतु अपेक्षित था।

प्रयोजन की दृष्टि से विचार करने पर इसमें धर्म एवं काम दोनों प्रयोजन परिलक्षित होते हैं। मन्त्री राजा के चक्रवर्तित्व की प्राप्ति हेतु ही नायिका को ज्येष्ठा नायिका के पास अन्तःपुर में रखता है, जिससे राजा से उसकी शादी हो सके। इस प्रकार चक्रवर्तित्व रूप धर्म नामक पुरुषार्थ परम प्रयोजन के रूप में दिखाई पड़ता है, किन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो काम ही परम प्रयोजन के रूप में परलिक्षित होता है। क्योंकि काम नामक पुरूषार्थ को लक्ष्य में रखकर ही कथा निरन्तर आगे बढ़ रही है राजा जो फल का अधिकारी है, वह काम नामक पुरुषार्थ की प्राप्ति हेतु ही सतत् प्रयत्नशील है। कथा के अन्तिम चरण तक नायक को इस बात का आभास तक नहीं

है, कि—जिस मार्ग पर वह आगे बढ़ रहा है, उसके द्वारा उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति भी होने वाली है। इस प्रकार चक्रवर्तित्व रूप 'धर्म' की प्राप्ति को अवान्तर प्रयोजन एवं 'काम' को परम प्रयोजन मानना ही उचित है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है, कि—'धर्म' से अनुगत 'काम' कथा का प्रयोजन है।

(ख) अन्तःस्वरूप—

१. आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का फल है, राजा का शृङ्गारमञ्जरी से विवाह एवं चक्रवर्तित्व की प्राप्ति। अतएव इस फल तक पहुँचने वाला सम्पूर्ण वृत्त ही, नाटक का आधिकारिक वृत्त है। पताका एवं प्रकरी उपभेदों वाले प्रासंगिक वृत्तों में से, शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में प्रकरी का गुम्फन प्राप्त होता है। चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में, अमात्य चारुभूति द्वारा मातंग ऋषि की कृपा से, राक्षस (पूर्व जन्म का मणिमाली पार्षद) के चंगुल से शृङ्गारमञ्जरी को पाने एवं राजा के कल्याण के लिए उसे अन्तःपुर में रखने की कथा प्रकरी[१] है। इस लघु कथा का मुख्य कथा के साथ नैरन्तर्य नहीं है, अपितु पुष्प के ढ़ेर के समान[२] एक स्थान पर एकत्र करके रखी गयी है। नाट्य एवं इस कथा के पात्र चारूभूति के लिए इसका फल नहीं है; अपितु अन्य पात्र राजा के लिए इसका फल है। प्रकरी का पात्र चारुभूति, प्रधान नायक के सहयोग के बिना ही, उसके फल प्राप्ति हेतु कार्य सम्पादित करता है।[३]

---

१. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।—दशरूपक-१/१३

२. पुष्पप्रकरवन्निहिता या शोभा जनयति सा प्रकरी।—नाट्यलक्षणरत्नकोश, पृष्ठ-२१

३. फलं प्रकल्प्यते यस्याः परार्थायैव केवलम्।
अनुबन्धविहीनत्वात् प्रकरीति विनिर्दिशेत्।।—नाट्यशास्त्र-२०/२४

२. अर्थोपक्षेपक

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में कथानक के दृश्य एवं सूच्य भागों में से, दृश्य अंशों को पात्रों द्वारा चतुर्विध अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। सूच्य अंशों को प्रस्तुत करने वाले अर्थोपक्षेपकों का विवेचन क्रमशः इस प्रकार है—

(अ) विष्कम्भक—

सट्टक के लक्षणनुसार शृङ्गारमञ्जरी में विष्कम्भक का अभाव है।

(ब) प्रवेशक—

सट्टक के लक्षणानुसार प्रवेशक भी इसमें प्राप्त नहीं होता।

(स) चूलिका—

शृङ्गारमञ्जरी में चूलिका के कुल पाँच प्रयोग प्राप्त होते हैं। सर्वप्रथम प्रस्तावना को ही दो बार चूलिका का प्रयोग करके प्रस्तुत किया गया है। मूल कथा में तीन स्थलों पर चूलिका का प्रयोग हुआ है। प्रथम जवनिकान्तर के अंतिम चरण में, चूलिका के माध्यम से भगवान शंकर की स्तुति के बहाने, सायंकाल के आगमन की इस प्रकार सूचना दी गयी है—

(नेपथ्य में)

"सन्ध्यानृत्य के समय, शंकर की जटाओं की भारी-भारी गाठों के छूट जाने और शरीर के घुमाव के कारण गले में स्थित नागराज के शिथिल पड़ जाने के कारण, उनके ललाट पर बिखरा हुआ पिंग वर्ण का जटा–समूह ऐसा लगता है–मानो ललाट के तीसरे नेत्र से उत्पन्न आग की लपटे हों। ऐसा सन्ध्यानृत्य आप को श्री देने वाला हो।"[१] यह चूलिका है। इसी प्रकार द्वितीय जवनिकान्तर

---

१. जूडे मुक्के भमणसिढिलीहूअणाइंददाए
जस्सिं पिंगं विलसइ जडामंडलं विप्पइण्णं।
भालूद्देसोदिअसिहिसमुत्थं व जालावअंबं
संझाणच्चं तिउररिउणो होउ तं वो सिरीए।।—शृङ्गारमञ्जरी–१/४०

के अन्त में कामदेव के आशीर्वाद-परक-स्तुति[१] के माध्यम से, 'मनोकामना पूर्ण होगी' इसकी अभिव्यञ्जना की गयी है। तृतीय जवनिकान्तर के मध्य में, चूलिका के माध्यम से प्रदोषकाल के प्रकट होने की सूचना दी गयी है;[२] जिससे दर्शकों को उस तथ्य से अवगत कराया जा सके, कि-राजा संकेत स्थल पर नायिका से मिलने अंधेरा घिरने पर जा रहा है।

(द) अङ्कास्य-

शृङ्गारमञ्जरी सटट्क में अङ्कास्य का प्रयोग नहीं हुआ है।

(य) अङ्कावतार-

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अङ्कावतार का भी सर्वथा अभाव है।

३. नाट्योक्ति

नाट्योक्ति के सर्वश्राव्य,अश्राव्य एवं नियतश्राव्य ये तीनों ही रूप शृङ्गारमञ्जरी में उपलब्ध हैं।

(अ) सर्वश्राव्य-

मञ्चस्थ सभी पात्रों के सुनने योग्य कथन की शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में बहुलता है। कुछ गिने चुने अश्राव्य एवं नियतश्राव्य अंशों को छोड़कर सम्पूर्ण कथांश सर्वश्राव्य के अन्तरगत आता है।

(ब) अश्राव्य-

शृङ्गारमञ्जरी में अश्राव्य या स्वगत कथनों के अनेक मनोरंजक स्थल उपलब्ध हैं, जिनकी कथा के विकास में महत्वपूर्णस्थल भूमिका है। कतिपय महत्वपूर्ण स्थल उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं-

(i) प्रथम जवनिकान्तर में राजा विदूषक से अंपने स्वप्न के वृतान्त को बताने के बाद वसन्ततिलका को देखकर आशंका के साथ मन में कहता है-''कहं देईए वीसंभभाअणं बसन्ततिलआ। मा णाम

---

१. शृङ्गारमञ्जरी-२/४१

२. शृङ्गारमञ्जरी-३/१५

एदं एदाए सुदं भोदु अहो एक्कदेशो सिविणअस्स संवाओ।"[1] अर्थात् यह तो देवी की विश्वासपात्र वसन्ततिलका है। क्या उसने हमारी बात सुन तो नहीं ली? आश्चर्य है कि मेरे स्वप्न के एक अंश का सादृश्य मिल चुका। यहाँ इस कथन के माध्यम से राजा द्वारा मूलतः महारानी से भयभीत होना एवं स्वप्न सुन्दरी के मिल सकने की संभावना व्यञ्जित की गयी है।

(ii) द्वितीय जवनिकान्तर में, विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य, रस विषय पर शास्त्रार्थ के निर्णय के लिए शृङ्गारमञ्जरी को बुलाने के निर्णय सम्बन्धी रानी का स्वगत कथन है–"कधं णिम्मूलस्स वि...... ण मंतेदि। भोदु । का गई।[2]" अर्थात् कैसे बिना किसी कारण के ही साधारण सी बात का कितना विषम परिणाम हो जाता है। अन्तःपुर में शृङ्गारमञ्जरी रहती है, जिसने रस निरूपण में अच्छा परिश्रम किया है और उसकी इस विषय की अनेक बार परीक्षा भी ली जा चुकी है। वह असाधारण सौन्दर्यशालिनी है, अतः मैंने उसे महाराज की दृष्टि से प्रयत्नपूर्वक बचाया है। यहाँ अब किसी बाहरी व्यक्ति का प्रवेश उचित नहीं है। मैंने इन दोनों के वाद-विवाद की परीक्षा करवाने की बात सोची है। यह गौतम ब्राह्मण मूर्ख है, जो हम पर विश्वास नहीं करता। ठीक है, अब क्या किया जाय? विवशता है।" इस स्वगत कथन से शृङ्गारमञ्जरी की अपूर्वसुन्दरता, असाधारण विद्वत्ता, उसे देखकर राजा द्वारा शृङ्गारमञ्जरी पर मुग्ध होने की रानी की आशंका आदि, कथा के महत्त्वपूर्ण अंश प्रकट हो रहे हैं।

(iii) तृतीय जवनिकान्तर में राजा द्वारा नायिका का हाथ पकड़ने पर नायिका की मनोदशा की सुन्दर अभिव्यक्ति नायक के स्वगत कथन द्वारा हो रही है, जो इस प्रकार है–

"जइ वि ण करेइ जत्तं मम करमालंविडं मुद्धा।
तह वि गहिअं णिअकरं ण मम करादो विओएइ।।"[3]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १९

२. शृङ्गारमञ्जरी–डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ५०

३. शृङ्गारमञ्जरी–३/५२

(यद्यपि यह भोली मेरे हाथ का सहारा लेने का प्रयत्न नहीं कर रही है, परन्तु फिर भी मेरे द्वारा पकड़े हुए अपने हाथ को मेरे हाथ से नहीं छुड़ा रही है।)

(iv) चतुर्थ जवनिकान्तर में देवी का स्वगत कथन है–"अहो! अइक्कमो। मम आवुत्तस्स अवंतिपइणो दुहिदा, ण पहवामि लज्जाए मुहं दावेउं।[१]" (अरे यह तो मर्यादा का अतिक्रमण हो गया। यह तो मेरे बहनोई अवन्तिराज की बिटिया है। मैं तो लज्जा के कारण अपना मुँह दिखाने के योग्य नहीं रही।) इसके द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को निकट सम्बन्धी के रूप में पहचान कर, उसके प्रति किये गये अपने व्यवहार के कारण शर्मिन्दगी महसूस कर रही है। यद्यपि यह सर्वश्राव्य कथन भी हो सकता था, किन्तु वह बनावटी जैसा लगता, जबकि स्वगत कथन होने के कारण देवी की शर्मिन्दगी की अभिव्यञ्जना कई गुना बढ़ जाती है। उसके चरित्र की महनीयता स्पष्ट झलकने लगती है।

(स) नियतश्राव्य–

नियतश्राव्य के भी कुछ स्थल शृङ्गारमञ्जरी में उपलब्ध होते हैं। जैसे–

(i) द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक, राजा, वसन्ततिलका, माधविका आदि के मध्य देवी, माधविका से जनान्तिक के माध्यम से, शृङ्गारमञ्जरी को ले आने के लिए कहती है–"हज्जे माहविए, सिंगारमंजरिं गहिअ लहु आअच्छ।"[२] (सखी माधविका! शृङ्गारमञ्जरी को लेकर यहाँ शीघ्र आओ।) यह कथन केवल माधविका के लिए कहा गया है, ताकि जिसे निर्णायक के रूप में बुलाया जा रहा है उसका नाम आदि सुनकर राजा की उसमें उत्सुकता न हो सके।

(ii) तृतीय जवनिकान्तर में राजा वसन्ततिलका एवं शृङ्गारमञ्जरी की उपस्थिति में विदूषक से जनान्तिक द्वारा कहता है–"एसो ज्जेव पिअअमासंगमाणुरूओ मुहुत्तो।............दुक्खमइवेलं।।[३]

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०७

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

३. शृङ्गारमञ्जरी–३/४६–४७

अर्थात् यही प्रियतमा से मिलने का समय होता है, क्योंकि इसने मेरे लिए ही सदैव इतना कष्ट सहन किया, तो स्वाधीन होकर भी मैं इस उपयुक्त बेला की अवहेलना क्यों करूँ। पहला वियोग अब दुखदायक नहीं होगा, क्योकि मनोरथ रूपी अमृत से इसके शरीर को, अधिक शांति प्राप्त हुई है। इस मनोरथ के बिना इस संकेतिक समय में इसे अवश्य ही अधिक दुख होता है। यहाँ राजा विदूषक से समय परिस्थिति के अनुकूल जो बातें कर रहा है, उसे किसी अन्य पात्र को सुनाना अपेक्षित नहीं है, जबकि दर्शकों एवं विदूषक को राजा की मनोदशा एवं विचारों का भान कराना आवश्यक है।

४. अर्थप्रकृतियाँ

शृङ्गारमञ्जरी की कथावस्तु में पताका के अतिरिक्त अन्य अर्थप्रकृतियों का सुन्दर समायोजन प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है–

(अ) बीज–

शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में राजा[१] एवं विदूषक[२] की उक्तियों में बीज नामक अर्थप्रकृति है। नायक राजशेखर स्वप्न में एक सुन्दरी को देखता है तथा उसके रूप लावण्य पर

---

१. राजा–सुट्ठु भणिदं केनावि। तं जहा (सुष्ठु भणितं केनापि। तद्यथा)–

अत्थाणं असंताणं वि इह अणुहवगोअरे अराणं पि।
णिद्दा जणेइ बोहं अदिट्ठसक्कारमाहप्पा।।
(अर्थानामसतामपि इहानुभवगोचरेतराणामपि।
निद्रा जनमति बोधमदृष्टसत्कारमाहात्म्या।।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/१५

२. विदूषक–उववण्णं भणइ पिअवअस्सो। कहमण्णहा (उपपन्नं भणति प्रियवयस्यः। कथमन्यथा)–

गअणसरिआइ सोत्ते अब्भमुवल्लहगइंदमारूढो।
अर–अंबर–संवाओ दिट्ठो सि भवं पसुत्तेण।।
(गगनसरितः स्रोतसि अभ्रमुवल्लभगजेन्द्रमारूढः।
वर–अम्बर–संवीतो दृष्टोऽसि भवान् मया प्रसुप्तेन।।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/१६

मोहित होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। विदूषक स्वप्न में राजा को ऐरावत पर बैठा हुआ देखता है, जो राजशेखर के चक्रवर्ती होने का सूचक है। इस प्रकार राजा एवं विदूषक की उक्तियों में, नायिका प्राप्ति एवं राजा के चक्रवर्ती होने की व्यजञ्जना है। यही बीज नामक अर्थप्रकृति है, जो वृक्ष की तरह अंकुरित होकर नायक के फलप्राप्ति की ओर बढ़ता है

(ब) बिन्दु–

शृङ्गारमञ्जरी के द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक एवं वसन्ततिलका के कलह से कथा का सूत्र शिथिल पड़ जाता है। विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य प्रारम्भ हुए शास्त्रीय विवाद का निर्णय करने के लिए नायिका मध्यस्थता का कार्य करती है,जहाँ नायक एवं नायिका एक दूसरे को देखते हैं। तदनन्तर देवी की आज्ञा से नायिका चली जाती है। यहाँ से कथा पुनः चल पड़ती है। यही कथा का बिन्दु है, क्योंकि विच्छिन्न हुए कथासूत्र को जोड़ने एवं आगे बढ़ाने का यही कारण है।

(स) पताका—

इसका शृङ्गारमञ्जरी सटट्क में अभाव है।

(द) प्रकरी—

चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में प्रकरी का समायोजन किया गया है। सामान्य रूप से प्रकरी का समायोजन गर्भ या अवमर्श सन्धि में होता है, किन्तु यहाँ निर्वहण सन्धि में प्रकरी का समायोजन हुआ है। पताका के सन्दर्भ में 'नाट्यलक्षणरत्नकोश' में कहा गया है कि–"सा गर्भेऽवमर्शे च निवर्तते इति नात्यन्तिकमेतदवगन्तव्यम् ।"[१] अर्थात् पताका की स्थिति गर्भ या अवमर्श के बाद नहीं रहती; यह कथन एकदम नियम के रूप में नहीं लेना चाहिए। यही कथन प्रकरी के सम्बन्ध में भी किया जा सकता है। अतः यहाँ निर्वहण सन्धि में प्रकरी का समायोजन सामान्य परम्परा

---

१. नाट्यलक्षणरत्नकोश, पृष्ठ २०

से अलग हट कर है।

प्रस्तुत प्रकरी में अमात्य चारुभूति द्वारा मातंग ऋषि की कृपा से राक्षस (जो पूर्व जन्म का मणिमाली पार्षद है) के चंगुल से शृङ्गारमञ्जरी को पाने एवं राजा के कल्याण के लिए उसे अन्तःपुर में रखने की कथा वर्णित है।[१] इस लघु कथा का मुख्य कथा के साथ नैरन्तर्य नहीं है, अपितु यह एक स्थान पर रखी गयी है। इस कथा का प्रमुख पात्र चारुभूति प्रधान नायक राजा के लिए फल प्राप्ति हेतु कार्य सम्पादित करता है। इस प्रकार यह हर प्रकार से प्रकरी के लक्षणों से युक्त है।

(स) कार्य–

शृङ्गारमञ्जरी सटट्क के चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में नायक राजशेखर का नायिका शृङ्गारमञ्जरी के साथ महारानी की अनुमति से विवाह होता है[२] साथ ही उसे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।[३] यही कार्य नामक अर्थप्रकृति है।

५. कार्यावस्थायें

आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति एवं फलागम नामक कार्य व्यापार की पाँच अवस्थाओं की दृष्टि से शृङ्गारमञ्जरी सटट्क की कथावस्तु का सुव्यवस्थित गुम्फन द्रष्टव्य है–

(अ) आरम्भ–

शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में राजा विदूषक से अपने स्वप्न के विषय में बताता है; जिसमें उसने एक अपूर्व सुन्दरी को देखा था। वह उस सुन्दरी के सौन्दर्य पर मुग्ध है एवं उसे प्राप्त

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६–१०८

२. देवी–गंधव्वविहिणा करीअदु परिणओ इमीए। (गान्धर्वविधिना क्रियतां परिणयोऽस्याः।)
राजा–जं देवी आणवेदि। (यद्देव्याज्ञापयति।)
(इति सर्वे यथोचितपरिणयसमाप्तिमभिनयन्ति)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५

३. अमात्य–देव, दिठ्ठिआ वड्ढसि चक्कवत्तिपएण।
(देव! दिष्ट्या वर्धसे चक्रवर्तिपदेन।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६

करना चाहता है। राजा एक तरफ विदूषक से स्वप्न की उस सुन्दरी के प्रति प्रेम का प्रकाशन करता है, तो दूसरी तरफ वसन्ततिलका से इस बात को छिपाना चाहता है, किन्तु यह गोप्य-गोपन का प्रयास अधिक देर तक स्थिर नहीं रह पाता। अंततः वह अपने स्वप्न के रहस्य को वसन्ततिलका के सामने खोलते हुए कह उठता है–"वसन्ततिलए! अज्ज सिविणए अउव्वगुणगणसोहिरी का वि णाइआ मए आलोइदा। तीए प्वसंगेण अअं वुत्तंतो उवक्कंतो आसी।"[१]

अर्थात् वसन्ततिलका! आज मैनें स्वप्न में कोई अपूर्व गुणों वाली एक सुन्दर नायिका देखी। उसी के सम्बन्ध में यहाँ चर्चा हो रही थी। इस उक्ति में नायिका के प्रति नायक का औत्सुक्य स्पष्ट है। अतः यहाँ आरम्भ नामक कार्यावस्था है।

(ब) यत्न–

नायक, नायिका की प्राप्ति रूपी लक्ष्य के प्रति यत्नशील होता है। इस हेतु तेजी के साथ योजनायुक्त व्यापार किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रथम जवनिकान्तर में नायक द्वारा नायिका का चित्रावलोकन एवं योजनाबद्ध ढंग से बसन्ततिलका के साथ विदूषक के शास्त्रीय वाद–विवाद के निर्णय के लिए मध्यस्थता हेतु नायिका का बुलाया जाना आदि कार्य किये जाते हैं। यही कथावस्तु की यत्न नामक कार्यावस्था है।

(स) प्राप्त्याशा–

शृङ्गारमञ्जरी के दूसरे जवनिकान्तर के अन्त में रानी को राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी के प्रेम की बात पता चल जाती है। अतः वह शृङ्गारमञ्जरी को कड़े पहरे में रख देती है। इस प्रेम के सहायक विदूषक एंव वसन्ततिलका का भी मिलना बन्द करवा दिया गया है। यह नायक की फल प्राप्ति के लिए निराशा की स्थिति है। तीसरे जवनिकान्तर में किसी प्रकार विदूषक एवं वसन्ततिलका की मुलाकात होती है, जिससे राजा के पास तक यह सन्देश पहुँचता है, कि–"नायिका अपना गला

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २४

घोंटकर प्राणों को छोड़ना चाहती है, किन्तु इस आश्वासन पर जीवन धारण किये है, कि–माधवी लतामण्डप में राजा से उसकी मुलाकात होगी।" अंततः लतामण्डप में दोनों की क्षणिक मुलाकात होती भी है, किन्तु आत्यन्तिक मिलन के प्रति अभी भी सन्देह की स्थिति है। यहाँ फल प्राप्ति निराशा एवं आशा के बीच झूलती है। यहाँ नायिका की प्राप्ति रूप फलागम, वसन्ततिलका एवं विदूषक के प्रयास से झलकता प्रतीत होता है; अर्थात् फलप्राप्ति की आशा है। अतएव यहाँ प्रप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।

(द) नियताप्ति–

चतुर्थ जवनिकान्तर में नायिका, विदूषक एवं वसन्ततिलका के कारागार में बन्दी रहने पर फलप्राप्ति के प्रति राजा निःसहाय हो गया है। किन्तु जैसे ही महारानी आकाशवाणी द्वारा पतिव्रताधर्म का उपदेश सुनती है, एवं खुद विचार करके यह सुनिश्चित करती है, कि–'महाराज से होने वाले शृङ्गारमञ्जरी के मिलन में विघ्न डालना ठीक नहीं है।' इसके साथ ही नियताप्ति का आरम्भ हो जाता है, सारी रुकावटें टल चुकी हैं। नायक द्वारा नायिका के प्राप्ति की संभावना निश्चित स्थिति में पहुँच जाती है। नायक स्वयं कह उठता है–

मज्जंतस्य महण्णवम्मि सहसा पोअस्स आसाअणं
अत्थक्के वि महंधआरकवलीभूअस्स दीवाअमो।
कंठे संठिअजीअणस्स अमआसारो सरीरंतरे
उज्जंतस्स अ मम्महेण दइआलाहस्स संभावणा।।[१]

इस प्रकार यहाँ नियताप्ति नामक कार्यावस्था है।

---

१. मज्जतो महार्णवे सहसा पोतस्य आसादन–
मकाण्डेऽपि महान्धकारकवलीभूतस्य दीपागमः।
कण्ठे संस्थितजीवनस्यामृतासारः शरीरान्तरे
उद्यन्तश्च मन्मथेन दयितलाभस्य सम्भावना।।(संस्कृत छाया)–शृङ्गारमञ्जरी–४/१५

(य) फलागम–

शृङ्गारमञ्जरी के चतुर्थ जवनिकान्तर में नायक का नायिका के साथ विवाह होता है एवं उसे चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होती है। इस प्रकार नायक को सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाती है, यही फलागम नामक कार्यावस्था है। जो राजा के कथन से स्पष्ट हो रहा है–"मेरी आज्ञा राजाओं के मुकुटमणियों के प्रभामञ्जरी के अंतिम किनारे तक पहुँची है। भृगुटी के केवल भंगिमा से समुद्र तक पृथ्वी सीमा बन चुकी है। इस मृगाक्षी ने अभी तक अज्ञात तनुता के साथ स्थिरता वाली योग्य कन्या को वर रूप में दिया।[१]"

६. सन्धि-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में कथावस्तु का, सन्धियों के आधार पर सुन्दर गुम्फन प्राप्त होता है, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है–

(अ) मुखसन्धि–

प्रथम जवनिकान्तर में नायक स्वप्न में नायिका का चित्र बनाकर अपनी प्रणय दशा की अभिव्यक्ति करता है। यहाँ अनेक प्रकार के प्रयोजन और रस को निष्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति हो रही है। यहाँ बीज एवं आरम्भ का योग है। इस प्रकार स्वप्न दर्शन से लेकर नायक द्वारा नायिका को अंकित करने तक मुखसन्धि है।

(ब) प्रतिमुखसन्धि–

प्रथम जवनिकान्तर में नायक द्वारा सूचित प्रेम–द्वितीय जवनिकान्तर में नायक एवं नायिका के मिलन का कारण है, जो विदूषक एवं वसन्ततिलका को विदित है। यहाँ नायक एवं नायिका के प्रेम लक्ष्य है। नायिका एवं नायक को रूपलेखा एक साथ देखकर उनके प्रेम का अनुमान करती

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/२४

हुई अपने मन में कहती है–'बहुत समय तक उन दोनों का साथ रहना मुझे उचित नहीं लग रहा है, क्योंकि पहले तो इन दोनों के परस्पर दर्शन नहीं हुए, किन्तु किसी प्रकार मेरे ही अनुरोध से वशीकृत हुए उन दोनों के नेत्रों की गति कुछ ऐसे अनोखे ढंग से आन्तरिक अनुराग से स्फुरित हो रही है, जो केवल सूक्ष्म बुद्धि से जानने योग्य है।'[१] यहाँ यह प्रेम अलक्ष्य है। इस प्रकार बीज का सूक्ष्म रूप कुछ लक्ष्य एवं कुछ अलक्ष्य रूप में विकसित है। इसके तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक एवं वसन्ततिलका के मिलने पर रोक लग जाने से, फलसिद्धि के उपाय शिथिल पड़ जाते हैं। वसन्ततिलका समय निकालकर एकान्त में विदूषक से मिलती है। राजा के पास नायिका की प्राणरक्षा का सन्देश भेजती है, जिससे फलसिद्धि के उपाय पुनः दिखाई देने लगते हैं। इस प्रकार इसमें बिन्दु एवं यत्न का योग है, अतः यहाँ प्रतिमुखसन्धि है।

(स) गर्भसन्धि–

तृतीय जवनिकान्तर में माधवी लताकुञ्ज में नायक एवं नायिका की मुलाकात होती है। यहाँ नायिका की आत्यन्तिक प्राप्ति रूपी फलागम में देवी का भय बाधक है। यहाँ प्राप्ति की संभावना तो है, किन्तु फल का ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता। यहाँ दिखाई देखकर खोये गये बीज का बार–बार अन्वेषण किया जा रहा है। यहाँ यद्यपि पताका नहीं है, फिर भी प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है; जो गर्भसन्धि के स्वरूप को साकार करती है।

(द) अवमर्शसन्धि–

अवमर्शसन्धि के अभाव में भी शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कोटि में आ सकती थी। किन्तु सट्टक में अल्प विमर्श रह सकने वाले विकल्प का लाभ लेते हुए, शृङ्गारमञ्जरी में अवमर्श सन्धि की संक्षिप्त योजना की गयी है; जो इस प्रकार है–

---

१. चिरआलं एदाणं एक्कदेसावत्थाणं दाव अम्हाणं अणुइअं। जदो–
पूव्वं पि.........णेत्त-जुअ-प्पआरो।–शृङ्गारमञ्जरी–२/३३

चतुर्थ जवनिकान्तर में विदूषक, वसन्ततिलका सहित शृङ्गारमञ्जरी को बंदी बना दिये जाने से, शृङ्गारमञ्जरी की प्राप्ति रूप साध्य विघ्न युक्त जान पड़ता है। राजा कहता है—"वह प्राणप्यारी तो शेरनी की पकड़ में आयी हुई हरिणी की भाँति असहाय सी महल के किसी ऐसे अन्दरूनी कमरे में रखवा दी गयी है, जहाँ किसी रास्ते से प्रवेश सम्भव नहीं है और वह स्थान घने अन्धकार से गहन पाताल के अन्तःस्थान सा है। उसे देखकर यह लगता है, कि—मानो वह भीतर का अँधेरा कमरा किसी दुष्कर्म वाले मनुष्य की तरह दूसरे पुरुषों के आवागमन से रहित अर्थात् जनशून्य है। अब ऐसी दशा में क्या किया जाय?"[१] यहाँ सबल विघ्न के आ जाने से प्रत्यासन्न बाधा का कारण नायक के कथनानुसार दुर्दैव है।[२] देवी का क्रोध एवं ईर्ष्या भी बाधा का कारण है, क्योंकि देवी की आज्ञा से ही वसन्ततिलका, विदूषक एवं नायिका बन्दी हुए हैं। उपर्युक्त विवेचन के आलोक में प्रस्तुत प्रसङ्ग में अवमर्शसन्धि है। यहाँ विमर्शसन्धि विघ्नोपनिपात रूप नियताप्ति से परिछिन्न है। यद्यपि सट्टक में प्रकरी का निबन्धन हुआ है, परन्तु विमर्शसन्धि में रखने की सामान्य परम्परा से हटकर, उसका निबन्धन निर्वहणसन्धि में किया गया है। परन्तु इसे दोष नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि एक जगह रहकर भी वस्तुतः यह पुष्पराशि की भाँति पूरी कथा को सुवासित कर रहा है। वास्तविकता तो यह है, कि—अप्रत्यक्ष रूप से प्रकरी की कथा मूलकथा के प्रारम्भ होने से पहले ही प्रारम्भ हो चुकी है।

(य) निर्वहणसन्धि—

चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में, आकाशवाणी द्वारा देवी के प्रति किया गया पतिव्रता धर्म का उपदेश, सट्टक की कथावस्तु को परिणाम की ओर ले जाता है। अब तक बीज से युक्त,

---

१. '.....सा अ जीविदवल्लहा कसरिवहूकरपडिअव्व हरिणकिसोरिआ अत्ताणा अंतेउरस्स अब्भंतरे अण्णदो प्पवेसमग्गरहिदे गाढंधआरगहणे पाआलविवर व्व दुक्किदपुंससारिच्छे जणंतरप्पआरवज्जिदे एअस्सिं अववरएप्पवेसिआ। तदो किं एत्थ करेमि।—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९३

२. अहो देव्वस्स दुव्विलसिदं। (अहो! दैवस्य दुर्विलसितम्)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९३

मुख, प्रतिमुख आदि रूप में इधर-उधर बिखरे हुए कथावस्तु के अंश, प्रयोजन की सिद्धि के लिए एक साथ जुट जाते हैं। स्वप्न दर्शन से लेकर उसके उद्‌घाटन, राजा द्वारा नायिका का चित्रांकन, विदूषक का उपाय चिंतन वाद-विवाद में नायिका की मध्यस्थता; ये सभी जो नायिका प्राप्ति रूप प्रयोजन में मुख्य भूमिका निभाने एवं परिणाम के सम्बन्ध में दर्शकों की उत्सुकता को उत्तरोत्तर बढ़ाने वाले अंश हैं; उनका अंतिम चरण में उत्सुकता को चरमबिन्दु पर लाकर सभी शंकाओं का समाधान हो जाता है। नायक एवं नायिका का विवाह हो जाता है। अमात्य की सूचना से नायिका के सम्बन्ध में सभी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। यहाँ कार्य नामक अर्थप्रकृति एवं फलागम नामक कार्यावस्था का योग है। इस प्रकार यहाँ निर्वहण सन्धि है।

७. सन्ध्यङ्ग

शृङ्गारमञ्जरी में पाँचों सन्धियों के अधिकांश अङ्कों का निबन्धन भी समुचित रीति से किया गया है, जो क्रमशः प्रस्तुत है–

(अ) मुखसन्धि के प्रमुख अङ्ग–

(i) उपक्षेप–बीज का शब्दों में रखना उपक्षेप है।[१] शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम जवनिकान्तर में प्रस्तावना के तुरन्त पश्चात् क्रमशः कहे गये राजा एवं विदूषक के स्वप्न सम्बन्धी कथनों में, नाट्य के बीज को रखा गया है, जहाँ राजा स्वप्न में एक सुन्दरी को देखने की बात कहता है एवं उस पर मोहित होकर उसे प्राप्त करना चाहता है। वहीं विदूषक स्वप्न में राजा को ऐरावत पर बैठा हुआ देखने की बात कहता है।[२] यहाँ उपक्षेप नामक मुखसन्धि का अङ्ग है।

(ii) परिभावना–कौतूहल सहित वचन परिभावना कहलाता है।[३] स्वप्न में देखी गयी सुन्दरी के

---

१. बीजन्यासः उपक्षेपः।–दशरूपक-१/२७
२. शृङ्गारमञ्जरी-१/१५ एवं १/१६
३. कुतूहलोत्तरा वाचः प्रोक्ता तु परिभावना।–साहित्यदर्पण-६/८६

सौन्दर्य से राजा विस्मित है। वह स्वप्न की उस लोकोत्तर सुन्दरी का वर्णन करते हुए विदूषक से कहता है, कि–"मित्र मैं तुम्हे सही बात बतलाता हूँ.....स्वप्न में मैंने उत्तम एवं मनोहर रंग रूप वाली अपूर्व सुन्दरी को देखा, यह अपूर्व एवं विशेष सुन्दरता की खान थी......।" यह सुनकर विदूषक भी विस्मित होकर कहता है–"अरे! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है, उसके बाद क्या हुआ।"[१] इस प्रकार यहाँ राजा एवं विदूषक के अद्भुत रस का आवेग वर्णित है। अतएव यहाँ परिभावना नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) विधान–सुख और दुःख को उत्पन्न करने वाला विधान कहलाता है।[२] राजा स्वप्न की नायिका के विषय में विदूषक से कहता है कि–"उस सुन्दरी ने.....प्रेमसार को सूचित करने वाले अनोखे कटाक्षों को मेरे ऊपर छोड़ दिया।" पुनः विदूषक के कथन के प्रत्युत्तर में कहता है कि–"उस समय वसन्ततिलका के सामने ही होने वाले इस प्रसंग को महारानी की कोई विश्वासपात्र सेविका न जान ले, इसी शङ्का एवं उसके विरह के कारण, मैं जब कष्ट का अनुभव करने लगा, तब सबेरे के मंगल वाद्यों की ध्वनि ने मुझे जगा दिया।"[३] यह बीज के अनुकूल होकर सुख-दुःख को उत्पन्न करने वाला कथन है। अतः यहाँ विधान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) परिन्यास–बीज की निष्पत्ति[४] अथवा विनिश्चय[५] परिन्यास कहलाता है। राजा द्वारा चित्रित नायिका को देखकर वसन्ततिलका का यह कथन कि–"महाराज ही शृङ्गारमञ्जरी के हृदय के प्रेमपात्र हैं। अगर उनके भी हृदय में अनुराग-पात्र के रूप में वही शृङ्गारमञ्जरी है, तो उसी नायिका के गुणों की जीत होगी, अर्थात् उसके गुणों ने राजा को जीता।"[६] यहाँ बीज का विनिश्चय दिखलाया

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृ १३
२. विधानं सुखदुःखकृत्।–दशरूपक–१/२८
३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १७
४. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः।–दशरूपक–१/२७
५. विनिश्चयः परिन्यासः।–नाट्यदर्पण–१/५२
६. शृङ्गारमञ्जरी–१/३३

गया है। अतः यहाँ परिन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) समाधान–बीज का आगमन समाधान है।[१] वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी की कविता को राजा से निवेदन करते हुए कहती है, कि–"विधाता की आज्ञा से उन-उन दिशाओं की ओर दृष्टिपात कर नयनों को इधर-उधर लहराती हुई पिंजरे के अंदर की एक चकोरी आप की दृष्टि में आयी, अब वही आप की चन्द्ररूपी दृष्टि दूसरों को देखने की अभिलाषा वाली, नायिकाओं का विषय न हो सकने के कारण महल के अन्दर रुक कर, अपनी समाप्ति की दशा को प्राप्त हो रही है।"[२] यहाँ समाधान नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) उद्भेद–किसी गूढ़ बात को प्रकट करना उद्भेद कहलाता है।[३] वसन्ततिलका राजा से कहती है, कि–"आप को देखने से सुलगाये हुए मदन-रूपी अनल के ताप से अपने अंगों को जलाती हुई उसी (शृङ्गारमञ्जरी) ने महाराज को लक्ष्य कर (पूर्व पठित गाथा) गाया है, और इसी उद्देश्य से मेरा यहाँ आने का प्रयास भी था।"[४] यहाँ वसन्ततिलका गूढ़ अर्थ का प्रकटन कर रही है; अतः उद्भेद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) प्राप्ति–सुख का प्राप्त होना ही प्राप्ति है।[५] अन्तःपुर में स्थित शृङ्गारमञ्जरी राजा के प्रति अनुरक्त है, यह जानकर राजा कहता है, कि–"इस प्रसंग में धैर्य के साथ आश्वस्त होकर हमारा यहाँ रहना ठीक ही है।"[६] यहाँ बीज के सम्बन्ध में राजा को सुख की प्राप्ति हुई है; अतः प्राप्ति नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) करण–प्रस्तुत कार्य का आरम्भ करना करण कहलाता है।[७] 'राजा भी शृङ्गारमञ्जरी

१. बीजागमः समाधानम्।–दशरूपक–१/२८
२. शृङ्गारमञ्जरी–१/३८
३. प्राप्तिः सुखागमः।–दशरूपक–१/२८
४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ–२९
५. उद्भेदो गूढभेदनम्।–दशरूपक–१/२९
६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ२९
७. करणं प्रकृतारम्भः।–दशरूपक–१/२९

पर अनुरक्त है' इस बात को वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी से कहना चाहती है। इसके लिए वह राजा से कहती है, कि-"महाराज मुझे आज्ञा दें, जिससे मैं यह समाचार अपनी प्रिय सखी से निवेदन कर सकूँ।"[१] यहाँ अगले जवनिकान्तरों में नायक-नायिका के मिलन हेतु, वसन्ततिलका द्वारा महाराज से आज्ञा माँगने के साथ ही, कार्य का आरम्भ हो रहा है; अतः यहाँ करण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) भेद-पात्रों का रङ्गस्थल से बाहर जाना भेद कहा जाता है।[२] प्रथम जवनिकान्तर अंतिम चरण में नायिका से समाचार निवेदित करने के लिए राजा से अनुमति लेकर वसन्ततिलका का जाना ही,[३] भेद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ब) प्रतिमुख सन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) विलास-रति के लिए जो ईहा है, वह विलास कहलाता है।[४] द्वितीय जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा एवं विदूषक के कथनों में रति के प्रति नायिका की ईहा प्रकट हो रही है। आपसी वार्ता के दौरान विदूषक कहता है-"तुम्हारे दर्शन से अचानक भड़क उठने वाले कामानल ने उसकी देहलता को कैसा कर डाला? यह ज्ञात नहीं होता।"[५] यहाँ विलास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ii) परिसर्प-पहले देखे गये और फिर नष्ट हुए बीज का अन्वेषण परिसर्प कहलाता है।[६] राजा के प्रति विदूषक के कथन है, कि-"आश्चर्य है, अन्तःपुर में रहकर भी इसे अभी तक महाराज ने नहीं देखा।"[७] यहाँ नष्ट हुए बीज का अन्वेषण किया जा रहा है। अतः यहाँ परिसर्प नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ २९
२. भेदनं पात्रनिर्गमः।—नाट्यदर्पण-१/४४
३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ २९
४. रत्यर्थेहा विलासः स्याद्।—दशरूपक-१/३२
५. शृङ्गारमञ्जरी-२/४
६. दृष्टनष्टानुसर्पणम्।—दशरूपक-१/३२
७. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ३४

(iii) उपन्यास–उपाय सहित कथन उपन्यास कहलाता है।[१] विदूषक राजा के प्रति कहता है, कि–"आप ने कैसे सोच लिया कि दृष्ट वस्तु का परित्याग हुआ है, क्योंकि मैने तो इस कार्य की सिद्धि के लिए एक उपाय भी सोचा है।" पुनः राजा के आग्रह पर कान में उसे बताता है।[२] यहाँ उपाय का सन्निवेश होने से उपन्यास नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) नर्म–परिहासयुक्त वचन नर्म कहलाता है।[३] विदूषक की बाँयी आँख फड़कने की बात को लेकर वसन्ततिलका परिहास करते हुए कहती है–"यदि कामदेव की पूजा के पवित्र स्वस्तिवाचन के समय भी आप की बाँयी आँख फड़कने लगी, तो लगता है विपरीत व्यक्ति को सभी फल उलटे ही मिला करते हैं।[४]" इसी क्रम में वसन्ततिलका विदूषक को लेकर परिहास वचन कहती है। अतः यहाँ नर्म नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) वर्णसंहार–चारो वर्णों का एकत्रित होना वर्णसंहार कहलाता है।[५] नाट्यदर्पणकार ने चारों वर्णों का तात्पर्य नायक, नायिका, प्रतिनायक आदि नाटकीय पात्रों से माना है।[६] द्वितीय जवनिकान्तर में राजा एवं देवी के समक्ष विदूषक एवं वसन्ततिलका में शास्त्रीय विवाद के निर्णय हेतु माधविका के साथ शृङ्गारमञ्जरी के प्रवेश[७] के साथ ही, नायक, नायिका इत्यादि सभी प्रमुख पात्रों का एकत्रीकरण होता है; अतः यहाँ वर्णसंहार नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) पुष्प–विशेषता युक्त कथन को पुष्प कहा जाता है।[८] शृङ्गारमञ्जरी के सम्बन्ध में राजा

---

१. उपन्यासस्तु सोपायम्।–दशरूपक-१/३५
२. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ३६
३. परिहासवचो नर्मः।–दशरूपक-१/३३
४ शृङ्गारमञ्जरी-२/२२
५. चातुर्वर्ण्योपगमनं वर्णसंहार ईष्यते।–दशरूपक-१/३५
६. नाट्यदर्पण-१/६७
७. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ५२
८. पुष्पं वाक्यं विशेषवत्।–दशरूपक-१/३४

का स्वगत कथन है कि–"ओह! कामदेव ने मुझपर अनुग्रह किया है–अधिक विकसित होने वाले, कुछ–कुछ झब्बे वाली आकृति वाले, मेरी ओर मुड़ जाने पर थोड़ा सिकुड़न के साथ दोनों ओर घुम जाने वाले, एकाएक भय से चञ्चल होने वाले और विलास युक्त गति को दिखलाने वाले इस सुन्दरी ऐसे नेत्रों ने (मेरा) पूर्णतः पान कर लिया है।"[१] इस कथन के द्वारा नायक और नायिका के परस्पर दर्शन आदि के द्वारा विशिष्ट अनुराग प्रकट होता है। अतः यहाँ पुष्प नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) निरोधन–हित का रूक जाना निरोधन कहलाता है।[२] तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक कहता है–"...शृङ्गारमञ्जरी की विशेष रूप से रक्षा कर दी गयी है और वसन्ततिलका का मेरे साथ मिलना-जुलना भी रोक दिया गया है।" राजा–"तुम दोनों के मिलन को रुकवाने का क्या अभिप्राय होगा?" विदूषक–"अभिप्राय यह है कि ये दोनों तुम दोनों को मिलवाने में न लग सकें।"[३] यहाँ नायक-नायिका के मिलन रूपी हित का जाना प्रदर्शित किया गया है। अतः यहाँ निरोधन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) विधूत–सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरुचि विधूत कहलाता है।[४] तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक ने नायिका के सुखप्रद पदार्थों के प्रति अरुचि का सविस्तार वर्णन किया है, यथा–"....चाँदनी को देखकर उसे पहले का सा आनन्द नहीं आता, कमलों की शोभा उसके मन में मर्मान्तक वेदना उत्पन्न करती है...।"[५] इस प्रकार यहाँ विधूत नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) शम–उस अरति की शान्ति शम कहलाती है।[६] अरति की स्थिति में नायिका मरने तक के लिए उद्यत हो जाती है। विदूषक के इस आश्वासन पर कि–"माधवी लताकुञ्ज में महाराज से

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–२/३२
२. हितरोधो निरोधनम्।–दशरूपक–१/३४
३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ॰ जोशी, पृष्ठ ६३
४. विधूतं स्यादरतिः।–दशरूपक–१/३३
५ शृङ्गारमञ्जरी, डॉ॰ जोशी, पृष्ठ ६५–६६
६. तच्छमः शमः।–दशरूपक–१/३३

तुम्हारी भेंट होगी" उसकी अरति शान्त होगी एवं वह कहती है कि—"अच्छा ऐसा ही हो।"[१] यहाँ आरति की शान्ति दिखलाई गयी है; अतः यहाँ शम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(स) गर्भसन्धि के प्रमुख अङ्ग—

(i) अनुमान—किसी चिह्न से किसी बात का निश्चय करना अनुमान कहलाता है।[२] नेपथ्य से आ रही पैरों की ध्वनि सुनकर विदूषक राजा से कहता है कि—"पास में ही पैरों से आहत भूमि शब्द कर रही है। इससे यह अनुमान होता है कि वह तुम्हारे लिए संकेतस्थल की ओर आ रही है"[३] यहाँ पैरों की आहट रूपी चिह्न से नायिका के आने का निश्चय किया गया है। अतएव यहाँ अनुमान नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(ii) अभूताहरण—छलपूर्ण कार्य अभूताहरण कहलाता है।[४] तृतीय जवनिकान्तर के मध्य में शृङ्गारमञ्जरी का कथन है—"एक ओर मेरा भोलापन और मिलने के लिए पहली बार किये गये साहस का कार्य है। इसमें विरहजन्य व्यथा और पराधीनता है। और दूसरी ओर रात का समय.... .... पैर कैसे रखे जायें?"[५] यहाँ शृङ्गारमञ्जरी द्वारा देवी के साथ छल करके राजा के प्रति अभिसरण किया जा रहा है; अतएव अभूताहरण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) क्रम—सोची हुई वस्तु की प्राप्ति क्रम कहलाता है।[६] राजा शृङ्गारमञ्जरी के समीप जाकर उससे कहता है—"सुन्दरी! तुम इस मार्ग से माधवीमण्डप में प्रवेश करो। हे सुन्दरी! मैं पहले ही तुम्हारे गुणों से बंधा था और कुछ रुकावटों के कारण कुछ प्रतिबद्ध सा रहा था। इस समय मदनबाणों

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जोशी, पृष्ठ ६९
२. अध्यूहो लिङ्गतोऽनुमा।—दशरूपक–१/४०
३. शृङ्गारमञ्जरी–३/३४
४. अभूताहरणं छद्म।—दशरूपक–१/३८
५. शृङ्गारमञ्जरी–३/३६
६. क्रमः संचिन्त्यमानाप्तिः।—दशरूपक–१/३९

से प्रेरित होकर यह जन अब तुम्हारे पास आया है।"[१] यहाँ राजा को पहले से सोची हुई शृङ्गारमञ्जरी की प्राप्ति हुई है; अतः यहाँ क्रम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) रूप—वितर्क से युक्त कथन को रूप कहा जाता है।[२] शृङ्गारमञ्जरी राजा से कहती है कि–"जन्मपर्यन्त पराधीनता है। आसानी से प्राप्त न होने वाले व्यक्ति से प्रेम हुआ है। मेरे प्राण पत्थर से भी अधिक कठोर हो गये हैं, इत्यादि।" इसे सुनकर राजा का स्वगत कथन है, कि–"इसने इस श्लोक से यह व्यक्त किया कि महारानी के अधीन होने के कारण उसका और मेरा सम्बन्ध नहीं हो पा रहा है और इस प्रकार परस्पर होने वाले अनुरागानुभूति का प्रतिषेध भी हो रहा है।"[३] यहाँ शृङ्गारमञ्जरी के कथन पर राजा द्वारा फल प्राप्ति की आशा में वितर्क किया गया है। अतः यह वितर्क युक्त कथन होने से रूप नामक सन्यङ्ग है।

(v) उद्वेग—शत्रु से उत्पन्न भय उद्वेग कहलाता है।[४] वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी से कहती है कि–"सखी! माधविका को तुम्हारे स्थान पर रखकर हम यहाँ आये हैं। अतः यह बात जब तक प्रकाश में नहीं आती, उससे पहले हम यहाँ से शीघ्र चल दें।"[५] यहाँ देवी से उत्पन्न शृङ्गारमञ्जरी का भय प्रकट हो रहा है। अतः यहाँ उद्वेग नामक गर्भसन्धि का अङ्ग है।

(vi) सम्भ्रम—शङ्का और त्रास को सम्भ्रम कहा जाता हैं।[६] तृतीय जवनिकान्तर के अन्तिम चरण में वसन्ततिलका शृङ्गारमञ्जरी एवं राजा के प्रेम के सन्दर्भ में राजा से कहती है कि–"अन्य कार्यों में लगे रहने से, स्वामी होने से और अन्य युवतियों के प्रति लगाव रखने की आदत से ऐसे गुण आ जाते हैं; जिनसे प्रेम के तागे के टूटने का सन्देह सदा बना रहता है।"[७] यहाँ प्रेम के टूटने की

१. शृङ्गारमञ्जरी–३/४८
२. रूपं वितर्कवद्वाक्यम्।—दशरूपक–१/३९
३. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ॰ जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ८८
४. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः।—दशरूपक–१/४२
५. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ॰ जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९०
६. शङ्कात्रासौ च संभ्रमः।—दशरूपक–१/४२
७. शृङ्गारमञ्जरी–३/६२

आशङ्का वर्णित होने से सम्भ्रम नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) आक्षेप–रहस्यपूर्ण अर्थ को प्रकट करना ही, क्षिप्ति या आक्षेप कहलाता है।[१] तृतीय जवनिकान्तर के अन्त में, राजा वसन्ततिलका के प्रति कहता है कि–"भौंरा चाहे केतकी, मालती या लताओं पर घुमा करे, किन्तु कमलिनी के प्रति जो उसका अनुराग है, वह असाधारण होता है, अर्थात् अन्यत्र सम्भव नहीं होता।"[२] यहाँ राजा के कथन से यह रहस्यपूर्ण अर्थ प्रकट हो रहा है, कि–शृङ्गारमञ्जरी के प्रति उसका प्रेम अन्य सभी से बढ़कर एवं असाधारण है। इस प्रकार यहाँ आक्षेप नामक सन्ध्यङ्ग है।

(द) अवमर्शसन्धि के प्रमुख अङ्ग

(i) अपवाद–किसी पात्र के दोषों का कथन अपवाद है।[३] अथवा अपने या दूसरों के दोषों को प्रकट करना ही अपवाद है।[४] चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ में राजा कहता है कि–"ओह! महारानी को द्वेष के कारण पक्षपात बड़ा गहरा है।"[५] यहाँ रानी के दोषों 'द्वेष' एवं 'पक्षपात करने' का कथन किया गया है। इसी सन्दर्भ में राजा पुनः कहता है कि–"अन्यत्र न होने वाले और किसी भी दशा में झूठे सिद्ध न हो सकने वाले हमारे ऐसे कपटपूर्ण कार्यों को देवी ने जान लिया था। इसी कारण देवी के मन में क्रोध-भाव आ गया है।"[६] यहाँ राजा द्वारा अपना दोष 'कपट करने' एवं रानी के दोष 'क्रोध करने' का कथन किया गया है; अतः यहाँ अपवाद नामक अवमर्शसन्धि का अङ्ग है।

(ii) विद्रव–वध, बन्धन आदि का वर्णन विद्रव कहलाता है।[७] चतुर्थ जवनिकान्तर के प्रारम्भ

१. रहस्यार्थस्य तद्भेदः क्षिप्तिः स्यात्।–साहित्यदर्पण–६/९९
२. शृङ्गारमञ्जरी–३/६३
३. दोषप्रख्यापवादः स्यात्।–दशरूपक–१/४५
४. नाट्यदर्पण–१/९४
५. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ९३
६. शृङ्गारमञ्जरी–४/४
७. विद्रवो वधबन्धादिः।–दशरूपक–१/४५

में राजा कहता है, कि–"......मित्र गौतम और वसन्ततिलका को अलग-अलग कारागारों में बन्द करवा दिया और वह प्राण प्यारी तो शेरनी की पकड़ में आयी हरिणी की भाँति असहाय सी महल के किसी ऐसे अन्दरूनी कमरे में रखवा दी गयी है, जहाँ किसी रास्ते से प्रवेश सम्भव नहीं है...।"[१] यहाँ गौतम, वसन्ततिलका एवं शृङ्गारमञ्जरी के बन्धन का वर्णन किया गया है; अतः यहाँ विद्रव नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) द्रव–गुरुजनों का तिरस्कार द्रव कहलाता है।[२] महारानी की सम्मति से दासियों द्वारा अपना तिरस्कार करने का वर्णन करते हुए विदूषक कहता है, कि–"प्रतिदिन अन्तःपुर की दासियाँ मेरा विरोध करने लगी और महारानी से मुझे परेशान करने की अनुमति लेकर, मेरे खिलाफ न जाने क्या–क्या नहीं कर डाला।"[३] यहाँ श्रेष्ठ, पूज्य ब्राह्मण के तिरस्कार का वर्णन है; अतः यहाँ द्रव नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) आदान–कार्यसंग्रह आदान कहलाता है।[४] अर्थात् फल का समीप होना, या फल का दर्शन आदान है, जैसा कि नाट्यशास्त्र में भी कहा गया है–"बीजकार्योपगमनम् आदानम्।"[५] चतुर्थ जवनिकान्तर के मध्य में विदूषक देवी द्वारा मन्दिर में सुनी गयी गाथा के सम्बन्ध में कहता है कि–"महारानी गाथा का अभिप्राय यह समझी कि–महाराज से होने वाले शृङ्गारमञ्जरी के मिलने में विघ्न डालना ठीक नहीं है।"[६] इत्यादि कथनों द्वारा कार्य का संग्रह किया गया है। यहाँ नायक एवं नायिका के मिलन रूपी फल का दर्शन हो रहा है, अतः यहाँ आदान नामक सन्ध्यङ्ग है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ–९३
२. द्रवो गुरुतिरस्कृतिः।–दशरूपक–१/४५
३. शृङ्गारमञ्जरी–४/८
४. आदानं कार्यसंग्रहः।–दशरूपक–१/४८
५. नाट्यशास्त्र–१९/९३
६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०१

(य) निर्वहणसन्धि के प्रमुख अङ्ग

(i) सन्धि—बीज का सन्धान ही सन्धि कहलाता है।[१] चतुर्थ जवनिकान्तर के लगभग मध्य में राजा के कथन में फलागम से अन्वित करके बीज का सन्धान किया गया है, जैसा कि राजा कहता है–"मन्मथ द्वारा प्रियतमा के लाभ की संभावना मेरे लिए वैसे ही दूसरे जीवन की तरह है, जैसे महासागर में डूबते हुए व्यक्ति को सहसा किसी जल पोत की प्राप्ति हो जाती है, इत्यादि।"[२] यहाँ बीज का संधान होने से सन्धि नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

(ii) ग्रथन—फल के उपक्षेप को ग्रथन कहा जाता है।[३] राजा के प्रति देवी का कथन है, कि–"आर्यपुत्र! इस शुभ अवसर पर आज मैं शृङ्गारमञ्जरी को उपहार के रूप में आप को दे रही हूँ।"[४] यहाँ फल का उपक्षेप (सूचना) किया गया है; अतएव यहाँ ग्रथन नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iii) आनन्द—अभीष्ट की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है।[५] देवी द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को महाराज के लिए अर्पित किया जाता है। महाराज शृङ्गारमञ्जरी का हाथ ग्रहण कर अपने मन में कहता है कि–"देवी की ईर्ष्या और प्रिया का मुझसे अलग होना, ये दोनों बातें केवल हँसी और दिल्लगी में हुई तथा महारानी ने स्वयं इसे प्रदान कर दोनों ही बातों को अब एक साथ मिला दिया।"[६] यहाँ राजा को अभीष्ट की प्राप्ति हो रही है; अतः यहाँ आनन्द नामक सन्ध्यङ्ग है।

(iv) निर्णय—अनुभूत अर्थ का कथन निर्णय कहलाता है।[७] अमात्य शृङ्गारमञ्जरी के विषय में

---

१. सन्धिर्बीजोपगमनम्।—दशरूपक-१/५१
२. शृङ्गारमञ्जरी-४/१५
३. ग्रथनं तदुपक्षेपो।—दशरूपक-१/५१
४. शृङ्गारमञ्जरी-४/२२
५. आनन्दो वाञ्छितात्तिः।—दशरूपक-१/५२
६. शृङ्गारमञ्जरी-४/२२
७. अनुभूताख्या तु निर्णयः।—दशरूपक-१/५१

बताते हुए कहता है, कि-"मैंने अपने महाराज के लिए ऋषि से इस मँगनी की। उन्होंने अपनी स्वीकृति भी दे दी।.......फलतः मैं इस कन्या को अपने साथ ले आया और महारानी को सौंप दिया। इस कन्या की प्राप्ति की यही कथा है।"[१] यहाँ अनुभूत अर्थ का कथन होने से निर्णय नामक सन्ध्यङ्ग है।

(v) परिभाषा–यद्यपि दशरूपक में आपसी बातचीत को परिभाषा कहा गया है[२] किन्तु नाट्यदर्पण में अपने अपराध को प्रकट करना परिभाषा बताया गया है।[३] चतुर्थ जवनिकान्तर में देवी का कथन है, कि-"मन्त्री महोदय इस समय तक (शृङ्गारमञ्जरी का आप ने राजा के लिए मँगनी किया है) इसका ज्ञान न होने से मैं इस (शृङ्गारमञ्जरी) के कष्ट का कारण बनी"[४] यहाँ रानी द्वारा स्वनिन्दा की गयी है; अतः परिभाषा नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vi) प्रसाद–आराधना ही प्रसाद कहलाता है।[५] देवी कहती है कि-"वत्से शृङ्गारमञ्जरी! तुम्हें तो यद्यपि मैंने अपना ही माना था, किन्तु परिचय न होने से मैंने तुमसे अपने सेवक के समान व्यवहार किया। अतः इस अतिक्रमण को अब तुम क्षमा करना"[६] यहाँ देवी द्वारा शृङ्गारमञ्जरी का पर्युपासन किया जा रहा है; अतः यहाँ प्रसाद नामक सन्ध्यङ्ग है।

(vii) काव्यसंहार–वरदान की प्राप्ति काव्यसंहार कहलाता है।[७] अमात्य राजा से कहता है कि-"मैं अब आप का और दूसरा कौन सा प्रिय कार्य करूँ।"[८] अभीष्ट वर को प्रदान करने की अभिलाषा

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
२. परिभाषा मिथो जल्पः।—दशरूपक-१/५२
३. परिभाषा स्वनिन्दनम्।—नाट्यदर्पण-१/१०८
४. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
५. प्रसादः पर्युपासनम्।—दशरूपक-१/५२
६. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०८
७. वराप्तिः काव्यसंहारः।—दशरूपक-१/५४
८. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ १०९

यहाँ होने से काव्यसंहार नामक सन्ध्यङ्ग है।

(viii) आभाषण–प्राप्त हुए फल का अनुमोदन करना ही आभाषण कहलाता है।[१] अथवा मान आदि की प्राप्ति भाषण या आभाषण कहलाता है।[२] राजा कहता है–"मेरी आज्ञा राजाओं के मुकुटमणियों की प्रभामञ्जरी के अंतिम किनारे तक पहुँची है। भृकुटी के केवल भङ्गिमा से समुद्र तक पृथ्वी सीमा बन चुकी है। इस मृगाक्षी ने अभी तक अज्ञात, तनुता के साथ स्थिरता वाली योग्य कन्या को वर रूप में दिया। अतः इससे ज्यादे अधिक और क्या अभीष्ट हो सकता है, जिसे आप ने सफल नहीं किया है।"[३] यहाँ राजा द्वारा प्राप्त फल का अनुमोदन किया गया है, इसलिए आवा राजा द्वारा कार्यसिद्ध करने हेतु अमात्य को मान दिया गया है, इसलिए यहाँ आभाषण नामक सन्ध्यङ्ग है।

(ix) प्रशस्ति–शुभ अर्थ का कथन ही प्रशस्ति है।[४] चतुर्थ जवनिकान्तर के अन्त में राजा कहता है कि–"अधिक तेज अग्नि के यज्ञीय धुएँ से दिशाओं के विस्तार व्याप्त रहें। सभी वर्ण एवं आश्रम अपने-अपने कर्तव्य में लगे रहें, प्रजा का आनन्द प्रतिक्षण उत्तरोत्तर बढ़ता रहे तथा दूसरों के गुणों में अनुराग रखने वाले सहृदय चिरकाल तक जीवित रहें।"[५] यहाँ शुभाशंसा कथित होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणसन्धि का अङ्ग है।

---

१. प्राप्तकार्यानुमोदनमाभाषणम्।–प्रतापरुद्रीप–३/२१

२. मानाद्याप्तिश्च भाषणम्।–दशरूपक १/५३

३. भृङ्गारमञ्जरी–४/२४

४. प्रशस्तिः शुभशंसनम्।–दशरूपक–१/५४

५. आहोआ हरिआण होंतु बहलत्ते अग्गिधूमाउला
धम्मे संतु णिए णिए अविरअं सव्वे वि वण्णस्समा।
आणंदो परिवड्ढउ प्पडिलवं लोआण सव्वुत्तरो
अण्णाणं गुणराइणो सहिअआ ज़ीअंतु लोए चिरं।।–भृङ्गारमञ्जरी–४/२५

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की कथावस्तु का तुलनात्मक विवेचन

सामाजिक को नाट्य के चरमफल रसानुभूति तक पहुँचाने में, कथावस्तु का प्रमुख स्थान रहता है। नाट्य की कथावस्तु ही दर्शकों की मानसिक स्थिति को बाह्य जगत के विभिन्न चिन्तनों से मोड़कर, उसे रसबोध की चरमानन्द की अवस्था की ओर उन्मुख करने का कार्य करती है; और यह तभी संभव है जब कथानक मनोहारी सुसंगठित एवं प्रवाहपूर्ण हो। कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण के समय सामाजिक के मन में, 'अब क्या घटने वाला है?' इसके प्रति उत्सुकता का होना ही कथानक की मनोहरता है। कथानक की प्रत्येक घटना एक-दूसरे से जुड़ी रहकर प्रयोजन से सम्बन्धित होनी चाहिए। अर्थात् ऐसी घटनाओं का समावेश किया जाना चाहिए, जिनके कथानक से अलग हो जाने पर कथा की कड़ी टूट रही हो। कथावस्तु स्वाभाविक सा लगने पर ही आनन्द प्रदान कराने में समर्थ होती है। अतः कथानक की स्वाभाविकता के लिए दृश्य-विधान एवं परिवेश का समुचितरूप से समायोजन होना चाहिए।

उपर्युक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कर्पूरमञ्जरी सट्टक का विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि–कर्पूरमञ्जरीकार का ध्यान सुगठित वस्तु-योजना पर कम एवं लम्बे वर्णनों पर अधिक है। प्रथम जवनिकान्तर में प्रस्तावना के तुरन्त बाद लम्बा वसन्त वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ वसन्त का वर्णन मात्र इसीलिए आवश्यक था, कि–दर्शकों के हृदय में इस तथ्य को स्थापित किया जा सके, कि–आगे घटित होने वाली समस्त घटनायें रति को अधिकाधिक उद्दीप्त करने वाले मौसम वसन्त ऋतु में घटित हुई हैं। यह एक-दो छन्दों में भी वर्णित किया जा सकता था। इस प्रकार लम्बा वसन्त वर्णन अनावश्यक प्रतीत होता है; जो कथा के प्रवाह में बाधक की भाँति है। यही कारण है कि मूल कथा प्रथम जवनिकान्तर के आधे के बाद ही प्रारम्भ हो पाती है। इसी प्रकार, यद्यपि विदूषक का स्वप्न वर्णन अत्यन्त रोचक एवं कौतूहल वर्धक है। किन्तु मूल कथा के विकास

में इसका किसी प्रकार का कोई सहयोग नहीं दिखाई पड़ता। यह किसी भी प्रकार से मूल कथा से जुड़ा हुआ या इसका अविभाज्य अङ्ग नहीं प्रतीत होता। इसे यदि कथानक से अलग भी कर दिया जाय तो मूल कथा के सेहत पर कोई कुप्रभाव पड़ेगा, ऐसा नहीं लगता। वस्तुतः इसे मूल कथा के साथ इस प्रकार जुड़ा हुआ होना चाहिए था, कि इसके अलग होने से मूल कथा अधूरी या विकलाङ्ग सी लगे। द्वितीय जवनिकान्तर में विदूषक एवं राजा के वार्ता के माध्यम से देवी द्वारा नायिका कर्पूरमञ्जरी का शृङ्गार करने का लम्बा वर्णन प्राप्त होता है, जो नाट्य की कथा के स्वाभाविक प्रवाह को अवरुद्ध कर रहा है। तृतीय जवनिकान्तर में नायक, नायिका के मुलाकात के प्रसङ्ग में सात पद्यों में चन्द्रवर्णन का किया जाना, अनावश्यक एवं अस्वाभाविक सा लगता है। चतुर्थ जवनिकान्तर में राजा एवं विदूषक द्वारा मिलकर नौ पद्यों में ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया जाना अनावश्यक एवं उबाने वाला है। इस प्रकार कहा जा सकता है, कि–कथावस्तु का ताना-बाना ढीला-ढाला है, परिणामतः कथावस्तु में अरोचकता, गत्याभाव, शैथिल्य एवं प्रभावहीनता है।

कर्पूरमञ्जरी में कथा के माध्यम से पात्रों में चरित्रांकन की भी उपेक्षा हुई है। नायक चन्द्रपाल से सम्बन्धित ऐसी विशेष प्रस्तुतियों का अभाव है, जिससे उसका धीरललित नायक का एक सशक्त व्यक्तित्व उभर कर सामने आये। यद्यपि नायिका के प्रति नायक के प्रेम को प्रदर्शित करने वाले अनेक प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं, जिसमें कहीं वह नायिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके गुणगान में सन्नद्ध है, तो कहीं उसके विरह में व्यथित हो उन्मत्तता को प्राप्त हो गया है। किन्तु वहीं तृतीय जवनिकान्तर में नायक, नायिका के अन्तरङ्ग क्षणों के दरम्यान, प्रेमालाप के प्रसङ्ग में, नायिका की संवादहीनता सी स्थिति; नायक द्वारा नायिका के सौन्दर्य मात्र का वर्णन करने वाले बहुशः अगंभीर कथनों में सन्नद्ध रहना; ऐसे प्रसङ्ग में नायिका द्वारा पूर्व रचित चन्द्रवर्णन सम्बन्धी पद्य को कुरंगिका द्वारा पढ़ना एवं उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप राजा का, नायिका के सौन्दर्यपान को छोड़कर कविता के शाब्दिक सौन्दर्य, उक्ति वैचित्र्य एवं रसपान में निमग्न होना इत्यादि; पात्र के चरित्रांकन

की कमी एवं प्रेम विषयक प्रयोग की शिथिलता को द्योतित करते हैं।

कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु का अन्त उलझा हुआ सा है। ज्येष्ठा नयिका रूपलेखा ने कर्पूरमञ्जरी को बन्दी गृह में बंद किया है, जिससे वह नायक से मिल न सके। दूसरी तरफ वह भैरवानन्द के कहने पर स्वयं घनसारमञ्जरी से नायक का विवाह करवाने का प्रबन्ध करती है। इससे ऐसा लगता है कि–भैरवानन्द यदि कहता तो वह कर्पूरमञ्जरी से भी राजा की शादी के लिए तैयार हो जाती, फिर ज्येष्ठा नायिका से छल करके कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के रूप में प्रस्तुत कर, उससे राजा का विवाह कराने का औचित्य समझ में नहीं आता। साथ ही यह अन्त तक स्पष्ट नहीं हो पाता कि–ज्येष्ठा नायिका इस तथ्य को जान पायी है अथवा नहीं, कि—कर्पूरमञ्जरी ही घनसारमञ्जरी है। इस प्रकार कथानक का अंत उलझावपूर्ण होने के साथ-साथ अपूर्ण सा लगता है।

कर्पूरमञ्जरी की कथावस्तु के सम्बन्ध में इतना अवश्य है, कि वह नियमानुसार चार जवनिकान्तरों में विभाजित है; जो कि व्यस्ततापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले जन-सामान्य एवं राजाओं के अन्तःपुर के प्रेक्षकों के सर्वथा अनुकूल है; जिससे वे कम समय में धैर्यपूर्वक पूर्ण नाट्य देखकर रसानन्द में सराबोर हो सकें। इसका इतिवृत्त शृङ्गारप्रधान है। इसमें शृङ्गाररस के अनुकूल अनेक प्रसङ्गों को विधिवत उपस्थापित करने का प्रयास सराहनीय है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की कथावस्तु का जहाँ तक प्रश्न है, उसकी मूलकथा प्रस्तावना के तुरन्त बाद ही प्रारम्भ हो जाती है, जहाँ राजा एवं विदूषक क्रमशः मञ्च पर आकर अपने-अपने स्वप्न वर्णन द्वारा कथा का बीजोत्क्षेप करते हैं। राजा अपने स्वप्न-दृष्टा नायिका का वर्णन करता है। विदूषक राजा के चक्रवर्तित्व को सूचित करने वाले अपने स्वप्न का 'जिसमें राजा ऐरावत पर आरूढ़ है' उल्लेख करता है। यहीं से कथा की धारा बह चलती है। यहाँ मूलकथा के आरम्भ होने में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति वसन्त-वर्णन जैसी लम्बी-चौड़ी भूमिका नहीं बाँधी गयी है, परिणामतः सामाजिक की उत्सुकता प्रारम्भ में ही चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में भी, प्रथम जवनिकान्तर में राजा के सन्मुख, बसन्ततिलका के माध्यम से, नायिका द्वारा रचित पद्य को प्रस्तुत करने का प्रसङ्ग आता है; किन्तु यहाँ कर्पूरमञ्जरी की कथा की भाँति नायक कविता के सौन्दर्य में नहीं उलझता। अपितु उसमें अभिव्यक्त तथ्य को समझते हुए यह जानने की इच्छा करता है, कि-क्या यह नायिका की अपनी स्थिति का वर्णन है, या इसके द्वारा किसी अन्य की दशा का वर्णन किया गया है। कथा की ऐसी प्रस्तुति स्वाभाविक सी लगती है। उसमें प्रकृति-वर्णन के भी कई स्थल प्राप्त होते हैं, किन्तु वे बहुत लम्बे न होकर संक्षिप्त एवं प्रसङ्ग के अनुकूल हैं। जैसा कि द्वितीय जवनिकान्तर में, कामदेव की पूजा के लिए जाते समय, विरह व्यथित राजा एवं विदूषक द्वारा बसन्त का उद्दीपन रूप में वर्णन प्रसङ्गोपात्त है। वसन्त के सम्बन्ध में विरही नायक कहता है—"ये पवन चन्दनवृक्षों पर लिपटे हुए बड़े-बड़े नागराजों के मुख से निकलने वाले मानो हलाहल है; जो केवल छूने से (विष की तरह) बेचैनी उत्पन्न करने वाले हो रहे हैं। ये पवन अधिक शक्ति के साथ अपनी सुन्दर चाल को लताओं पर रखते हैं। लगता है, ये निश्चय ही सभी विरही जनों के वध हेतु कामदेव के बाणों को क्या बना दे रहे हैं? अर्थात् बाणों को किस प्रकार घातक बना रहे हैं?"[१]

द्वितीय जवनिकान्तर में रस विषय पर विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य शास्त्रार्थ एवं उसके निर्णय के लिए शृङ्गारमञ्जरी को बुलाने तथा ऐसे समय में नायक और नायिका का एक-दूसरे को देखने की घटना उत्कृष्ट कोटि की है। तृतीय जवनिकान्तर में नायिका के अभिसरण के प्रसङ्ग में रात्रि का वर्णन, नायक-नायिका की उक्तियों द्वारा उनके मनोवृत्ति का चित्रण आदि; एक विलक्षण वातावरण के सृजन हेतु सर्वथा आवश्यक से प्रतीत होते हैं। इससे कथा की मनोहरता द्विगुणित हो रही है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति, नायक-नायिका के मिलन के प्रसङ्ग में, नायक का मित्र विदूषक एवं नायिका की सखी वसन्ततिलका साथ में नहीं रहते। अपितु खूबसूरत

---

१. शृङ्गारमञ्जरी-२/१७

बहाना बनाकर उनसे दूर हो जाते हैं। कथा की यह व्यवस्था प्रसङ्ग के अनुकूल है। इस मिलन की वेला को, उत्कृष्ट प्रेम से संवलित शिष्ट-वार्ता के माध्यम से अत्यन्त आकर्षक बनाने का जो प्रयास किया गया है, उसमें पूर्ण सफलता मिली है। निश्चय ही यह घटना कथा की प्राणस्वरूप है।

चतुर्थ जवनिकान्तर में तेजी से घटनाक्रम परिवर्तित होता हुआ दिखाया गया है। इसमें विदूषक, वसन्ततिलका एवं नायिका के कारागार में बन्द होने, ज्येष्ठा-नायिका का भविष्यवाणी द्वारा हृदय परिवर्तित होने, उसके द्वारा स्वयं शृङ्गारमञ्जरी से नायक का विवाह करवाने जैसी घटनायें वर्णित हैं। यहाँ कथा का अंत एक उदात्त वातावरण में हुआ है। इसमें कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति अस्पष्टता की स्थिति नहीं है। शृङ्गारमञ्जरी के प्रति ज्येष्ठा-नायिका के हृदय का कालुष्य धुल चुका है। ज्येष्ठा-नायिका स्वयं शृङ्गारमञ्जरी का राजा से विवाह करवाती है; इस प्रकार सुखद वातावरण में कथा का अन्त होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि-कर्पूरमञ्जरी की कथा की अपेक्षा शृङ्गारमञ्जरी की कथा अधिक मनोरंजक एवं सुसंगठित है। कथानक में प्रारम्भ से लेकर अंत तक स्वाभाविकता बरकरार है। प्रायः मुख्य प्रयोजन से सम्बद्ध घटनायें ही मञ्चित या सूचित की गयी हैं, जिससे कथा में कसाव है। चरित्र चित्रण से संवलित एवं रस परिपाक से संयुक्त कथावस्तु सुरुचिपूर्ण है। इसकी कथा भी कर्पूरमञ्जरी की कथा की भाँति चार जवनिकान्तरों में विभाजित है, जो कालावधि की दृष्टि से, अन्तःपुर के दर्शकों एवं ग्राम्य दर्शकों के सर्वथा योग्य है।

●●●

चतुर्थ-अध्याय

पात्र-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजा चन्द्रपाल

कर्पूरमञ्जरी

विभ्रमलेखा

विदूषक कपिञ्जल

विचक्षणा

भैरवानन्द

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजा राजशेखर

शृङ्गारमञ्जरी

रूपलेखा

विदूषक गौतम

वसन्ततिलका

चारुभूति

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी की पात्र-व्यवस्था का तुलनात्मक परिशीलन

नायक

नायिका

ज्येष्ठा नायिका

विदूषक

प्रमुख सहायक पात्र

चतुर्थ-अध्याय

पात्र-विवेचन

दृश्य-काव्य में पात्रों का विशेष महत्त्व होता है। अभिनेय होने के कारण दृश्य-काव्य का अभिनय पात्रों के अभाव में किसी भी प्रकार संभव नहीं है। जिस प्रकार कोई वस्तु पात्र में रखकर किसी को दी जाती है; उसी तरह अभिनेय कथावस्तु पात्र के माध्यम से दर्शकों तक पहुँचती है। रूपककार पात्रों के माध्यम से ही, तात्कालिक जीवन का जीवन्त चित्र चित्रित करने में सफल हो पाता है। वह उसके माध्यम से ही कालविशेष का परिवेश, वातावरण, सभ्यता, संस्कृति आदि को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। पात्रों की जीवन्तता एवं प्रभावोत्पादकता, नाट्यकृतियों को सफल एवं सुन्दर बनाने में समर्थ होती है। वस्तु के बाद पात्र को दूसरा भेदक तत्त्व माना गया है।

पात्र योग्य व्यक्ति को कहते हैं। काव्य भाषा में पात्र उसे कहा जाता है, जो रूपक को रोचक बनाता है।[१] इस प्रकार पात्र से तात्पर्य दृश्य-काव्य में अभिनय करने वाले उन सभी स्वरूपों से है; जो अभिनय में प्रवृत्त होकर अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं। अभिनय करने वाले पात्रों के अर्थ में सामान्यतः नेता या नायक शब्द का प्रयोग किया जाता है; अर्थात् नेता या नायक से तात्पर्य सभी प्रकार के पात्रों से है। किन्तु दूसरी ओर नेता या नायक शब्द से, केवल मुख्य पुरुष पात्र का अर्थ भी लिया जाता है। बहुत पहले से नेता या नायक शब्द का, यही अर्थ अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित रहा है। अतएव व्यवहारिक रूप से यही कहना उचित है, कि–पात्र के अन्तर्गत सभी प्रकार के अभिनय करने वाले स्वरूप आ जाते हैं तथा नायक या नेता प्रमुख पुरुष को कहते हैं।

सट्टक की पात्र-व्यवस्था पूरी तरह नाटिका की पात्र-व्यवस्था के समान होती है। अर्थात् सट्टक

१. शृङ्गारमञ्जरी–भूमिका, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ३८

का नायक राजा होता है; जो धीरललित कोटि का होता है। नायिका के रूप में अन्तःपुरस्था, संगीतप्रिया कन्या का वर्णन उचित माना गया है। विदूषक, देवी (ज्येष्ठा नायिका), दूती तथा परिजन सट्टक के सहायक पात्र के रूप में नियोजित होते हैं। इनमें स्त्री पात्रों का बाहुल्य होता है। यद्यपि राज्य संचालन तथा अन्य कार्य सम्पादन हेतु, पुरुष पात्रों की आवश्यकता होती है; अतः गणना के आधार पर पुरुष पात्रों की संख्या अधिक हो सकती है; परन्तु मुख्य कार्य सम्पादन में पुरुष पात्र विशेष सहायक नहीं होते। इसके विपरीत दूती, चेटी आदि, वृत्त की महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वाह करती हैं। अतएव गणना के आधार पर पुरुष पात्रों के बाहुल्य की शंका निरर्थक है। वस्तुतः सट्टक में स्त्री पात्रों की ही बहुलता एवं प्रधानता होती है। सम्प्रति क्रमशः कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का पात्र विवेचन प्रस्तुत है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

राजशेखर-रचित कर्पूरमञ्जरी में कथावस्तु का महत्त्व, अच्छे पात्रों के माध्यम से दर्शकों के सामने आया है। इसमें पात्रों का आधार लेकर ही, अभिनय को सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का गुम्फन है। उसके प्रमुख पात्रों में राजा चन्द्रपाल, रानी विभ्रमलेखा, कर्पूरमञ्जरी, विदूषक कपिञ्जल, भैरवानन्द, दासी सुलक्षणा, कुरंगिका एवं सारंगिका हैं। गौण पात्रों में दो वैतालिक-रत्नचण्ड एवं काञ्चनचण्ड प्रतिहारी, सूत्रधार, पारिपार्श्विक, चर्चरियाँ आदि हैं। कथावस्तु को फलागम तक पहुँचाने में इन सभी का योगदान है। यद्यपि संख्या की दृष्टि से पुरुष एवं स्त्री पात्रों की संख्या लगभग बराबर है; किन्तु प्रमुख भूमिकायें करने वाले पात्रों में, पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक है। इस आधार पर इस सट्टक को स्त्रीबाहुल एवं स्त्रीप्रधान कहना सर्वथा उचित है। प्रस्तुत सट्टक में राजा चन्द्रपाल नायक, कर्पूरमञ्जरी नायिका, विभ्रमलेखा ज्येष्ठा नायिका, विदूषक कपिञ्जल राजा का वयस्य, सुलक्षणा देवी की परिचारिका एवं कर्पूरमञ्जरी की सखी तथा कुरंगिका एवं सारंगिका रानी की अन्य दासियाँ हैं। कर्पूरमञ्जरी सट्टक

में, इनके अभिनय के आधार पर क्रमशः उनके चरित्र का चित्रण, प्रस्तुत किया जा रहा है।

राजा चन्द्रपाल–

राजा चन्द्रपाल का चरित्र सट्टक के नायक के अनुरूप चित्रित हुआ है। सट्टक की सम्पूर्ण कथा इसी के आस-पास घूमती है। यही समस्त क्रियाओं का केन्द्र एवं अङ्गीरस का आलम्बन है। यही नाट्य के फल का अधिकारी अथवा भोक्ता है। राजा चन्द्रपाल ही बीज, बिन्दु आदि से संवलित रूपक को अंतिम लक्ष्य तक ले जाता है।

राजा चन्द्रपाल निश्चिंत, कलासक्त, सुखी और कोमल स्वभाव का होने के कारण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरललित नायक है। ये समस्त लक्षण उसमें क्रमशः देखे जा सकते हैं। वह राजा है, अनेक देशों पर विजय प्राप्त कर चुका है, फिर भी इस पूरे कथानक में उसे राज्य प्रशासन हेतु चिन्तित होते नहीं दिखाया गया है। निश्चय ही प्रशासन की समुचित व्यवस्था करके वह निश्चिन्त हो चुका है। चिन्तामुक्त होने के कारण ही प्रेम प्रसंग हेतु उसके पास पर्याप्त अवसर विद्यमान हैं। कला के प्रति उसका प्रेम अनेक प्रसंगों में स्पष्ट होता है। नायिका का चित्र बनाना, चित्रकला में उसकी निपुणता का परिचायक है। नायिक के प्रत्येक अंग प्रत्यंग के वर्णन के प्रसंग में, राजा के मन में नायिका का एक अलग ही तरह का चित्र उभरता है, जिससे वह नायिका के अंगों में प्राकृतिक सौन्दर्य की आनन्दानुभूति करता है, जो उसकी कलाप्रियता का द्योतक है। नृत्यकला के प्रति उसकी आशक्ति ही चर्चरियों के नृत्य में उसे आह्लादित करती है।

राजा चन्द्रपाल स्वभाव से विनम्र है। यद्यपि वह चम्पा का राजा है, अनेक देशों का विजेता है, फिर भी वह देवी, नायिका, सेविकाओं आदि किसी के भी प्रति, कभी भी गर्वोक्तियाँ नहीं करता। सदैव विनम्रता पूर्वक अपनी बात कहता है। सेविकाओं के गुणों को भी हृदय से स्वीकार कर उनके

प्रति प्रशंशापूर्ण वचन बोलता है।[१] वह गंभीर एवं मधुर शोभा समुदाय वाला है, जिन्हें देखते ही नायिका उन्हे महाराज के रूप में पहचान लेती है।[२] वह राजा को, हृदय को चुराने वाला और आखों को तृप्त करने वाला बताती है।[३] वह सौन्दर्य में चन्द्रमा तथा कामदेव की तरह है। तृतीय जवनिकान्तर में नायिका उसे एकाएक आस-पास आया देखकर कह उठती है–"यह एकाएक आसमान से पूर्णिमा का चन्दमा कैसे उतर आया। क्या शिव जी ने प्रसन्न होकर कामदेव को उसका शरीर दे दिया।"[४]

राजा प्रियंवद है। विचक्षणा की प्रशंसा में वह प्रियवचन बोलता है। राजा द्वारा अन्य पात्रों को किये गये सम्मान पूर्वक संबोधन उसकी प्रियंवदता के परिचायक हैं। देवी के लिए वह– "दक्खिणाबहणारिदणदिणि!" (दक्षिणापथनरेन्द्रनन्दिनन्दिनि) एवं विदूषक के लिए "पिअवअस्स!" (प्रियवयस्य) सम्बोधन का प्रयोग करता है। नायिका की प्रशंसा में की गयी उसकी प्रिय बातें द्रष्टव्य हैं–

"उद्ठिऊण थणभारभंगुरं मा मिअंकमुहि! भञ्ज मञ्झअं।
तुज्झ ईरिसणिवेदंसणे लोअणाणं मअणो पसीअउ।।"[५]

अर्थात्–अयि चन्द्रमुखी मेरे स्वागत के लिए उठकर, स्तनों के भार से झूकी हुई अपनी कमर को मत तोड़ो। तुमको इस अवस्था में देखकर ही मेरे नेत्र प्रसन्न हो रहे हैं।

राजा प्रियंवद के साथ-साथ वाक्पटु भी है। विचक्षणा की कविता सुनकर पटुता पूर्वक कहता है, "सच्चं

---

१. राजा–किं भणिअदि, सुकइत्तणे तुह जेट्ठबहिणिआ खु एसा।
(किं भण्यते, सुकवित्वे तव ज्येष्ठभगिनिका खलु एषा।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५७

२. नायिका–एसो महाराओ को बि इमिणा गंभीरमहुरेण सोहासमुदाएण जाणिज्जदि।
(एष महाराजः कोऽप्यनेन गंभीरमधुरेण शोभासमुदायेन ज्ञायते।)–कर्पूरमञ्जरी–पृष्ठ ३४

३. नायिका–"...किं वा हिअअस्स दुज्जणो णअणाणं सज्जणो जणो मं संभावेदि?..."
(किं वा हृदयस्य दुर्जनो नयनानां सज्जनो जनो मां सम्भावयति?)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३

४. नायिका–(साध्वसं स्वगतम्) अम्मो! किं एसो सहसा गअणङ्गणादो अवदीण्णो पुण्णिमाहरिणंको?
किं वा तुट्ठेण णीलकण्ठेण णिअदेहं लंभिदो मणोहवो?–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३

५. कर्पूरमञ्जरी–३/२१

विअक्खणा विअक्खणा चतुरत्तणेण उत्तिणं, वा किमण्यं कइणं वि कई।[1]" (सत्यं विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्; तत् किमन्यत् कवीनामयि कविः।) वह तेजस्वी है, जैसा कि वैतालिक कहता है–"पराजित किये हुए राजाओं में सुवर्ण की तरह चमकने वाले हैं।"[2] राजा होने से चन्द्रपाल की कुलीनता स्वयं सिद्ध है। वह प्रज्ञावान (गृहीत ज्ञान में विशेषज्ञता उत्पन्न करने वाला) है। वह स्वयं कहता है कि–"स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नहीं है।"[3] इस सम्बन्ध में वह कपिञ्जल को अबोध कहता है। वह बुद्धिमान (किसी की बात को जानने वाला) है। वह जानता है, कि–वैतालिक उसे एवं रानी को प्रसन्न करने के लिए वसन्तवर्णन कर रहे है। वह शास्त्रज्ञ है, तृतीय जवनिकान्तर में उसने प्रेम, भाव, सौन्दर्य आदि को विद्वत्तापूर्ण ढंग से परिभाषित किया है। राजा दान में भी अग्रणी है। वह अपने विवाह के दक्षिणा स्वरूप सौ गांव ब्राह्मण कपिञ्जल को दान करता है।

राजा चन्द्रपाल पवित्र मन वाला है। वह रानी से स्पष्टतः कहता है कि–"मैं तुम्हे प्रसन्न करता हूँ, तुम मुझे प्रसन्न करती हो तथा वैतालिक हम दोनों को प्रसन्न करते हैं।"[4] इस कथन में उसके मन की पवित्रता झलकती है। विदूषक द्वारा विचक्षणा के कान उखाड़ने की बात कहने पर राजा कहता है, कि–'मित्र ऐसा मत कहो, यह वस्तुतः कवि है।' उसने विचक्षणा को हरिश्चन्द्र आदि कवियों से बढ़कर बताया। वह दासी के ऐसे विलक्षण गुण की वास्तविकता को अपने मन की पवित्रता से स्वीकार करता है।

कर्पूरमञ्जरी से राजा का प्रेम अगाध है। कर्पूरमञ्जरी को देखते ही उससे प्रेम करने लगता है। रति के अनुकूल वातावरण यथा–वसन्त ऋतु, कोकिलस्वर, चन्द्रोदय आदि से कर्पूरमञ्जरी के प्रति उसका रति भाव तीव्र हो गया है। कर्पूरमञ्जरी का वियोग उसके लिए असहनीय है, वह उसी के ध्यान में निर्मग्न रहता है। द्वितीय जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के वियोग में उसका हृदय वेग बढ़ गया है। वह

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २१
२. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १३
३. कर्पूरमञ्जरी–२/२८
४. कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १५

कर्पूरमञ्जरी द्वारा पहले अपने प्रति किये गये विभ्रम-हाव-भाव का स्मरण कर रहा है। प्रतिहारी के वचन से ध्वनित हो रहा है कि–वह हर रोज ताड़पत्र पर कर्पूरमञ्जरी सम्बन्धी कुछ अक्षर पंक्तियाँ अंकित करता है। प्रतिहारी द्वारा वसन्त वर्णन कर उसका ध्यान बंटाने का प्रयास करने पर भी कर्पूरमञ्जरी से उसका मन विमुख नहीं हो रहा है। कर्पूरमञ्जरी के प्रेम में वह उन्मत्त-सा हो गया है। उसकी उस उन्मत्त अवस्था का चित्रण विदूषक इस प्रकार करता है–"एसो पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्कमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदण्डो विअ घणघम्ममिलाणो, दिणदीवो विअ विगलिदच्छाओ पभादपुण्णिमाचन्दो विअ पंडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि।"[१] अर्थात् यह मेरा प्रिय मित्र मानसरोवर से छुटे हुए हंस के समान उद्विग्न मन वाला, मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह, प्रचण्ड सूर्यताप से मुरझाए हुए कमलनाल की तरह, दिन में कांतिहीन दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।

राजा कर्पूरमञ्जरी के साथ अपने प्रेम को लेकर विभ्रमलेखा से डरता है। तृतीय जवनिकान्तर के अंत में विभ्रमलेखा को आते हुए जानकर, सुरंग केमार्ग से राजमहल में चला जाता है। साथ ही विभ्रमलेखा से वह बहुत प्रेम करता है। विदूषक के यह कहने पर कि–"महारानी से इतना प्रेम होने पर भी कर्पूरमञ्जरी को...। क्या महारानी के गुण कर्पू रमञ्जरी से कम हैं।" राजा कहता है कि–"ऐसा मत कहो।" इस कथन से यह ध्वनित होता है कि वह ज्येष्ठानायिका को भी उतना ही महत्त्व देता है, जितना कर्पूरमञ्जरी को।

राजा को सिद्धयोगी भैरवानन्द की शक्ति पर विश्वास है, जैसा कि विवाह के प्रसंग में वह कहता है–"यह सब भैरवानन्द का काम है, ऐसा सोचता हूँ। वह नायिका प्राप्ति के लिए तन्त्रमन्त्र की शक्तियों पर भरोसा करता है, इस प्रकार कर्तव्य की अपेक्षा दैव पर उसे अधिक विश्वास है। कामक्रीड़ा ही उसकी दिनचर्या प्रतीत होती है। वह पैतृक राज्य का उपभोग करते हुए सतत् आनन्द मनाने में तल्लीन है। कवि ने नायक का चरित्र यद्यपि समग्रता के साथ वर्णित किया है किन्तु उसमें कोई राजोचित गुण नहीं

---

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५१

प्रदर्शित किया है। राजा का पराक्रमी व्यक्तित्व अन्तःपुर के शृंगारिक परिवेश में संकुचित-सा प्रतीत होता है। राजा का बाहुबल, उसका सैन्यबल, उसकी न्यायप्रियता और अन्य राजोचित गुणों के निदर्शन का अभाव है। सम्भवतः कथावृत्त की माँग में राजा के उक्त गुणों को प्रस्तुत करने का कोई अवकाश या अवसर ही नहीं था, प्रत्युत केवल उसके सहृदय प्रेमी व्यक्तित्व को ही विकसित करना तथा उसी का विस्तार व फलप्राप्ति तक निर्वाह करना सट्टककार को अभीष्ट था।

कर्पूरमञ्जरी–

कर्पूरमञ्जरी इस सट्टक की कनिष्ठा किन्तु प्रधान नायिका है। यह कुन्तल देश के राजा–वल्लभराज एवं रानी शशिप्रभा की पुत्री है, जिसे भैरवानन्द अपनी योगशक्ति के बल पर राजा चन्द्रपाल के महल में ला उपस्थित करता है। वह अपूर्व सुन्दरी है। इसकी तुलना हरिद्रा, केसर, चम्पा तथा सोना नहीं कर सकते।[१] उसकी आँखें बहुत सुन्दर हैं।[२] उसका अनुपम रूप, सौन्दर्य, नवीन यौवन और लावण्य राजा के कामुक हृदय को हठात् आकृष्ट कर लेता है। इसके कटाक्षों से देखा गया राजा अपने आप को चाँदनी से स्नान किया हुआ समझता है।[३] राजा एवं विदूषक के मुख से इसके सौन्दर्य की प्रशंसा सट्टक में आद्योपान्त मिलती है। इसके सौन्दर्य से आशंकित होकर ज्येष्ठा नायिका विभ्रमलेखा को भी विचारमग्न होना पड़ा।[४]

जिस प्रकार चन्द्रपाल इसके प्रति आसक्त है, उसी प्रकार यह भी उनके प्रति अनुरक्त है। लेकिन अपने भावों को एक चतुर नायिका की भाँति प्रकट नहीं होने देती। इसे मुग्धा नायिका की कोटि में

---

१. कर्पूरमञ्जरी–३/१

२. कर्पूरमञ्जरी–३/२

३. कर्पूरमञ्जरी–१/२६

४. देवी–(स्वगतम्)–ण क्खु ससिप्पहागब्भुप्पत्तिं अन्तरेण ईदिसी रूवरेहा होदि।
ण क्खु वेदरिअभूमिगब्भुप्पत्तिं अन्तरेण वेदूरिअमणिसलाआ पिप्पज्जदि।
(न खलु शशीप्रभागर्भोत्पत्तिमन्तरेणेदृशी रूपरेखा भवति।
न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका निष्पद्यते।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४०

रखा जा सकता है। यह राजा के विरह में अत्यधिक संतापित होती है, इसकी दशा सोचनीय हो जाती है। राजा के प्रति प्रेम सम्बन्ध के कारण यह विभ्रमलेखा से डरती है, किन्तु छिप-छिपकर राजा से प्रेम करती है। अंततः राजा के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता है।

यह बुद्धिमती है, लोगों को देखते ही पहचानने की इसमें क्षमता है। राजा को देखते ही बिना किसी सूचना के उसको राजा रूप में पहचान लेती है। यह वाक्य एवं काव्य-रचना-विधान में निपुण है। उसके द्वारा राजा को भेजे गये प्रेम पत्र में सारगर्भित एवं संयमित शब्दों का प्रयोग हुआ है। उसके द्वारा किये गये चन्द्रवर्णन[१] की राजा काफी प्रशंशा करता है।

राजमहल में रहते हुए वह अपना विशेष स्थान रखती है। यही कारण है कि महारानी उसके द्वारा दोहद कराती हैं। उसकी शालीनता उदाहरणीय है। कामसंततावस्था में भी एकाएक उपस्थित हुए राजा को देखकर वह घबराती है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी का चरित्र न केवल सट्टक के सर्वथा अनुकूल चित्रित हुआ है; अपितु कथा के विकास में सहायक एवं रसोद्रेक को पूर्णता प्रदान कराने वाला है। अपने परिजनों के बीच से, हठात् भैरवानन्द द्वारा उठाकर लायी गयी होने पर भी, कभी भी वह अपने परिजनों का स्मरण नहीं करती। कर्पूरमञ्जरी में एकमात्र राजा के प्रति प्रेम एवं आकर्षण का होना तथा उसमें अन्य मानवीय संवेदनाओं का अभाव होना; कर्पूरमञ्जरी के व्यक्तित्व का अधूरा बिम्ब ही उपस्थित करते हैं। अपने परिजनों का कथमपि स्मरण न करने तथा प्रेम के लिये आवश्यक समर्पण एवं त्याग जैसे गुणों का समुचित चित्रण न होने से, सट्टककार उसे स्निग्ध आदर्श प्रणयिनी की कोटि में नहीं रख पाते, वह प्रेम में स्वार्थी है, जिसने मौसेरी बहन मानकर उसे आश्रय दिया, उस महादेवी विभ्रमलेखा के साथ

१. कर्पूरमञ्जरी–३/३१

भी छल करके घनसारमञ्जरी के रूप में राजा से विवाह करने के षड्यन्त्र का हिस्सेदार बन जाती है।

विभ्रमलेखा–

विभ्रमलेखा इस सट्टक की ज्येष्ठा नायिका एवं राजा चन्द्रपाल की प्रधान महिषी है। उसका चरित्र सीधा-साधा चित्रित हुआ है। वह रिश्तों के प्रति सचेत है, बहन के रूप में कर्पूरमञ्जरी का आदर करती है तथा उसे सजाने-संवारने हेतु जाने के लिए राजा से अनुमति माँगती है। श्रेष्ठ व्यक्तियों के आदर-सत्कार में भी वह पीछे नहीं रहती। विचक्षणा से सुलक्षणा द्वारा भैरवानन्द का मनोनुकूल सत्कार करने के लिए कहती है।[१]

वह नीति-निपुण है। वह विचक्षणा से कहती है कि–'सोना कसौटी पर कसने पर ही शुद्ध या अशुद्ध कहा जा सकता है।...पुत्र वही अच्छा है जो अपने कुल को उज्ज्वल करे।' वह काव्य-पाठ में भी निपुण है। उसने प्रथम जवनिकान्तर में राजा के समक्ष अनेक प्रकार से वसन्त का वर्णन किया है।[२]

राजा के प्रति विभ्रमलेखा का अगाध प्रेम है। उसमें राजा के उत्कर्ष की लालसा है। कर्पूरमञ्जरी एवं राजा के प्रेम को न सह सकने वाली वह रानी, राजा के चक्रवर्ती हो जाने की कामना से ही, घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने के लिए तैयार होती है। जहाँ वह घनसारमञ्जरी से राजा का विवाह करवाने जा रही है, वहीं कर्पूरमञ्जरी का नाम सुनकर चौंकती है। यह राजा के प्रति उसके प्रेम का द्योतक है, क्योंकि उसे विश्वास हो चुका है, कि घनसारमञ्जरी से शादी होने पर राजा चक्रवर्ती राजा होगा, न कि कर्पूरमञ्जरी से शादी होने पर।

भैरवानन्द के प्रति विभ्रमलेखा में अटूट विश्वास है, उसी के कहने पर, वह घनसारमञ्जरी से

---

१. देवी–विअक्खणे! णिअजेट्ठबहिणिअं सुलक्खणं भणिअ भइरवाणंदस्स हिअइच्छिआ सपज्जा कोदव्वा।
(विचक्षणे! निजज्येष्ठभगिनिकां सुलक्षणां भणित्वा भैरवानन्दस्य हृदयेप्सिता सपर्या कर्तव्या।।)
–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४२

२. कर्पूरमञ्जरी–१/१४ एवं १/१७-१८

राजा की शादी के लिए तैयार होती है।

चतुर्थ जवनिकान्तर के अंत में रानी अपने अनुचरों के साथ चली जाती है। यहाँ रानी का चरित्रांकन कुछ अस्पष्ट-सा है। यहाँ पता नहीं चल पाता, कि–रानी राजा के विवाह से अप्रसन्न होकर जा रही है, अथवा अपने को छले जाने के कारण रूठ कर जा रही है। अथवा उसने यह जान भी लिया है कि नहीं? कि–घनसारमंजरी ही कर्पूरमञ्जरी है, क्योंकि–विवाह के अवसर पर घनसारमञ्जरी के रूप में कर्पूरमञ्जरी धुएँ के बहाने मुंह घुमाए खड़ी रहती है। रानी के चले जाने के पर विवाह की दक्षिणा देने आदि का प्रसंग चलता रहता है, यह सब रानी के सामने भी हो सकता था। इस प्रकार रानी विभ्रमलेखा का चरित्रांकन भी अधूरा रह जाता है। जिस विभ्रमलेखा में राजा के प्रति कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होती है, वह यह जानकर कि घनसारमञ्जरी ही कर्पूरमञ्जरी है, और नाम बदलकर उसके पति के साथ एक अन्य स्त्री का विवाह कराकर उसके साथ छल एवं धोखा किया जा रहा है–इस पर उसकी कोई प्रतिक्रिया प्रस्तुत कराने में राजशेखर को सफलता नहीं मिली। अपितु सामाजिक को इस प्रश्न पर कवि से निराशा ही हाथ लगती है।

विदूषक-कपिञ्जल–

अन्य संस्कृत रूपकों की भाँति कर्पूरमञ्जरी सट्टक में विदूषक का विशिष्ट स्थान है। इसका नाम कपिञ्जल है। यह राजा का अंतरंग सहयोगी मित्र, कृपापात्र एवं विश्वासपात्र है। यह ब्राह्मण जाति का है। ब्राह्मणोचित संयम, त्याग, तिक्षा, पाण्डित्य का इसमें अभाव है। इसके श्वसुर का श्वसुर पण्डितों के यहाँ पुस्तकें उठाता था, इस हेतु यह अपने आप को विद्वान समझता है। यद्यपि वह शास्त्रज्ञ नहीं है, किन्तु चतुर है। चेटी द्वारा हंसकर कहे गये कथन, कि–"तब तो तुम वंश परम्परा से विद्वान ठहरे"[१] के पीछे स्थित व्यंग्य को वह समझ जाता है। यदि वास्तव में वह मूर्ख होता तो

---

१. **चेटी–** (विहस्य)–तदो आगदं दे अण्णएण पंडित्तएं।
(तत आगतं ते अन्वयेन पाण्डित्यम्।)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १८

इस कथन से प्रसन्न हुआ होता।

कपिञ्जल विचित्र व्यक्ति है। उसे न कभी काम सताता है और न गर्मी में गर्मी लगती है। अनुनय करने पर कठोर हो जाता है।[1] वह ललित प्रवृत्ति का है, अतएव इस क्षेत्र में राजा की सदैव सहायता करता है। वह प्रवृत्ति से झगड़ालू है। विचक्षणा द्वारा व्यंग्य करने पर उससे झगड़ जाता है। वह खोजी प्रवृत्ति का है। उसे सब समाचार ज्ञात रहता है। कर्पूरमञ्जरी पर देवी द्वारा लगाये गये पहरे की बात उसे ज्ञात रहती है।

यद्यपि उसके पास कविता के सुन्दर भाव नहीं हैं, फिर भी वह काव्य रचना में प्रवृत्त होता है एवं अपने को कवि मानता है। राजा की विरहावस्था का निवेदन कविता के माध्यम से करता है। उसने हिंडोला पर झूलती कर्पूरमञ्जरी का काव्यमय वर्णन किया है। वह निरक्षर होने पर भी राजदरबार का आदरणीय व्यक्ति है।[2] वह अन्य देशों का पर्यटन कर चुका है, जिससे विदर्भ नगर में कर्पूरमञ्जरी को देख चुका था। वह शास्त्रीय चर्चाओं में राजा के साथ भाग लेता है।

विदूषक नायक-नायिका के मिलन हेतु प्रयासरत है। विचक्षणा के साथ मिलकर वह योजना बनाता है, जिससे हिंडोला चतुर्थी के दिन राजा कर्पूरमञ्जरी को देख सके। वह राजा की सेवा में तत्पर रहता है। राजा के संताप को दूर करने हेतु विलेपन आदि की व्यवस्था के लिए प्रयास करता है। भैरवानन्द की अपूर्वशक्ति पर उसे विश्वास है। वह पुरोहित का कार्य सम्पादित करने में भी प्रवीण है। दक्षिणा ग्रहण कर आशीर्वाद प्रदान करता है।

कपिञ्जल कभी-कभी असावधानी भी कर जाता है, जैसे घनसारमञ्जरी के प्रसंग में कर्पूरमञ्जरी

१. विचक्षणा—अणुणअकक्कसो क्खु कबिंजलबम्हणो सलिलसित्तो विअ सणगुणगंठी चिरं गाढअरो भोदि।
(अनुनयकर्कशः खलु कपिञ्जलब्राह्मणः सलिलसिक्तः इव शणगुणग्रन्थिश्चिरं गाढतरो भवति।)
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २७

२. विचक्षणा—...जदो तुमं णाराओ विअ णिरक्खरो बि रअणतुलाए णिउंजीअसि।
(...यतस्त्वं नाराच इव निरक्षरोऽपि रत्नतुलायां निमुज्यसे।)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

का नाम लेता है, जिससे महारानी चौंक जाती है।[१]

प्रस्तुत सट्टक में विदूषक के चरित्र का पूर्ण-परिपाक मिलता है। वह हास्य उत्पन्न करने में सर्वथा समर्थ हुआ है, जो कि शृङ्गार रस की पुष्टि के लिए सट्टक की मांग के अनुसार अत्यावश्यक था। कपिञ्जल संस्कृत नाटकों में वर्णित विदूषक की परम्परा का अनुगमन करता है। वह राजा एवं उसके अन्तःपुर के हास्य-विनोद एवं आनन्द का साधन बनने में सफल रहा है।

विचक्षणा–

विचक्षणा महारानी की प्रधान परिचारिका है। यद्यपि वह देवी के आदेश से कर्पूरमञ्जरी की सेवा में है, फिर भी उसका कर्पूरमञ्जरी से सहज-स्नेह है। वह हर प्रकार से उसके दुःख को दूर करने के लिए हृदय से प्रयास करती है। वह नायिका का नायक से मिलन करवाने हेतु प्रयासरत है। वह नायिका के कामसंताप की स्थिति में विलेपन का प्रबन्ध करती है, किन्तु इस प्रकार के विलेपन की आवश्यकता न पड़े इस हेतु वह नायक-नायिका का एक दूसरे का दर्शन करवाने की योजना विदूषक के साथ मिलकर बनाती है।

विचक्षणा मधुर-व्यंग्य करने में सिद्धहस्त है। कविता करने में वह निपुण है। उसकी वचन चातुरी से प्रसन्न राजा, उसे वास्तविक विचक्षणा कहने के लिए विवश होते हैं। राजा ने उसके लिए विदूषक से खुद कहा कि–"यह (विचक्षणा) वस्तुतः कवि है।"[२] राजा ने इसे अनेक महाकवियों से बढ़कर स्वीकार किया है। उसे हम विदूषक से झगड़ा करते हुए भी पाते हैं।

---

१. विदूषक–...दाव हत्थेण हत्थं गेण्ह कप्पूरमञ्जरीए।
(...तावद्धस्तेन हस्तं गृहाण कर्पूरमञ्जर्याः।)
राज्ञी–(सचमत्कारम्)–कुदो कप्पूरमञ्जरी!
(कुतः कर्पूरमञ्जरी!)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १५२

२. राजा–सच्चं विअक्खणा विअक्खणा चदुरत्तणेण उत्तिणं, ता किमण्णं कइणं बि कई।
(सत्यं विचक्षणा विचक्षणा चतुरत्वेनोक्तीनाम्, तत् किमन्यत् कविनामपि कविः।

इस प्रकार विचक्षणा का चरित्र एक सच्ची सहेली के रूप में तो सामने आता ही है, साथ ही कथा के विकास एवं रस परिपाक में बहुत सहयोगी हुआ है।

भैरवानन्द–

संस्कृत नाटकों में विस्मयकारी कार्य आदि करवाने जैसे कुछ विशेष प्रयोजनों से कापालिकों, योगियों जैसे पात्रों का समावेश किया जाता रहा है। कर्पूरमञ्जरी सट्टक का भैरवानन्द भी इसी परम्परा का अंग है। वह एक प्रसिद्ध तान्त्रिक, मान्त्रिक तथा चमत्कारी शक्तियों वाला है। वह मदिरा पान करता है। वह अपने विषय में खुद कहता है, कि–"न कोई मन्त्र जानता हूँ, न कोई शास्त्र जानता हूँ"[१]इत्यादि। वह अपने कार्यों के विषय में खुद कहता है, कि–"चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ...भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे मैं न कर सकूँ।"[२] उसने अपने कथनानुसार अद्‌भूत कार्यों का प्रदर्शक भी किया एवं कर्पूरमञ्जरी को विदर्भ राज्य से लाकर उपस्थित कर दिया। उसके प्रभाव से असमय में केवड़े का फूल, फूल जाता है।वह चामुण्डा का पुजारी है। मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा करवाता है। कथा के विकास में भैरवानन्द का प्रमुख स्थान है।

---

१. **भैरवानन्दः**–मंतो ण तंतो ण अ किं पि जाणं झाणं च णो किं पि गुरुप्पसादा।
मज्जं पिआमो महिलं रमामो मोक्खं च जामो कुलमग्गलग्गा।।
(मन्त्रो न तन्त्रं न च किमपि ज्ञानं ध्यानञ्च नो किमपि गुरुप्रसादात्।)
मद्यं पिबामो महिलां रमयामो मोक्षञ्च यामः कुलमार्गलग्नाः।।–कर्पूरमञ्जरी, १/२२

२. **भैरवानन्दः**– दंसेमि तं पि ससिणं बसुहाबइण्णं
थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे।
आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ
तं णत्थि भूमिबलए मह जं ण सहं।।

(यामि तमपि शशिनं वसुधावतीर्णं
स्तभ्नामि तस्यापि रवे रथं नभोध्वनि।
आनयामि यक्षसुरसिद्धगणाङ्गनाः।
तन्नास्ति भूमिवलये मम यन्न साध्यम्।।)–कर्पूरमञ्जरी–१/२५

नाटकीय कथावस्तु भैरवानन्द के कारण ही आगे बढ़ती है, क्यों कि वही कर्पूरमञ्जरी को दूर देश से लाकर चन्द्रपाल के सम्मुख उपस्थित करता है एवं राजा के उस पर मोहित होने तथा महारानी द्वारा भैरवानन्द की अनुमति से उसे कुछ दिनों के लिए अपने पास रख लेने से, कथा आगे बढ़ चलती है। अन्ततः भैरवानन्द के प्रयास से ही कर्पूरमञ्जरी से राजा का विवाह सम्पन्न हो पाता है।

भैरवानन्द को जिस रूप में प्रथम जवनिकान्तर में चित्रित किया गया है, एवं वहाँ उसकी भयानक स्वरूप वाले व्यक्ति की जो छवि बनती है, वहीं चतुर्थ जवनिकान्तर में वह सर्वथा भिन्न छवि वाला प्रतीत होता है। कहाँ वह प्रथम जवनिकान्तर में सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य का डंका पीटता है और कहाँ चतुर्थ जवनिकान्तर में रानी विभ्रमलेखा से सशंकित है, कि कहीं वह शादी रोक न दे। जब विदूषक के मुख से घनसारमञ्जरी के प्रसंग में कर्पूरमञ्जरी का नाम आ जाता है और रानी चौंकती है, तब भैरवानन्द सफाई प्रस्तुत करते हुए दिखाई पड़ता है। प्रथम जवनिकान्तर में अक्खड़ मनमौजी योगी के रूप में अपनी छवि बनाने वाला सिद्ध योगी चतुर्थ जवनिकान्तर में लिजलिजे रूप में चित्रित हुआ है। वह राजा की शादी कर्पूरमञ्जरी से, उसे घनसारमञ्जरी के रूप में प्रस्तुत करके छल का सहारा लेकर करवाता है। यह प्रथम जवनिकान्तर में चित्रित भैरवानन्द के व्यक्तित्व के प्रतिकूल सा चित्रण लगता है। वह व्यक्ति जो सब कुछ करने में समर्थ हो, शादी के लिए झूठ का सहारा ले, महारानी से सशंकित हो, यह उसके व्यक्तित्व के लिए सटीक नहीं है। यहाँ भैरवानन्द से दर्शक को कुछ दूसरे ही तरह की अपेक्षा रहती है। हो सकता है सट्टककार ने चमत्कार पैदा करने के लिए भैरवानन्द को इन-इन रूपों में चित्रित किया हो, परन्तु इस लघु चमत्कार के लिए कथा की स्वभाविकता में विघ्न डालना उचित प्रतीत नहीं होता।

पूर्व मध्यकाल से लेकर मुगलों के आगमन काल तक हमारे देश में तान्त्रिकों और कापालिकों का बोलबाला था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इनकी पहुँच थी। राजाओं और राजनीति तक इनके

प्रभाव में थी। फिर भी इनको धूर्त, चरित्रहीन और व्यभिचारी ही माना जाता था। समाज में इन्हें आदर्श पात्र कभी नहीं स्वीकार किया गया, भले ही अपना काम बनाने के लिये इनकी सहायता प्राप्त करना निषिद्ध न रहा हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर तान्त्रिक भैरवानन्द दर्शकों को बहुत निराश नहीं करता। एक ओर वह अपनी गर्वोक्तियों के द्वारा राजा, विदूषक, एवं विभ्रमलेखा का विश्वास जीतता है, तो दूसरी ओर वह नायिका को नायक के सामने उपस्थित करके सबको हतप्रभ कर देता है, किन्तु अन्ततः वह झूठ और छल का सहयोग लेकर राजा को उसकी मनोरथ प्रियतमा को सुलभ कराकर राजशक्ति पर अपनी धाक जमा लेता है। जहाँ तक घनसारमञ्जरी से विवाह करने वाले व्यक्ति के चक्रवर्ती बनने वाली बात है, तो अन्त तक दर्शक को इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलना कि इस अभ्युक्ति की सच्चाई क्या थी। सम्भव है रानी विभ्रमलेखा की, विवाह हेतु सहमति लेने के लिए यह झूठा प्रचार किया गया हो, क्योंकि जब घनसारमञ्जरी ही एक छलावा थी, तो उसके पति का चक्रवर्ती होना भी छलावा हो सकता है। परिणामतः इस प्रसंग में कापालिक भैरवानन्द मध्यकालिक कापालियों की इमेज से निकलकर एक निश्छल सिद्ध तपस्वी का चरित्र नहीं निभा सके।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का पात्र विवेचन

पात्र संयोजन की दृष्टि से विश्वेश्वर-रचित–शृङ्गारमञ्जरी, एक सफल कृति है। विश्वेश्वर ने खुद कहा है कि इस कृति में सभी पात्र अच्छी घटनाओं से युक्त हैं–(सुघडिअसमत्तपत्ता)[१]। निश्चय ही भावों एवं पात्रों का सामञ्जस्य आद्योपान्त दृष्टिगोचर होता है। इसमें संख्या की दृष्टि से पुरुष एवं स्त्री पात्रों की संख्या लगभग बराबर है। पुरुष पात्रों में सूत्रधार, राजा-राजशेखर, विदूषक-गौतम एवं महामन्त्री-चारुभूति हैं। स्त्री पात्रों में नटी, शृङ्गारमञ्जरी, देवी–रूपलेखा, परिचारिका–वसन्ततिलका, सेविका–माधविका हैं। इनमें पुरुष पात्रों में जहाँ राजा एवं विदूषक

१. शृङ्गारमञ्जरी–१/६

की प्रमुख भूमिका है; वहीं स्त्री पात्रों में शृङ्गारमञ्जरी, रूपलेखा एवं वसन्ततिलका, प्रमुख भूमिकाओं का निर्वाह करती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों–अमात्य, माधविका, दासी, प्रतिहारी आदि की भूमिका गौण है।

राजशेखर–

राजशेखर कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नायक है। उसमें नायक के शास्त्र-सम्मत समस्त गुण विद्यमान हैं। वही सट्टक की कथावस्तु के केन्द्र में स्थित है। उसे ही आधार बनाकर कथानक का ताना-बाना बुना गया है एवं उसे ही अंततः फल की प्राप्ति होती है।

राजा राजशेखर निश्चिन्त, कलासक्त, सुखी और कोमल स्वभाव का होने के कारण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से धीरललित नायक है।[१] वह राजा है, राजाओं से अभिवंदित चरणों वाला है।[२] उसकी आज्ञा राजाओं के मुकुटमणियों के प्रभामञ्जरी के अंतिम किनारे तक पहुँची है। भृकुटी के बल-भंगिमा से समुद्र तक पृथ्वी सीमा बन चुकी है।[३] उसके राज्यकार्य की चिन्ता मन्त्री करते हैं। फलतः निश्चिन्त होकर वह संगीत, नृत्य, चित्र आदि कलाओं में डूबा रहता है। वह सौन्दर्य प्रेमी है, स्वप्न में नायिका को देखकर उसके प्रति आशक्त है। उसने कहा है–"(उसे देखने के बाद से) पागल-सा हो गया हूँ।" वसन्ततिलका से नायिका के विषय में सुनकर एवं नायिका को देखकर उसका अनुराग विकसित होता है। वह नायिका के विरह में संतप्त रहता है।[४] वह अनेक पत्नियों वाला है। अन्तःपुर में प्रेम क्रीड़ा करता है, कुञ्जों प्रमदवनों में विहार करता है। भोग-विलास उसे

---

१. 'निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः।'–दशरूपक–२/३

२. विदूषक–'...भवं परिंदवंदेण वंदिअपओवि।
(भवान् नरेन्द्रवृन्देन वंदितपदोऽपि।)'–शृङ्गारमञ्जरी–३/३२

३. '...पारावारावहि वसुमई भूविभंगेक्कसज्जा...।'
(पारावारावधिवसुमती भूविभङ्गैकसाध्या...।)–शृङ्गारमञ्जरी–४/२४

४. शृङ्गारमञ्जरी–२/१७-१८

अच्छा लगता है। उसका मन नायिका को छोड़कर सर्वोत्तम वस्तुओं में भी रुचि नहीं ले रहा है।[१] नायिका से मान छोड़ने हेतु चरणों पर गिरने तक को तैयार है।[२] वसन्ततिलका को, नायिका के साथ प्रेम को निभाने का विश्वास दिलाता है।[३]

चित्रकला में वह प्रवीण है। स्वप्न में देखी गयी नायिका का चित्र बनाकर कलाप्रेमी होने का परिचय देता है। वह अन्य कलाओं का भी पारखी है। विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य हो रही शास्त्रीय चर्चा में वसन्ततिलका की प्रतिभा से प्रभावित होकर उसकी प्रशंसा करता है। वह वक्रोक्ति का जानकार एवं अन्तःकरण के भावों को समझने में समर्थ है।[४] उसके हृदय में दया है एवं गुणों के प्रति आदर है, तभी वह तृतीय जवनिकान्तर में शृङ्गारमञ्जरी से मिलने जाता है, क्योंकि शृङ्गारमञ्जरी राजा को दया एवं गुणों के प्रति आदर के भाव का वास्ता देकर, अपने ऊपर कृपा करने का निवेदन वसन्ततिलका के माध्यम से की थी।[५]

राजशेखर का स्वभाव विनम्र एवं कोमल जान पड़ता है। वह शृङ्गारमञ्जरी के प्रति अपने प्रणय-व्यापार में, ज्येष्ठा नायिका से शंकित एवं भयभीत है। यद्यपि शृङ्गारमञ्जरी से उसका

---

१. राजा–....सव्वाहिए वि विसए ण रुइं उवेइ।
 (...सर्वाधिकेऽपि विषये न रुचिमुपैति।)–शृङ्गारमञ्जरी–३/५८

२. राजा–अम्हं सिराहरणणिम्मलपम्मराओ भाणुक्करंतरिअपाअणहो पिए ते।
 गब्भे णिहित्तसिअदीहिइमंडलो व्व मत्तंअडओ फुरउ चंडि विमुंच माणं।।
 (अस्माकं शिरसाभरणनिर्मलपद्मरागः भानूत्करान्तरितपादनखः प्रिये ते।
 गर्भे निहितसितदीधितिमण्डल इव मार्तण्डकः स्फुरतु चण्डि! विमुञ्च मानम्।।)
 –शृङ्गारमञ्जरी–३/६०

३. राजा–कहं एव्वं आसंकीआमो? (कथमेवमाशङ्कामहे?)
 केअइमालइमल्लीलदासु भमरो भमउ णाम।
 तस्स उण पम्मिणीए जो राओ सो अणण्णसामण्णो।।
 (केतकीमालतीमल्लीलतासु भ्रमरो भ्रमतु नाम।
 तस्य पुनः पद्मिन्यां यो रागः सोऽनन्यसामान्यः।।)–शृङ्गारमञ्जरी ३/६३

४. शृङ्गारमञ्जरी–२/६

५. शृङ्गारमञ्जरी–३/१३

अगाधप्रेम है; फिर भी ज्येष्ठा नायिका के प्रति हृदय से व्यवहार करता है एवं आदरभाव रखता है। वह ज्येष्ठा नायिका के आमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार करता है,[१] जो ज्येष्ठा नायिका के प्रति उसके कर्तव्य निर्वाह का परिचायक है। वह अंततः रानी के आदेश पर शृङ्गारमञ्जरी से विवाह भी करता है। इस प्रकार वह दक्षिण-नायक है।

कोमल स्वभाव, शृङ्गारी प्रवृत्ति एवं कलाप्रेमी होने के कारण प्रकृति से बहुत लगाव रखता है। उपवन के वृक्षों और कुञ्ज में छोटे पौधों एवं लताओं को देखकर प्रसन्न रहता है। रानी के क्रोध को शान्त करने के लिए नम्र निवेदन करने को तैयार है।[२] वह रानी से नम्र निवेदन करता भी है।[३] प्रियमित्र के बन्दी होने पर उसके कष्ट का अनुमान कर विह्वल हो उठता है; जो उसकी सरल हृदयता का परिचायक है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में राजा राजशेखर को धीरललित नायक के प्रसिद्ध लक्षणों से, पूर्णतः सुसज्जित करने का प्रबल प्रयास; सर्वत्र परिलक्षित होता है और इस कार्य में सट्टककार को पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है।

शृङ्गारमञ्जरी–

प्रस्तुत सट्टक की कनिष्ठा नायिका शृङ्गारमञ्जरी है। यह ज्येष्ठा नायिका के बहनोई अवन्तिनरेश

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ३७

२. अहोंता अण्णस्सिं कह वि अ विसंवाअरहिआ
पहुत्ता अम्हाणं कवडणिवहा जं अवगआ।
अदो देवीए जो हिअअमहिरुढो अणुसओ।
स ईसंमुक्को चे अणुणअसएहिं पि अहिअं।।
(अभवन्तोऽन्यस्मिन्कथमपि च विसंवादरहिताः
प्रभूता अस्माकं कपटनिवहाः यदवगताः।
अतो देव्याः यो हृदयमधिरुढोऽनुशयः
स ईषन्मुक्त (श्चेत्) अनुनयशतैरप्यधिकम्।।)–शृङ्गारमञ्जरी–४/४

३. शृङ्गारमञ्जरी–४/१६

जटाकेतु की पुत्री है।[१] यह भगवती पार्वती के वरदान से उत्पन्न हुई है। इसका पति चक्रवर्ती राजा होगा, ऐसा इसके विषय में मातंग ऋषि ने बताया था। अमात्य चारुभूति ने मातंग ऋषि से राजा हेतु इसकी मंगनी की थी।

शृङ्गारमञ्जरी परकीया मुग्धा कोटि की नायिका है। यह परमसुन्दरी है। राजा स्वप्न में इसे देखकर इस पर मोहित होता है। शृङ्गारमञ्जरी भी पहले से ही राजा के प्रति अनुरक्त है, जो कि वसन्ततिलका के स्वगत कथन से स्पष्ट है।[२] वह असाधारण सौन्दर्यशालिनी है, तभी रानी उसे राजा के नयनपथ से बचाये हुए है।[३] उसके अंग अतिशय कोमल एवं नेत्र चञ्चल हैं। उसके मुख से निकलने वाले वचन वक्रार्थगर्भित हैं तथा नायक के कानों में अमृत घोलते हैं एवं संताप को दूर करते हैं।[४] वह अपने हावभावों से अपने प्रिय को रिझाने में समर्थ है। रानी की दृष्टि में भी वह असाधारण रूप से सुन्दर है।

शृङ्गारमञ्जरी प्रेम के यथार्थ स्वरूप को जानती है। वह स्वयं कहती है कि–प्रेम अनुकूल व्यवहार से स्वयं प्रकट हो जाता है, दिखलाने पर वह कृत्रिम बन जाता है।[५] राजा के प्रति उसका प्रेम अगाध है। वह पहले से ही राजा के प्रति आकर्षित है। वह राजा के दर्शनों के लिए उत्सुक है।[६] एवं उसे देखकर उसके प्रति अधिकाधिक आसक्त हो जाती है, राजा से मिलने के लिए बेचैन हो उठती है। राजा के प्रति प्रेम एवं उसके विरह में उसकी दशा सोचनीय है।[७] वह अपने दुखों के

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

२. सिंगारमंजरीए देओ हिअअस्स वंधणट्ठाणं।
(शृङ्गारमञ्जर्याः देवः हृदयस्य बन्धनस्थानम्।)–शृङ्गारमञ्जरी–१/३३

३. देवी–(स्वगत)–....सा उण अउव्वलावण्णणिहाणहुआत्ति अज्जउत्तस्स णअणमग्गादो मए प्पअत्तेण रक्खीअदि।
(सा पुनरपूर्वलावण्यनिधानभूतेति आर्यपुत्रस्य नयनमार्गात् मया प्रयत्नेन रक्ष्यते।)–शृङ्गारमञ्जरी–पृष्ठ ५०

४. शृङ्गारमञ्जरी–१/२२, ३/४०

५. शृङ्गारमञ्जरी–३/५६

६. शृङ्गारमञ्जरी–२/२८

७. शृङ्गारमञ्जरी–३/८-११

अंत के लिए शरीरांत तक को उद्यत है।

वह रस-शास्त्र की मर्मज्ञ है। कई बार उसकी परीक्षा देवी द्वारा ली जा चुकी है।[१] यही कारण है कि शास्त्रीय विवाद के निबटारे हेतु उसे मध्यस्थ बनाया जाता है। इससे उसकी सर्वमान्यता एवं निष्पक्षता भी प्रमाणित होती है। वह प्रभूत गुणों वाली है, अपने गुणों के अनुरूप राजा से उसे प्रेम है।[२] राजा भी कहता है कि–'हे सुन्दरी मैं पहले से ही तुम्हारे गुणों से बंधा था।'[३]

शृङ्गारमञ्जरी का हृदय निर्मल है। यद्यपि मदनजन्य एवं महारानी जन्य सैकड़ों दुखों की अनुभूति के कारणभूत इस शरीर का विनाश करना चाहती है, फिर भी कामदेव एवं महारानी के प्रति उसके मन में शुभाशंसा है।[४] उसमें लज्जा की प्रधानता है। वह लताकुञ्ज में नायक को देखकर लजाती है। राजा के हाथ का सहारा लेने में उसे संकोच है। उसे अनेक कष्ट सहन करने पड़े हैं, किन्तु अपनी इच्छाशक्ति की दृढ़ता के कारण वह लक्ष्य प्राप्ति में सफल होती है। उसका चरित्र अवसरानुसार परिवर्तनशील है; इसका मुग्धात्व शनैः-शनैः अधीरा, प्रगल्भा, कृष्णाभिसारिका और मानवती के रूप में परिवर्तित हुआ है। पहले वह मुग्धा होने के कारण लजाती है, किन्तु जब दुःख का सागर उमड़ पड़ता है, तब वह अपने हृदय की आँधी को नहीं रोक पाती एवं सिसक-सिसक कर केवल आँसू गिराती है। वह अधीरा हो जाती है। विरह संताप के कारण वह जीवन और मरण की दो नौकाओं में डगमगाती है।[५] यहाँ वह प्रगल्भा रूप में दिखती है। नायक से मिलने हेतु रात में

---

१. ...रसणिरूअसे कअपरिस्समा अणेअवारं कअपरिक्खणा अ।
(...रसनिरूपणे कृतपरिश्रमा अनेकवारं कृतपरीक्षणा च।।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

२. शृङ्गारमञ्जरी–३/४५

३. शृङ्गारमञ्जरी–३/४८

४. होउ मअणो कअत्थो चावादो तस्स ओअरदु जीआ।
देवीअ भोदु भद्दं वहेण में अणवराहे वि।।
(भवतु मदनः कृतार्थः चापात् तस्यावतरतु ज्या।
देव्याः भवतु भद्रं वधेन मेऽनपराधेऽपि।।)–शृङ्गारमञ्जरी–३/१२

५. शृङ्गारमञ्जरी, भूमिका, डॉ॰ जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ४२

अभिशरण करती है, यहाँ वह कृष्णाभिसारिका रूप में है। नायक से मिलने पर मान करती है, यहाँ वह मानवती रूप में परिवर्तित दिखती है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में शृङ्गारमञ्जरी का चरित्र आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित किया गया है, जो कथा की माँग में सर्वथा अनुरूप है। शृङ्गारमञ्जरी का चरित्र सट्टक के अंगी रस शृङ्गार को रसोद्रेक तक पहुँचाने में सफल रहा है।

रूपलेखा–

महारानी रूपलेखा शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की ज्येष्ठा नायिका है। यह सर्वप्रथम द्वितीय जवनिकान्तर में रंगमंच पर प्रस्तुत होती है। यह आदर्श धर्मपत्नी है, क्योंकि पारिवारिक उत्सवों में महाराज के साथ रहती है, उन्हें उत्सवों में आमन्त्रित करती है।[१] उसको देखने से महाराज की आँखों को आनन्द मिलता है, उसके मीठे बोल से कानों में अमृत-सा घुल जाता है।[२] राजा उसके प्रति भी उतना ही प्रेम रखता है जितना शृङ्गारमञ्जरी के प्रति। वह अपने गुणों के कारण सभी का सम्मान प्राप्त करती है। राजा अपने प्रेम सन्दर्भ में उससे डरता है। वसन्ततिलका एवं विदूषक राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी के प्रेम सम्बन्धी बातें उससे छिपाते हैं। वह गुणों की पारखी है। नायिका के प्रति मन में ईर्ष्या होते हुए भी उसकी रूपराशि की प्रशंसा करती है। शृङ्गारमञ्जरी के रस विषयक ज्ञान का उसे भान है, तभी विदूषक एवं वसन्तलितका के विवाद में उसे निर्णायक बनाती है। श्रेष्ठ एवं पूज्य व्यक्तियों के प्रति उसके मन में सम्मान के भाव हैं। वह शास्त्रज्ञ है, तभी विदूषक ने उससे कहा है कि–"आप एवं महाराज हमारे वाद की परीक्षा लेने में पूर्ण समर्थ हैं।"[३] यद्यपि

---

१. महुमासस्स वलक्खा वट्टइ कुसुमाउहस्स अज्ज तिहि।
तेन अ तं पूअइउं उववणदेसो करीअदु सणाहो।।
(मधुमासस्य वलक्षा वर्तते कुसुमायुधस्याद्य तिथिः।
तेन च तं पूजयितुमुपवनदेशः क्रियतां सनाथः।।)–शृङ्गारमञ्जरी–२/११

२. शृङ्गारमञ्जरी–४/१६

३. शृङ्गारमञ्जरी, डा० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ४६

विदूषक को संदेह है कि रानी वसन्ततिलका का पक्ष लेगी, किन्तु रानी वस्तुतः निष्पक्ष विचार की है, जैसाकि महारानी ने स्वगत कहा है कि–"विदूषक मूर्ख है, जो हमारे ऊपर विश्वास नहीं करता।"[१]

रानी रूपलेखा सूक्ष्म दृष्टि वाली है। वह महाराज एवं शृङ्गारमञ्जरी के नेत्रों के पारस्परिक स्फुरण से, उनके अनुराग का पता लगा लेती है एवं तुरन्त राजा को मदनपूजा जैसे अन्यकार्य में व्यवस्त करने को उद्यत होती है। वह बुद्धिमत्ता से अपना अभीष्ट सिद्ध करती है। वसन्ततिलका एवं विदूषक के शास्त्रीय वाद-विवाद में, योग्य मध्यस्थ का प्रबन्ध कर, अपने सूझ-बूझ का परिचय देती है। वह बड़ी कुशलता से वसन्ततिलका एवं विदूषक के मिलन में रोक लगा देती है एवं अंततः नायिका के साथ इन दोनों को कारागार में बन्द कर देती है।

महारानी रूपलेखा धार्मिक प्रवृत्ति की है। वह उपवन में भगवती गौरी की मन्त्र से पूजा करती है।[२] आकाशवाणी द्वारा पतिव्रता धर्म का एहसास कराये जाने पर, उसे सर्वोपरि धर्म मानते हुए, तदनुकूल कार्य में प्रवृत्त होती है। निरपराध शृङ्गारमञ्जरी, विदूषक एवं वसन्ततिलका को मुक्त कर देती है। नायिका एवं राजा के प्रति किये गये कार्यों के लिए वह लज्जा का अनुभव करती है एवं क्षमा मांगती है। वह राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी के विवाह की न केवल अनुमति देती है, अपितु स्वयं दोनों का विवाह करवाती है। इस प्रकार सट्टककार ने रूपलेखा के चरित्र को, एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

गौतम–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का विदूषक गौतम, नायक राजशेखर का विश्वस्त मित्र एवं नर्मसचिव है। यह नाट्यशास्त्र में वर्णित विदूषक के लक्षणों से युक्त है। यह अपनी बातचीत, हाव-भाव आदि

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–पृष्ठ ५०

२. विदूषक :–
'अहं मंतेहिं उवआरेहिं भअवदिं आराहिअ...।
(अथ मन्त्रैरूपचारैर्भगवतीमाराध्य...।।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६६

से अपने आपको परिहास का पात्र बनाकर, उल्लास में वृद्धि करता है। यह कुलीन ब्राह्मण है।[1] अवस्था से वृद्ध है, जिससे आँखें कमजोर हो चुकी हैं। सट्टक में प्रथम जवनिकान्तर से लेकर अंत तक उपस्थित रहता है।

विदूषक बुद्धिमान है। दो-दिन दिन गुरु की सेवा करके अपने सहपाठियों की तुलना में अधिक ज्ञान प्राप्त करने का इसका दावा है। यह अपने को सभी शास्त्रों का ज्ञाता बताता है।[2] वह अपने को वृहस्पति के समान श्रेष्ठ पण्डितों की कोटि का मानता है। उसे अपनी बुद्धि पर गर्व है। वह अत्यन्त चतुर है। राजा नायिका को देख सके, इसके लिए चतुरतापूर्वक योजना बनाता है एवं उसे क्रियान्वित कर सफल भी होता है। उसके कुशल दौत्य कर्म से तृतीय जवनिकान्तर में नायक एवं नायिका की मुलाकात होती है।

विदूषक गौतम एक सच्चा मित्र है। नायक के सुख दुख में हमेशा उसके साथ रहता है। मित्र होने के कारण नायक सबसे पहले उसे ही अपना स्वप्न बताता है। राजा उसके सामने मानो अपना हृदय खोलकर रख देता है। एक सच्चे मित्र की भाँति वह अपने स्वामी के मन की बात जानना चाहता है, साथ ही अपने मन की बात राजा से कहता है। विदूषक के कारागार में बंद हो जाने

---

१. **विदूषक :-** '...महाउलुप्पण्णो बम्हणो...।
(...महाकुलोत्पनः ब्राह्मणः...।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

२. **विदूषक :-** '...दो तिण्णि व अहाइँ सेविअगुरुं वारेक्कमेत्तोइआ
विज्जा जेण माए णम्मि णिहिआ सव्वा वि सव्वाहिआ।
पेच्छंताण बहुत्तमाण विहिअब्भासो अमत्ताअम
उग्गाहम्मि पवट्ठिदे वि जणिओ तादो वि भग्गुत्तरो।।
(द्वे त्राणि वा अहानि सेवितगुरुं वारैकमात्रोचिता
विद्या येन मया मनसि निहिता सर्वा अपि सर्वाधिका।
प्रेक्षमाणानां बुद्धोत्तमानां विहिताभ्यासः समस्तागमे
उद्ग्राहे प्रवर्तितेऽपि जनितस्तातोऽपि भग्नोत्तरः।।)—शृङ्गारमञ्जरी—२/२३

पर राजा अपने को निःसहाय जानकर अपने भाग्य को कोसने लगता है।[१]

गौतम स्वभाव से स्वाभिमानी एवं क्रोधी है। वसन्ततिलका के व्यंग्य बाण उसे चुभ जाते हैं। अपने पाण्डित्य पर आक्षेप से वह अपमान का अनुभव करता है, यही कारण है, कि रानी उसे क्रोध न करने की सलाह देती हैं तथा जिस प्रकार उसका मान रह सके वैसा करना चाहती हैं।[२] विदूषक अल्प बुद्धि वाली दासी के झूठे अहंकार को सहन नहीं करता। महाराज एवं महारानी के सामने, अपने को दासी के द्वारा अपमानित समझकर, राजा को अविवेकी कहकर उसका साथ छोड़ना चाहता है।[३]

विदूषक धार्मिक प्रवृत्ति का है। सौन्दर्य का निर्माता ब्रह्मा को मानता है। भाग्य में उसको विश्वास है। दैवयोग से कार्य होगा ऐसा कहता है। समय परिस्थिति के अनुसार करणीय का उसे भान है। जैसे नायक-नायिका के एकान्त मिलन के समय वह राजा से कहता है, कि–"आप आगे चलें। मैं अन्धकार के जाल में जकड़ा हुआ सा यहीं पर रह रहा हूँ, पुनः तुम मुझे मत ढूँढ़ना।"[४] वह सहज बुद्धि का है। वह कहता है कि–"यदि तुम्हारा सुन्दरी से प्रेम है तो महारानी का क्या नुकसान है।" वह इतना भोला है कि सौत के दुःख का एहसास नहीं कर पाता, अतः राजा को बताना पड़ता है।

प्रस्तुत सट्टक में विदूषक के चरित्र का अच्छा परिपाक है। विदूषक की सूझ-बूझ से कथा में गतिशीलता आयी है। विदूषक में कथावस्तु के संचालन की क्षमता है।

---

१. राजा– ...जस्स पुरो सुहदुक्खं वीसंभा आसि संभरिज्जंतं।
सो वि वअस्सो बंदित्तणं गओ अच्छउ किमण्णं।।
(यस्य पुरः सुखदुःखं विस्रम्भादासीत् संस्मर्यमाणम्।
सोऽपि वयस्यः बन्दित्वं गत आस्तां किमन्यत्।।)–शृङ्गारमञ्जरी–४/३

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४७

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ८२

वसन्ततिलका–

वसन्ततिलका महारानी की परिचारिका एवं शृङ्गारमञ्जरी की अन्तरंग सहेली है। वह सदैव सेवाकार्य में सन्नद्ध रहती है, तभी राजा से उसने कहा कि–'सेवक के लिए महाराज के नयनपथ में आते रहने के अलावा और क्या प्रयोजन हो सकता है।'[१] स्वाभिभक्ति में वह किसी प्रकार की कभी नहीं आने देती। नायिका के प्रति उसका प्रेम अटूट है। वह नायिका के मरने से पहले खुद मरने के लिए तैयार है।[२] नायक एवं नायिका, इन दोनों के अनुराग बढ़ाने एवं मिलाने के लिए वह सदा तत्पर रहती है।

वसन्ततिलका कार्यों का सम्पादन कुशलतापूर्वक करती है। एक ओर वह महारानी की परिचारिका है, तो दूसरी ओर शृङ्गारमञ्जरी की अंतरंग सहेली, किन्तु वह अपने दोनों ही कर्तव्यों का चतुरतापूर्वक निर्वाह करती है। वह अत्यन्त चतुर है। राजा द्वारा किसी प्रियजन के विरह से पीड़ित अवस्था का वर्णन करने पर वह कहती है कि–"अपनी हालत वैसी न होने की वजह से, जब किसी को दूसरों के मनोभावों का प्रत्यक्ष नहीं होता तो, तब फिर आपको दूसरे की विरहावस्था कैसे ज्ञात हुई।"[३] एक ही बार कही बात को याद रखने की उसमें बड़ी क्षमता है, जैसाकि राजा ने खुद उसके विषय में आश्चर्यपूर्वक कहा है।[४] वह व्यावहारिक सहजबुद्धि की धनी है, माधविका को नायिका के स्थान पर बैठाकर नायिका को कुशलतापूर्वक राजा के पास ले जाती है। कारागार में बंदी होकर भी, नायिका की रक्षा का सन्देश राजा के पास भेजती है। वह समझदार है, नायक-नायिका को एकान्त देने के उद्देश्य से लतामण्डप के बाहर ही रह जाती है, जिस पर राजा कहता

---

१. वसन्तलिका–देअस्स णअणमग्गाणुहवादो किं अण्णं सेवअजस्स?
(देवस्य नयनमार्गानुभवात् किमन्यत् सेवकजनस्य?)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १६

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६८

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २१

४. राजा–(स्वागतम्)–अहो, एकवारुच्चारिअग्गहणसामच्छं।
(अहो! एकवारोच्चारितग्रहणसामर्थ्यम्।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ २२

है, कि–"समझदार से कुछ भी कहना नहीं पड़ता।"[१]

वसन्ततिलका रसशास्त्र की मर्मज्ञ है। वह विदूषक के सारे प्रश्नों का यथोचित उतर देती है एवं अंततः विदूषक को निरुत्तर कर विजयी होती है। उसका दृष्टिकोण आशावादी है। वह अपने आपको नगण्य नहीं समझती। उसे विश्वास है कि वह नायक-नायिका के मिलनरूपी कार्य को सम्पादित कर सकती है।[२] वह व्यंग्य बाण छोड़ने में सिद्धहस्त है, जो विदूषक के स्वाभिमान को चुभने लगता है।[३] उसके हृदय में दया एवं गुणों के प्रति आदर है, तभी वह नायिका को राजा से मिलाने का प्रयास करती है। वह दूती का कार्य बखूबी सम्पादित करती है एवं शृङ्गारमञ्जरी द्वारा रचित पद्य को राजा के पास पहुँचाती है।

प्रस्तुत सट्टक में वसन्ततिलका की अपनी विशेषताएँ हैं, वह कथानक को आगे बढ़ाने में पर्याप्त सहायक हुई है।

चारुभूति–

चारुभूति राजा राजशेखर का मन्त्री है। यद्यपि चतुर्थ जवनिकान्तर में रङ्गमञ्च पर इसका पदार्पण होता है, किन्तु लक्ष्य प्राप्ति में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इसी के द्वारा शृङ्गारमंजरी राजशेखर के लिए लाकर राजमहल में रखी गयी है, जिससे राजा से इसका विवाह हो सके एवं राजा चक्रवर्ती राजा बन सके। इस प्रकार उसने अपनी बुद्धिमत्ता, स्वामिभक्ति एवं आदर्श मन्त्रीत्व को प्रमाणित किया है। इसके द्वारा योग्यतापूर्वक राज्य संचालन करने के ही परिणाम स्वरूप राजा निश्चिन्त होकर विलासमय जीवन व्यतीत कर रहा है। इस प्रकार चारुभूति का एक आदर्श मन्त्री के रूप में सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ८५
२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६८
३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४४

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की पात्र व्यवस्था का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी दोनों की सट्टकों में कथानक के अनुरूप पात्रों का गुम्फन हुआ है। पात्रों का चरित्र सट्टक के लक्षणों के सर्वथा अनुरूप चित्रित किया गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर दोनों ही सट्टकों में पात्रों की व्यवस्था एक जैसी है। नायक, ज्येष्ठा नायिका, कनिष्ठा नायिका, विदूषक एवं नायिका की सहेली के रूप में देवी की परिचारिका दोनों ही सट्टकों की प्रमुख पात्र हैं। कर्पूरमञ्जरी सट्टक में फलप्राप्ति हेतु जो कार्य भैरवानन्द द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया गया है, लगभग वही कार्य शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में चारुभूति मन्त्री द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया गया है। दोनों ही सट्टकों में कुछ गौण पात्रों की व्यवस्था है, जो कथा के विकास एवं मोहक प्रस्तुति में महत्वपूर्ण भूमिकायें करते हैं। दोनों सट्टकों के समरूप पात्रों की तुलनात्मक समीक्षा प्रसङ्गोपात्त है।

नायक—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक का नायक चन्द्रपाल एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का नायक राजशेखर, दोनों ही उस परम्परा की उपज है, जिसके प्रारम्भिक रूप रत्नावली जैसी नाटिकाओं में उपलब्ध होता है। लगभग एक ही तरह का कार्य-व्यवहार, रूप-रंग, गुण इत्यादि के दर्शन दोनों सट्टकों के नायकोंमें होते हैं। दोनों ही नवयौवना नायिका पर मुग्ध हैं। अपने प्रेम को लेकर दोनों ही ज्येष्ठा नायिका से भयभीत हैं। विदूषक दोनों का ही प्रिय मित्र एवं नर्म सचिव है। चन्द्रपाल के पास नायिका प्राप्ति के लिए भैरवानन्द के रूप में तन्त्र-मन्त्र की शक्तियाँ हैं, जो प्रारम्भ से ही उसका कार्य सम्पादित कर रही हैं। किन्तु राजशेखर के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जिससे वह दैव की अपेक्षा कर्तव्य पर अधिक विश्वास करता है। वैसे दोनों के ही कार्यों का सम्पादन दैवीय शक्तियों के सहयोग से ही हो पाता है, एक के कार्य सम्पादन में भैरवानन्द की दैवीय शक्ति काम करती है, तो दूसरे के

कार्य सम्पादन में मणिमाली पार्षद द्वारा की गयी भविष्यवाणी काम आती है। दोनों ही सट्टकों में नायक के चरित्र को बहुविध उकेरने का प्रयास सराहनीय है।

नायिका—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की नायिका कर्पूरमञ्जरी एवं शृंङ्गारमञ्जरी सट्टक की नायिका शृंङ्गारमञ्जरी, दोनों ही अनुपम सुन्दरी के रूप में चित्रित हैं, जिनके रूप माधुरी पर उनके नायक मोहित हैं। एक योगबल से राजा के सामने उपस्थित की जाती है, तो दूसरी स्वप्न में अपने नायक को दिखती है, जिसे वास्तव में नायक का मन्त्री राजमहल में रखने की व्यवस्था कर चुका है। दोनों को ही अपने सगे-सम्बन्धियों या अपने अतीत की चिन्ता नहीं है। दोनों सट्टकों में नायिका के लिए प्रयुक्त अथवा नायिकाओं द्वारा प्रयुक्त शब्दराशियों में ही अन्तर है, किन्तु उनके पीछे छिपा उनका चरित्र एकरूपता लिए हुए है। नायिकाओं के चित्रण में रत्नावली सदृश प्रारम्भिक नाटिकाओं के नायिकाओं की छाप दिखाई पड़ती है।

ज्येष्ठा-नायिका—

दोनों ही सट्टकों में ज्येष्ठा नायिकाओं विभ्रमलेखा एवं रूपलेखा का समावेश एक ही जैसे कार्य के सम्पादन हेतु किया गया है। दोनों से ही उनके नायक कनिष्ठा नायिका के प्रति अपने प्रेम को लेकर डरते हैं। दोनों ने ही कनिष्ठा नायिका एवं राजा के प्रेम की बातें जानकर नायिका को बन्दी गृह में डाल दिया है।

इन दोनों के चरित्रों में सूक्ष्म अन्तर भी परिलक्षित होता है। विभ्रमलेखा, घनसारमञ्जरी से महाराज का विवाह दक्षिणास्वरूप और वह भी उनके चक्रवर्तित्व के लोभ में करवाती है, साथ ही इसका उसे भान नहीं है कि घनसारमञ्जरी ही कर्पूरमञ्जरी है, जिसे वह बन्दीगृह में बन्द कर चुकी है। कर्पूरमञ्जरी से महाराज की शादी के लिए कदाचित् वह कभी भी तैयार नहीं होती, इसीलिए भैरवानन्द द्वारा, कर्पूरमञ्जरी को घनसारमञ्जरी के छद्म रूप में प्रस्तुत करना पड़ा, अन्यथा

वह राजा के विवाह हेतु कर्पूरमञ्जरी के लिए भी दक्षिणा मांग सकता था। दूसरी तरफ शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की महारानी रूपलेखा का चरित्रांकन, एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में हुआ है। शृङ्गारमञ्जरी से महाराज की शादी करवाने का निश्चय करके वह कोई प्रतिदान नहीं दे रही है, और न ही उसे महाराज के चक्रवर्तित्व का लोभ है। अपितु वह इसे अपना पतिव्रता धर्म मानकर स्वीकृति प्रदान करती है। यह तो उसे बाद में पता चलता है कि इस विवाह सम्बन्ध से महाराज चक्रवर्तित्व को प्राप्त करेंगे। विभ्रमलेखा की अपेक्षा रूपलेखा अधिक विनम्र एवं शिष्ट जान पड़ती है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के अंतिम चरण में, जहाँ रूपलेखा नायिका के प्रति अपने व्यवहार के लिए लज्जित है एवं उससे क्षमा मांगती है, वहीं कर्पूरमञ्जरी सट्टक में विभ्रमलेखा ने ऐसा कुछ भी नहीं किया है, एवं अपने परिचरों के साथ सबसे पहले मंच से चली गयी है। इस प्रकार रूपलेखा का चरित्र अधिक प्रभावपूर्ण है।

विदूषक–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक के विदूषक कपिञ्जल एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के विदूषक गौतम दोनों के चरित्र में पूर्णतः एकरूपता है। दोनों ही नायक के विश्वस्त मित्र, विनोदी एवं बुद्धिमान हैं। दोनों ने ही बहुविध अपने कार्यों का सम्पादन करते हुए, अपने वचनों एवं भावभंगिमा द्वारा हास्य पैदा कर, उल्लास में वृद्धि की है। वे दोनों केवल हास्य के जनक ही नहीं अपितु कथानक को गति प्रदान करने में सहायक हैं। दोनों ही विदूषक अपने मूर्खतापूर्ण कार्यों से पाठकों का मनोरंजन ही नहीं करते, अपितु कतिपय स्थलों पर बुद्धिमत्ता का परिचय भी देते हैं। दोनों का ही चरित्रांकन प्रशंसनीय है।

प्रमुख सहायक पात्र–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में भैरवानन्द की जो भूमिका है, लगभग वही भूमिका शृङ्गारमञ्जरी सट्टक

में अमात्य चारुभूति की है। दोनों को ही यह विदित है कि–नायिका से शादी के उपरान्त राजा चक्रवर्तित्व को प्राप्त करेगा। अतः दोनों ने ही नायिकाओं को राजा के महल तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है, किन्तु दोनों की योजनाओं में पर्याप्त अन्तर है। नायक-नायिका के विवाह रूपी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु, भैरवानन्द जहाँ तन्त्र-मन्त्र का सहारा लेते हुए प्रत्यक्ष रूप से कार्य सम्पादन करता है, वहीं चारुभूति की योजना कर्म पर आधारित एवं गुप्त है। यही कारण है कि जहाँ भैरवानन्द प्रथम जवनिकान्तर में ही रंगमञ्च पर उपस्थित हो जाता है एवं अपनी सामर्थ्य का उद्घाटन करता है, वहीं चारुभूति अंतिम जवनिकान्तर के अंतिम चरण में उपस्थित होता है, एवं वहाँ यह प्रकट हो पाता है, कि–यह सब कार्य उसकी गुप्त योजना का परिणाम है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में विचक्षणा एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में वसन्ततिलका प्रमुख सहयोगी स्त्री पात्र हैं। उन दोनों ने ही महारानी की परिचारिका का कार्य सम्पादन करते हुए, नायिका की सखी की भूमिका का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। दोनों ही नायक एवं नायिका के मिलन के लिए प्रयासरत रही हैं। यदि दोनों के कार्यों का मूल्यांकन करें तो वसन्ततिलका विचक्षणा से बढ़कर प्रतीत होती है। वह अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है। वह पूरे कथानक में रची बसी है। वसन्ततिलका की अपनी विशेषतायें हैं, विचक्षणा उस स्तर तक नहीं पहुँच पायी है।

दोनों ही सट्टकों में अन्य अनेक पात्रों का आवश्यकतानुसार समावेश किया गया है–जो यद्यपि अल्प समय के लिए रंगमञ्च पर उपस्थित होते हैं, किन्तु इनका महत्त्व कम नहीं है। कथा के स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनावश्यक पात्रों के भार का दोनों में ही अभाव है। निःसन्देह दोनों नाट्यकारों की पात्र संयोजना अत्यन्त मार्मिक, कथावस्तु के अनुरूप तथा श्लाघनीय है। इतना सब होने के बावजूद यह कहा जा सकता है कि–शृङ्गारमञ्जरी में पात्रों के चरित्रांकन पर जितना अधिक बल है, उतना कर्पूरमञ्जरी में नहीं दिखता।

●●●

पञ्चम-अध्याय

रस-विवेचन

नाट्य में रस की स्थिति

सट्टक में रस योजना

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

- शृङ्गार रस
- हास्य रस
- अद्भुत रस
- भाव

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

- शृङ्गार रस
- हास्य रस
- अद्भुत रस
- भाव

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में रस परिपाक का तुलनात्मक परिशीलन

रस-विवेचन

नाट्य में रस की स्थिति

रस के सम्बन्ध में आचार्य भरत ने कहा है–'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' अर्थात् काव्य में प्रयुक्त अथवा नाटकादि अभिनय के द्वारा प्रदर्शित विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भावों के द्वारा, श्रोताओं अथवा दर्शकों के हृदय में परिवर्तनशील रति आदि स्थायी-भाव आस्वाद्य होता है, तो वही रस कहलाता है।

वस्तु, नेता एवं रस तीनों ही 'रूपक' के 'भेदक-तत्व' हैं। यद्यपि रूपक में इनका स्थान समान है, तथापि रूपक का प्राणतत्व होने के कारण वस्तु एवं नेता की अपेक्षा रस का अधिक महत्त्व है। वस्तुतः रसोद्रेक करना ही नाट्य का लक्ष्य है। भरत से लेकर पश्चाद्वर्ती प्रायः सभी आचार्यों ने रस के महत्त्व को स्वीकार किया है। भरतमुनि के अनुसार–"न हि रसादृते कश्चित् अर्थः प्रवर्तते।" आचार्य क्षेमेन्द्र रससिद्धि की स्थिरता को ही काव्य का प्राणतत्त्व बताते हैं।[१] आचार्य आनन्दवर्धन रस को ही काव्य में सर्वाधिक प्रामुख्य प्रदान करते हैं–

मुख्या व्यापारविषयाः सुकवीनां रसादयः।
तेषां निबन्धने भाव्यं तैः सदैवाप्रमादिभिः।।
नीरसस्तु प्रबन्धो यः सोऽपशब्दो महान् कवेः।
स तेनाकविरेव स्यादन्येनास्मृतलक्षणः।।[२]

श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्य-काव्य में रस को अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक स्थान प्राप्त है।

---

१. काव्यानुशासन, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, पृष्ठ ३५२

२. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ २१७

सर्वप्रथम नाट्य के प्रसङ्ग में ही रस की उद्भावना की गयी थी। समयमातृकाचार्य ने, विभिन्न रसों की, वाचिक रस, नेपथ्य रस एवं स्वाभाविक रस के रूप में उपस्थिति स्वीकार की है। इनमें 'वाचिक-रस' श्रव्य काव्य में, 'नेपथ्य-रस' चित्रादि में एवं 'स्वाभाविक रस' मूकाभिनय आदि में वर्णित होता है।[१] जब कि रूपक में रस इन सभी रूपों में समन्वित रूप से प्राप्त होता है। रूपक में निहित वस्तु के प्रमुख स्रोत–पुराण, इतिहास आदि ग्रन्थ होते हैं जिनमें वृत्त अधिक विस्तृत रूप में होता है। रूपककार इस विस्तृत इतिवृत्त में से संक्षिप्त वृत्त लेकर, उसमें नीरस अंश का परित्याग कर अथवा अर्थोपक्षेपकों के माध्यम से उसकी सूचना देकर केवल सरस वृत्त को ही अंकों में निबद्ध करता है।[२]

रूपक में निहित वस्तु स्वरूप को, अभिनेता अपने सात्विक, वाचिक आदि अभिनयों से, अनुकार्य का अनुकरण करते हुए प्रस्तुत करता है। यदि यह अनुकरण रसशून्य हो तो पूर्णतया उपहासपूर्ण हो जायेगा। इस प्रकार रूपककार पर रस निर्वाह का बहुत बड़ा दायित्व रहता है। आचार्य आनन्दवर्धन के शब्दों में–'अभिनेयार्थे तु सर्वथा रसबन्धेऽभिनिवेशः कार्यः।'[३]

नाट्य में पुरुषार्थ चतुष्टय रूप फल की प्राप्ति हेतु शृङ्गार आदि रस अलग-अलग रूप में उपयोगी होते हैं। काम स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति नायक को नायिका के मिलन के रूप में होती है। इसके प्रणय प्रसङ्ग में ही शृङ्गार रस की पुष्टि होती है। अतः आचार्य शारदातनय शृङ्गार रस को कामस्वरूप पुरुषार्थ हेतु उपयोगी स्वीकार करते हैं।[४] हास्य रस, शृङ्गार रस का अनुगामी है। यह काम प्रधान होता है, अतः यह काम स्वरूप पुरुषार्थ हेतु, शृङ्गार रस की भाँति उपयोगी रस है।[५] जहाँ शृङ्गार एवं हास्य रसों में आलम्बन एवं आश्रय को परस्पर भाव की अपेक्षा रहती है, वहीं करुण रस में आलम्बन का अभाव रहता है। अतः आलम्बन एवं आश्रय को पारस्परिक भाव की अपेक्षा नहीं

१. ना०शा०, प्रथम भाग, भूमिका, साहित्य अकादमी समिति, पृष्ठ ५२
२. दशरूपक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृष्ठ १६६
३. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ १८५
४. भाव प्रकाशन, गायकवाड़ ओ०सं०सी०, बड़ौदा, पृष्ठ ७७
५. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३

रहती। अतएव आचार्य अभिनवगुप्त ने करुण रस को निरपेक्ष भाव वाला रस माना है।[१]

'अर्थ' स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति शत्रु-दलन द्वारा ही संभव है, जो नायक की वीरता द्वारा सम्पादित होता है। अतः वीर रस को अर्थोपयोगी बताया गया है।[२] रौद्र रस भी कहीं-कहीं अर्थोपयोगी होता है। आचार्य शारदातनय के अनुसार–''यदि 'वीर' एवं 'रौद्र रस' किसी की रक्षा हेतु हों तो, वह रस धर्मोपयोगी होता है।[३] अभिनवगुप्त भी 'रौद्र रस' को अर्थ प्रधान स्वीकार करते हैं।[४]

'धर्म' स्वरूप पुरुषार्थ, नायक को सज्जनों की रक्षा, प्रतिनायक के दुष्ट-कार्यों के विरोध एवं उनके विनाश द्वारा प्राप्त होता हैं। इस प्रकार वीर रस का परिपाक धर्मपरक कार्यों हेतु ही होता है। कहीं पर इसी ब्याज से, अर्थ स्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति भी हो जाती है। वीर रस का वीरत्व भयभीतों को अभय प्रदान करता है। अतः भयानक रस भी बीर रस का आश्रित होने के कारण धर्म पुरुषार्थ हेतु उपयोगी है।

'मोक्ष' स्वरूप पुरुषार्थ में, शान्त एवं वीभत्स रस उपयोगी होते हैं। परन्तु मोक्ष स्वरूप पुरुषार्थ ब्राह्मण में ही सम्भव है, अतः नाट्य में इसका प्रधानरूपेण वर्णन असम्भव है।[५] इस प्रकार विभिन्न रस किसी-न-किसी पुरुषार्थ की सिद्धि करते हैं।

स्पष्ट है, कि रस का स्थान रूपक में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतएव रूपक में रसबोध हेतु हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए। आचार्य आनन्दवर्धन ने रसाभिव्यक्ति हेतु पाँच बातों का ध्यान रखना आवश्यक बताया है–

(१) विभाव, स्थायी-भाव, अनुभाव और सञ्चारीभाव के औचित्य से सुन्दर ऐतिहासिक अथवा कल्पित कथा शरीर का निर्माण।

---

१. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३
२. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३
३. भाव-प्रकाशन, गायकवाड़ ओ०सं०सी०, बड़ौदा, पृष्ठ २०८
४. ना०शा०–प्रथम भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ ६१३
५. ना०शा०–द्वितीय भाग, का०हि०वि०वि०, वाराणसी, पृष्ठ १५०८

(२) उस कथा का रसानुकूल संस्करण।

(३) रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से सन्धि और सन्ध्यङ्गों की रचना।

(४) यथा स्थान रस के उद्दीपन एवं प्रशमन की योजना और प्रधान रस का आदि से अंत तक अनुसंधान।

(५) अलङ्कारों का रसोचित सन्निवेश।[१]

तात्पर्य यह कि कथा शरीर के निर्माण में, स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारीभाव के औचित्य का सतत् ध्यान रखना चाहिए। नायकादि की प्रकृति के अनुकूल ही उत्साहादि भावों का अभिव्यञ्जन होना चाहिए। यथा उत्तम प्रकृति के राजा का उत्तम प्रकृति की नायिका के साथ ग्राम्य-संभोग वर्णन नितान्त अनुचित होता है, क्योंकि यह माता-पिता के संभोग वर्णन के समान नितान्त असभ्य माना गया है।[२] कहने का सार यह है कि रसभंग का सबसे बड़ा कारण अनौचित्य है। इस सम्बन्ध में, भामह के औचित्य विषयक मत को, आनन्दवर्धन ने स्वीकार करते हुए कहा है–

'औचित्यादृते नान्यद्रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।।'[३]

इतिवृत्त चयन के सम्बन्ध में भी औचित्य का सदा ध्यान रखना चाहिए। विभावादि के अनुकूल चुना गया इतिवृत्त ही रस का व्यञ्जक बनता है। नाटकीय सन्धियों एवं सन्ध्यङ्गों की योजना भी रस की दृष्टि से ही करनी चाहिए। रस का यथाअवसर उद्दीपन एवं प्रशमन भी होना चाहिए और आरम्भ किये हुए अंगीरस को मन्द पड़ता हुआ देखकर उसका पुनः-पुनः अनुसंधान करना चाहिए। अंग रसों की योजना इस प्रकार करनी चाहिए कि वे अंगी रस के निर्वाह में बाधक न हों।[४] अलङ्कारों के यथेच्छ प्रयोग की पूर्ण शक्ति होने पर भी रस के अनुकूल ही अलंकारों की योजना करनी चाहिए।

१. ध्वन्यालोक–३/१०-१४
२. वृहत्रयी रस विवेचन, पृष्ठ ३७३
३. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ १६०
४. ध्वन्यालोक–३/२१-२२

रसाभिव्यक्ति के इच्छुक कवि के लिए काव्य में रस विरोधी तत्वों का परिहार भी आवश्यक है। आनन्दवर्धन ने रस-भंग के पाँच हेतु बताये हैं–

(१) विरोधी रस के विभावादि का उपादान करना।

(२) रस से सम्बद्ध होने पर भी अन्य वस्तु का अधिक विस्तार से वर्णन करना।

(३) असमय में रस को समाप्त कर देना अथवा अनवसर में उसका प्रकाशन करना।

(४) रस का पूर्ण परिपोष हो जाने पर भी, बार-बार उसका उद्दीपन करना।

(५) वृत्ति अर्थात् व्यवहार का अनौचित्य।[१]

प्रस्तुत रस के विरोधी विभाव, अनुभाव तथा सञ्चारी-भाव का ग्रहण करना, रस-भंग का हेतु होता है। प्रस्तुत रस से यथाकथञ्चित सम्बद्ध भी वस्त्वनन्तर का विस्तार के साथ वर्णन करना भी रस-भंग का हेतु बनता है। जैसे विप्रलम्भ शृंङ्गार के प्रसंग में पर्वतादि का यमकादि अलंकारों से युक्त सविस्तार वर्णन करना। अनवसर में रस का विराम भी रसभंग का कारण बन जाता है एवं अनवसर में रस का प्रकाशन वैरस्य लाता है। जैसे संग्राम छिड़ जाने पर शृङ्गार रस का प्रकाशन करना। परिपुष्ट हुए रस का पुनः पुनः उद्दीपन भी बार-बार के स्पर्श से मुरझाये हुए पुष्प के समान रसापकर्ष का कारण बन जाता है। व्यवहार का अनौचित्य भी रसभङ्ग का कारण है, जैसे नायिका का नायक के प्रति अपने भ्रूभंग आदि के द्वारा अभिलाष व्यक्त करना उचित है, किन्तु ऐसा न करके, यदि वह स्वयं संभोग के अभिलाष को कहने लगे तो यह व्यवहार का अनौचित्य होगा। इसी प्रकार धीरोदात्त नायक के कातर-पुरुषोचित अधैर्य प्रदर्शन भी वृत्ति का अनौचित्य होगा।

सट्टक में रस योजना

काव्य जहाँ श्रवण मार्ग से हृदय को आकृष्ट करता है, वहीं नाट्य नेत्र मार्ग से हृदय को चमत्कृत कर अपना प्रभाव जमाता है। किसी वस्तु को देखने का आनन्द सुनने की अपेक्षा कहीं अधिक होता

१. ध्वन्यालोक, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृष्ठ २१३

ही है। वेशभूषा, नेपथ्य, साज-सज्जा आदि उचित संविधानों द्वारा नाट्य में रसानुभूति के लिए वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसमें कल्पना की आवश्यकता नहीं रहती, यही कारण है कि साधारण व्यक्तियों के लिए भी काव्य की अपेक्षा नाट्य का आकर्षण अधिक होता है और उसमें भी, रूपकों की अपेक्षा उपरूपकों का आकर्षण विशेष प्रभावशाली है, क्योंकि यह लोकजीवन के काफी निकट होता है। रूपकों में जहाँ वस्तु, नेता, रस आदि तत्वों की व्यवस्था शास्त्रीय मान्यताओं से बंधी होती है, इस कारण उसकी रसनीयता में कभी-कभी रुकावट या अवरोध उत्पन्न हो जाता है। वहीं उपरूपकों में स्वच्छन्दता होती है। यहाँ लोकाभिरुचि पर विशेष ध्यान दिया जाता है, यही कारण है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, वर्गों के लोगों की प्रकृति, अभिरुचि, परम्पराओं आदि के अनुसार लोक-नाट्य के अनेक रूप विकसित हुए एवं होते रहे हैं। यह प्रवृत्ति आज भी लोकजीवन के नाटक, नौटंकी, रासलीला, रामलीला, खेल-तमाशों, पुतलिका नृत्य आदि रूपों में दिखाई पड़ती है। उपरूपकों में चित्रित समाज, विषय-वस्तु, भाषा आदि लोकजीवन से इतना अधिक साम्य रखते हैं, जिससे दर्शक वर्णित विषय से तादात्म्य स्थापित कर लेता है । इसके दर्शक को ऐसा लगता है कि यह बिल्कुल हमारी या मेरे अपनों की ही बात दिखलाई पड़ रही है। परिणामतः रसानुभूति में साधारणीकरण की प्रक्रिया निर्विघ्न, शीघ्र एवं पूर्ण होती है।

सट्टक में रस का जहाँ तक प्रश्न है, इसमें भी अन्य रूपकों की भाँति लोकाभिरुचि का ध्यान रखते हुए उचित परिवेश, दृश्य विधान एवं भाषा का आश्रय लिया जाता है। यद्यपि इसमें लोकजीवन का चित्रण न होकर राजा के अन्तःपुर के शृङ्गारिक परिवेश को प्रस्तुत किया जाता है। निश्चय ही वह सामान्य व्यक्ति के लिए अधिक आकर्षक विषय रहा होगा। मध्यकाल में जब राजपरिवार एवं जनसामान्य के बीच काफी दूरी थी, वैसे समय में, राजपरिवार का परिवेश कैसा है? वहाँ लोगों की दिनचर्या क्या होती है? वहाँ किस प्रकार की घटनायें घटती रहती हैं? इत्यादि के प्रति लोकसामान्य का आकर्षित होना स्वाभाविक है। सट्टक का जन सामान्य की भाषा प्राकृत में निबद्ध

होना रस की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही जनसामान्य के लिए सट्टक को पूर्णतः हृदयंगम कराने में प्रमुख सहायक होता है।

उपलब्ध सट्टकों की विशेषताओं को देखते हुए नाट्य लक्षणकारों ने सट्टक के रस सम्बन्धी मान्यताओं को सुनिश्चित कर दिया है। सट्टक नाटिका की भाँति मुख्यतः नायक एवं नायिका के प्रणय वर्णन से सम्बद्ध होता है, अतः सट्टक के अन्तर्गत अंगीरस के रूप में शृङ्गार रस के वर्णन का विधान है। सट्टक में कनिष्ठा नायिका के अतिरिक्त ज्येष्ठा नायिका का वर्णन होता है। नायक धीर-ललित होता है, अतः कुपित-स्त्री-प्रसादन हेतु अप्रधान रूप से शृङ्गार रस के सहायक रूप में हास्य भी वर्णित होता है। नायक नृप होता है, अतएव शौर्य आदि वीरोचित गुणों से उसका सम्बद्ध होना स्वाभाविक है। साम्राज्य लाभ आदि के ब्याज से नायक को अर्थस्वरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति भी होती है, अतः सट्टक में अप्रधान रूप से वीर एवं रौद्र रस का भी वर्णन हो सकता है। वैसे नाट्यलक्षणरत्नकोशकार सागरनन्दी ने सट्टक में रौद्र, वीर, भयानक एवं वीभत्स रस को अस्वीकार किया है।[१] सट्टक में कहीं-कहीं माया, इन्द्रजाल आदि द्वारा असद्वस्तु स्थापन आदि के माध्यम से अद्भुत रस का भी समावेश होता है। आचार्य विश्वनाथ सट्टक में अद्भुत रस की योजना को आवश्यक मानते हैं।[२]

रस का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने के उपरान्त, क्रमशः विवेच्य कृतियों में रसों का प्रायोगिक स्वरूप अवलोकनीय है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर रसवादी आचार्य हैं। इन्होंने स्पष्टतः कहा है, कि–रस काव्य की आत्मा है।[३] अतएव वह अपनी कृति को आत्म रूप रस से सजीव किये बिना कैसे रह सकते हैं।

१. नाट्यलक्षणरत्नकोश, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
२. सट्टकं.................प्रचुरश्चाद्भुतोरसः। सा०द०–६/२७६
३. ....रस आत्मा,...........। काव्यमीमांसा, तृतीय अध्याय, (पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत), पृष्ठ १५

कर्पूरमञ्जरी में कवि ने रस के परिपोष पर विशेष ध्यान दिया है। इसमें शृङ्गार, हास्य एवं अद्भुत रसों की अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है, जिनका विवेचन क्रमशः प्रस्तुत है।

शृङ्गार रस–

सट्टक के लक्षणानुसार कर्पूरमञ्जरी का अंगी रस शृङ्गार है। यद्यपि अन्य रसों की छटा भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है, किन्तु चन्द्रपाल एवं कर्पूरमञ्जरी के माध्यम से इसमें मुख्यतः शृङ्गार रस का ही सन्निबन्धन हुआ है। शृङ्गार रस के उद्रेक के लिए सट्टक के प्रारम्भ में ही काम एवं रति की सूरत क्रीड़ाओं को नमस्कार अर्पित किया गया है। यहाँ वस्तुतः काम एवं रति के ब्याज से चन्द्रपाल एवं कर्पूरमञ्जरी के प्रेम को ध्वनित कराना ही कवि का कथ्य है।

नायक-नायिका के परस्पर आकर्षण के प्रसिद्ध हेतुओं–श्रवण, चित्र, स्वप्न एवं प्रत्यक्ष दर्शन में से प्रस्तुत सट्टक में, जिस किसी रूप में चारों विद्यमान हैं। विदूषक द्वारा अपूर्व स्त्री रत्न के विषम में सुनकर नायक को उसके प्रति स्पृहा होती है, अतः भैरवानन्द से उसे उपस्थित करने का आग्रह करता है। नायिका का प्रत्यक्ष होने पर उसके रूप माधुर्य पर मोहित हो जाता है। उसका वियोग होने पर वह चित्रफलक पर नित्य उसका चित्र बनाता है, जो कि–द्वितीय जवनिकान्तर में प्रतिहारी के कथन से ध्वनित हो रहा है। वियोग की दशा में स्वप्न में नायिका को वह देखता है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में शृङ्गार रस के संभोग एवं विप्रलम्भ दोनों ही भेदों को मार्मिक ढंग से अभिव्यञ्जित किया गया है। इनमें विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यञ्जना अपेक्षाकृत अधिक हुई है।

संभोग शृङ्गार–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में संभोग शृङ्गार की अभिव्यञ्जना के अनेक सुन्दर स्थल कवि ने सन्निवेशित किये हैं। कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं।

(क) प्रथम जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी के रूप माधुर्य पर मोहित नायक का कथन है, कि–.....एदाए–

तहा रमणवित्थरो जह ण ठाइ काञ्चीलआ

तहा अ थणतुंगिमा जह ण एह णाहिं मुहं।

तहा णअणबंहिमा जह ण किंपि कण्णुप्पलं

तहा अ मुहमुज्जलं दुससिणी जहा पुण्णिमा।।[१]

अर्थात् इस नायिका की जंघायें इतनी चौड़ी हैं कि करधनी उन पर पर्याप्त ही नहीं होती, स्तन इतने ऊँचे हैं कि मुख नाभि तक आ ही नहीं सकता, आँखें इतनी बड़ी हैं कि कानों में कर्णोत्पल की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती और मुख तो इस तरह कान्तिमान है, जैसे कि पूर्णमासी रात्रि में दो चन्द्रमा निकल आये हों।

यहाँ नायिका के प्रति नायक का अनुराग दिखलाया गया है। नायिका आलम्बन विभाव है। नायक आश्रय है। नायिका की जंघायें नेत्र एवं मुखकान्ति उद्दीपन विभाव है। अनुभाव यहाँ यद्यपि शब्दशः कथित नहीं है किन्तु स्पृहापूर्वक अवलोकन, दीर्घश्वास, खेद आदि अनुभाव हैं। इन विभावानुभाव व्यभिचारियों के संयोग से सामाजिक का स्थायीभाव रति उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त होता है।

(ख) काम संताप से व्यथित नायिका के पास पहुँचकर नायक द्वारा कहे गये वचनों में संभोग शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यञ्जना हुई है–

जिस्सा पुरौ ण हरिदा दलिया हलिद्दा

रोसाणिअं ण कणकं ण अ चम्पआइं।

ताइं सुवण्णकुसुमेहिं विलोअणाइं

अच्चेमि जेहिं हरिणच्छ! तुमंसि दिट्ठा।।[१]

अर्थात्, अपि हरिनी से नयनों वाली! तेरे सामने पिसी हुई हल्दी भी कुछ नहीं है, साफ किया

१. कर्पूरमञ्जरी–१/३४

२. कर्पूरमञ्जरी–३/२२

हुआ सोना भी तेरे सौन्दर्य के सामने तुच्छ है, चम्पा के फूल भी तेरी तुलना नहीं कर सकते। मेरी जिन आँखों ने तुझको देखा है, उनकी मैं सुवर्ण के फूलों से पूजा करूँगा।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है; नायक आश्रय है। नायिका के हरिणी के समान नेत्र उद्दीपन विभाव है। वेपथुः, दीर्घ-श्वास, स्वेद आदि अनुभाव हैं। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव 'रति' उद्‌बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

(ग) नायिका का हाथ पकड़कर नायक का कथन–

जे णवस्य तिउसस्स कण्टआ जे कदम्बमउस्स केसरा।

अज्ज तुज्झ करफंससंगिहि ते हुअंति मह अंगणिज्जिदा।।[१]

अर्थात्, त्रपुष नाम के फल में जो काँटे होते हैं अथवा कदम्ब के फूल में जो केसर होती है, ये सब तेरे हाथ का स्पर्श पाकर उत्पन्न हुए रोमाञ्च वाले मेरे अंगों के सामने कुछ भी नहीं है।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव है; नायक आश्रय है। पृष्ठभूमि में कथित चन्द्रोदय आदि उद्‌दीपन हैं; रोमाञ्च अनुभाव है। औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं, इनके संयोग से रति उद्‌बुद्ध होकर शृङ्गार रस की अभिव्यञ्जना करता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार–

विप्रलम्भ के बिना संयोग परिपुष्ट नहीं होता। कर्पूरमञ्जरी सट्‌टक विद्वत् समाज की इस मान्यता का सुन्दर निदर्शन है। कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का सुन्दर समायोजन किया है। कुछ प्रमुख उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(क) चित्ते चिहुट्‌ठइ ण खुट्‌ठइ सा गुणेसुं

सेज्जासु लोट्‌ठइ विसप्पइ दिम्मुहेसुं।

---

१. कर्पूरमञ्जरी–३/२४

बोलम्मि बट्टइ पअट्टइ कव्वबंधे

झाणेण तुद्टदि चिरं तरुणी चलाक्खी।।[१]

अर्थात्, चञ्चल नेत्रों वाली वह तरुण नायिका सर्वदा मेरे चित्त में बसी रहती है, उसके गुण सतत् मुझे याद आते रहते हैं, वह मेरे पास शय्या पर सोती हुई-सी प्रतीत होती है, मुझे हर तरफ वह चलती हुई दिखाई देती है, मेरे वचनों को सुनती है, मेरे सम्बन्ध में काव्यरचना करती है और मेरे ध्यान से कभी नहीं उतरती है।

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायिका के गुण आदि उद्दीपन विभाव, वेपथु, संताप आदि अनुभाव शब्दशः अकथित हैं। उन्माद व्यभिचारी भाव है। इनके संयोग से उद्बुद्ध स्थायी भाव रति शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति कराता है।

(ख) नायक के विरह में जल रही नायिका की स्थिति का वर्णन करने वाले निम्न पद्य में विप्रलम्भ शृङ्गार की अभिव्यञ्जना उत्कृष्ट कोटि की है–

णीसासा हारजद्ठीसरिसपसरणा चन्दणं फोडकारी

चन्दो देहस्स दाहो सुमरणसरिसी हाससोहा मुहम्मि।

अङ्गाणं पण्डुभाओ दिवससिकलाकोमलो किं च तीए

णिच्चं बाहप्पवाहा तुह सुहअ! कए होंति कुल्लाहिं तुल्ला।[२]

अर्थात्, हे सौभाग्यशालिन् ! तुम्हारे कारण कर्पूरमञ्जरी बड़ी गहरी साँसे लेती है, उसकी साँसे हारलता के समान विस्तार वाली हैं, चन्दन का रस उसके शरीर पर जलन उत्पन्न करता है, चन्द्रमा उसके देह को जलाता है, उसके मुख पर मुस्कराहट भी (मैं मर रही हूँ, मेरी याद रखना, इस तरह का) स्मरण सा कराती है, उसका शरीर पीला पड़ गया है, जैसे कि दिन के समय चन्द्रमा फीका-सा लगता है, उसके निरन्तर बहते हुए आँसू किसी कृत्रिम नदी की तरह लगते हैं।

---

१. कर्पूरमञ्जरी २/४

२. कर्पूरमञ्जरी २/१०

यहाँ नायक आलम्बन विभाव है, नायिका आश्रय है। गहरी साँसें लेना, शरीर संताप, शरीर का पीला पड़ना, अश्रु प्रवाह आदि अनुभाव हैं, यहाँ व्याधि नामक व्यभिचारी भाव है, रति स्थायी भाव है जो उद्‌बुद्ध होकर रस चर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

हास्य रस–

कर्पूरमञ्जरी में हास्य रस का बड़ा ही अनूठा चित्रण हुआ है। इसमें हास्य का आलम्बन विदूषक है। यह सट्टक में आरम्भ से लेकर अंत तक विद्यमान रहता है, अतः इसमें हास्य रस की झलक आद्योपान्त मिलती है। विदूषक की अनूठी उक्तियाँ सट्टक के संवादों को सजीव बना देती हैं। उसकी गर्वोक्तियाँ एवं पाण्डित्य प्रदर्शन, हास्य का वातावरण उपस्थित करते हैं। हास्य रस की सुन्दर अभिव्यक्ति के कुछ स्थल उदाहरणीय हैं–

(क) विदूषक :–भो! तुम्हाणं सब्वाणं मज्झे अहम् एक्को कालक्खरिओ जस्स में ससुरस्य ससुरो पण्डितघरे पुत्थि आइं बहंतो आसि!

चेटीः– (विहस्य) तदो आगदं अण्णएण पंडित्तएं।

विदूषक :–(सक्रोधम्) आ दासीए धूए भविस्सकुट्टणि! विल्लक्खणे! अविअक्खणे! ईदिसोऽहं मुक्खो जो तए बि उवहसिआमि?...[१]

अर्थात्, विदूषक कहता है–तुम सब में मैं ही एक मूर्ख हूँ, जिसके ससुर का ससुर भी पण्डितों के यहाँ पुस्तकें उठाता रहता था।

चेटी–(हंसकर) तब तो तुम वंश परम्परा से विद्वान ठहरे।

विदूषक–(क्रोध के साथ) अरे दासी की पुत्री, कुट्टिनी होने वाली, निर्लक्षण और मूर्ख! मैं क्या ऐसा मूर्ख हूँ कि तू भी मेरा उपहास करे।

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव है। चेटी, राजा, रानी आदि आश्रय हैं। कथित न होने पर

१. कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १८

भी विदूषक की भावभंगिमाएं, वस्त्रादि उद्दीपन विभाव हैं। हंसना अनुभाव है। गर्व एवं असूया व्यभिचारी भाव हैं। इन विभावानुभावव्यभिचारियों के संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव हास उद्‌बुद्ध होकर हास्य रस की अभिव्यक्ति करता है।

(ख) श्वेत वर्ण पुष्प की ओदन से एवं स्वच्छ विचकिल के फूल की भैंस के दही से दी गयी उपमा वाली विदूषक की कविता एवं तत्तसम्बन्धी वार्ता हास्य रस का सुन्दर उदाहरण है–

विदूषक–(पठति)– फुल्लक्कुरं कमलकूरसमं बहंति
जे सिंदुबारबिडबा मह बल्लभा दे।
जे गालिअस्स महिसीदहिणी सरिच्छा
ते किं च मुद्धबिअइल्लपसूणपुंजा।।–१/१९

विचक्षणा–णिअकंतारंजणजोग्गं दे बअणं।

विदूषक–ता उआरबअणे! तुमं पढ़।

देवी–(किञ्चत् स्मित्वा) सहि विअक्खणे...।[१]

अर्थात्, विदूषक कविता पढ़ता है–कलमों (नामक चावल) के भात की तरह श्वेत वर्ण के फूल जिन सिन्धुवार वृक्षों पर आते हैं, वे प्रिय हैं। विलोए हुए भैंस के दही के समान स्वच्छ विचकिल के फूल भी मुझे बहुत प्रिय हैं।

विचक्षणा–(तुम्हारी कविता) तुम्हारी पत्नी को प्रसन्न करने योग्य है।

विदूषक–अयि प्रियभाषिणी! तुम अपनी कोई कविता सुनाओ।

देवी–(हँसकर) सखि विचक्षणा...।

यहाँ विदूषक आलम्बन विभाव; देवी, विचक्षणा आदि आश्रय; विदूषक की भावभंगिमाएँ, वस्त्राभरण आदि उद्दीपन विभाव हैं, मुस्कुराना, हंसना आदि अनुभाव हैं। असूया आदि व्यभिचारी

१. कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १६-२०

भाव हैं। इनके संयोग से स्थायी भाव हास उद्‌बुद्ध होकर रसोद्रेक की स्थिति को प्राप्त होता है।

(ग) तृतीय जवनिकान्तर में विदूषक का स्वप्न वर्णन बड़ा ही सरस एवं विनोदपूर्ण है। राजा की स्मरपीड़ा एवं विदूषक की विनोदप्रियता का एक साथ चित्रण किया गया है, जो रोचक एवं परिहासपूर्ण है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक स्थलों पर विदूषक अपने हावभाव एवं चुटीले कथनों द्वारा हास्य रस की उद्‌भावना करने में सफल हुआ है।

अद्‌भुत रस–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अद्‌भुत रस का समावेश भी प्रचुर मात्रा में हुआ है, जिसका सट्टक में समायोजन आवश्यक माना जाता है। अद्‌भुत का पुट प्रारम्भ से ही मिलने लगता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

(क) भैरवानन्द के चमत्कारी कार्य के प्रसंग में अद्‌भुत रस की मनोरम अभिव्यक्ति हुई है। विदूषक एवं राजा के कहने पर भैरवानन्द विदर्भ नगर की राजकुमारी को अपने योगबल से उपस्थित कर देता है। यह घटना एवं राजकुमारी का सौन्दर्य दोनों ही विष्मयजनक हैं। अतः उसे देखते ही राजा कह उठता है–

अहह! अच्चरिअं! अच्चरिअं!

जं धोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो।
जं एक्कं सिचअंचलं ण्णिबसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा?[१]

१. कर्पूरमञ्जरी–१/२६

अर्थात्, इसकी आँखों से अंजन धुला हुआ है, इसीलिए इसकी आँखें लाल हैं, मुख पर अलकें विखरी हुई हैं, हाथ से अपने केशों को पकड़े हुई है और केशों से पानी की बूँदें टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढका हुआ है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इस योगीश्वर ने स्नान क्रीड़ा के बाद ही इस अपूर्व सुन्दरी को यहाँ पर उपस्थित किया है।

यहाँ नायिका आलम्बन; राजा आश्रय; नायिका को लाने की घटना एवं उसका सौन्दर्य उद्दीपन, स्पृहापूर्वक अवलोकन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एवं हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। उनके संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव विस्मय उद्‌बुद्ध होकर आस्वाद्य की स्थिति को प्राप्त करता है।

(ख) द्वितीय जवनिकान्तर में कर्पूरमञ्जरी द्वारा दोहद के प्रसंग में अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है। नायिका के प्रगाढ़ आलिंगन ने कुरबक वृक्ष में एकाएक फूल खिला दिया है, जिससे चकित होकर विदूषक कह उठता है–

भो! पेक्ख पेक्ख महिन्दजालं। जेण–

बालो वि कुरवअतरू तरुणीए गाढ़मुवगूढ़ो।
सहस त्ति कुसुमणिअरं मअणसरं विअ समुग्गिरइ।।[१]

राजा–ईदिसो ज्जेव दोहलअस्स प्पहावो।

अर्थात्, अरे इस जादू विद्या को देखो, जिससे कि–इस छोटे ही कुरबक वृक्ष पर इस सुन्दरी के प्रगाढ़ आलिंगन से एकाएक ही कामदेव के वाणों की तरह फूल निकलने लगे हैं।

राजा–दोहद का प्रभाव ही ऐसा है।

यहाँ कुरबक वृक्ष आलम्बन विभाव, विदूषक आश्रय, फूल खिलना उद्दीपन, नेत्र विकास आदि अनुभाव एवं हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभावादि के संयोग से स्थायी भाव विस्मय उद्‌बुद्ध होकर अद्‌भुत रस की अभिव्यक्ति करता है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी–२/४५

(ग) तिलक वृक्ष[१] एवं अशोक वृक्ष [२] के दोहद के प्रसंग में भी अद्भुत रस अभिव्यञ्जित हुआ है।

चतुर्थ जवनिकान्तर में महारानी द्वारा महाराज का विवाह कराने की बात सुनकर विदूषक आश्चर्यचकित होकर कहता है–"भो! किं इदं अकालकोहण्डपउणं?" राजा भी विस्मित है एवं सारंगिका से सविस्तार सुनता है, जिस कारण से महारानी ने महाराज के विवाह का निर्णय लिया है। यहाँ भी अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

भाव (अथवा भावध्वनि)–

प्रधानता से प्रतीयमान निर्वेदादि सञ्चारी तथा देवता, गुरु आदि के विषय में अनुराग एवं सामग्री के अभाव में रसरूप को अप्राप्त उद्‌बुद्धमात्र रति हास आदि स्थायी, ये सब भाव कहलाते हैं।[३] कर्पूरमञ्जरी में इन सभी प्रकार के भाव के उदाहरण प्राप्त होते हैं।

(क) देव विषयक रति का सुन्दर उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर में भैरवानन्द के इस कथन में मिलता है–

कप्पन्तकेलिभवणे कालस्य पुराणरुहिरसुरम्।
जअदि पिअन्ती चण्डी परमेट्ठिकवालचसएण।।[४]

अर्थात्, महाकालरूपी रुद्र के प्रलयकाल रूपी क्रीड़ा मंन्दिर में ब्रह्मा के कपाल रूपी प्याले से प्राणियों के रुधिर रूपी मद्य को पीती हुई चण्डी की जय हो।

यहाँ चामुण्डा के प्रति प्रेम प्रकट हो रहा है, अतः भाव ध्वनि है।

---

१. कर्पूमञ्जरी–२/४६
२. वही–२/४७
३. सञ्चारिणः प्रधानानि देवादिविषया रतिः।
उद्‌बुद्धमात्रः स्थायी च भाव इत्यभिधीयते।।–साहित्यदर्पण ३/२६०
४. कर्पूरमञ्जरी–४/१९

(ख) राजविषयक रति का उदाहरण द्रष्टव्य है–वैतालिक कहता है–

"जअ पुब्बदिअंगणाभुअंग! चंपाचंपककण्णऊर! लीलाणिञ्जिअराढ़देस! विक्कमक्कंतकामरूअ? हरिकेलीकेलिआरअ! अबमाणिअजच्चसुबण्णबण्ण! संब्बंगसुन्दरत्तणरमणिञ्ज! सुहाअ दे होदु सुरहिसमारंभो।"[१]

अर्थात्, पूर्वदिशा के स्वामी! चम्पानगरी का पालन करने वाले! राढ़देस को खेल-खेल में ही जीतने वाले! कामरूप देश के विजेता! हरिकेलि देश में विहार करने वाले, पराजित किये हुए लोगों में सुवर्ण की तरह चमकने वाले, सब अंगों के सौन्दर्य से युक्त हे राजन्! तुम्हारी जय हो, वसन्त ऋतु का आगमन तुम्हारे लिए सुखकर हो। यहाँ राजा के प्रति रति भाव व्यञ्जित हुआ है, अतः यह भाव ध्वनि का स्थल है।

(ग) प्रधानता से प्रतीयमान सञ्चारीभाव वाले भावध्वनि का उदाहरण प्रस्तुत है–भैरवानन्द कहता है–

दंसेमि तं पि ससिणं बसुहाबइण्णं थंभेमि तस्स वि रविस्स रहं णहद्धे।

आणेमि जक्खसुरसिद्धगणंगणाओ तं णत्थि भूमिबलए मह जं ण सद्धं।।[२]

अर्थात्, चन्द्रमा को भी पृथ्वी पर उतार कर दिखा सकता हूँ। सूर्य का भी आकाश मार्ग में रथ रोक सकता हूँ। यक्ष, सुर और सिद्धगणों की स्त्रियों तक को ला सकता हूँ। भूमण्डल पर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको मैं न कर सकूँ। यहाँ स्थायीभाव विस्मय को उद्‌बुद्ध करने योग्य कथन होने के बावयूद, भैरवानन्द का सब कुछ कर सकने की सामर्थ्य का अभिमान होने से गर्व नामक सञ्चारी भाव प्रधानता से व्यञ्जित हो रहा है, अतः यहाँ भावध्वनि है।

(घ) स्थायी भाव के उद्‌बुद्ध मात्र होने के अनेक उदाहरण प्रस्तुत सट्टक में उपलब्ध हैं।

---

१. कर्पूरमञ्जरी (रामकुमार आचार्य), पृष्ठ १२

२. कर्पूरमञ्जरी–१/२५

विस्मय नामक स्थायी भाव के उद्बुद्ध मात्र होने का उदाहरण, विदूषक के स्वप्न के प्रसंग में देखा जा सकता है। विदूषक के विचित्र स्वप्न को सुनकर राजा आश्चर्यचकित है, वह कह उठता है—"अहो! विचित्तदा सिविणअस्स। (अहो! विचित्रता स्वप्नस्य।)" यहाँ विस्मय भाव की अभिव्यक्ति हो रही है, अन्य आवश्यक तत्वों के अभाव में यह रसोद्रेक की स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाया है। इसी प्रकार वसन्त ऋतु में केवड़े के सुगन्ध एवं भैरवानन्द के प्रभाव से असमय में उसकी उत्पत्ति के प्रसङ्ग में राजा का विस्मय में पड़ना, विस्मय नामक स्थायी भाव को उद्बुद्ध मात्र करता है, रसोद्रेक की स्थिति को नहीं प्राप्त करता। सट्टक के अंतिम चरण में भी अद्भुत का पुट अवलोकनीय है। घनसारमञ्जरी की जगह कर्पूरमञ्जरी सी रूपरेखा को देखकर महारानी विस्मित हैं, वह कहती है—"आए! सारिच्छएण विडंविदम्हि। (अये! सादृश्येन विडम्बिताऽस्मि!)" यहाँ भी विस्मय नामक स्थायी भाव उद्बुद्ध मात्र हुआ है, अतः यह भावध्वनि का स्थूल है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में रस परिपाक

शृङ्गार रस—

सट्टक के लक्षणानुसार शृङ्गारमञ्जरी सट्टक का अंगी रस शृङ्गार है। नायक नायिका के अनुराग के प्रसिद्ध हेतुओं—श्रवण, चित्र, स्वप्न एवं प्रत्यक्ष दर्शन में से प्रस्तुत सट्टक में चारों ही विद्यमान हैं। राजा स्वप्न में एक कन्या को देखता है, यहीं से अनुराग अंकुरित हुआ है। वसन्ततिलका राजा द्वारा निर्मित चित्र को, शृङ्गारमञ्जरी के रूप में बताती है एवं उसके प्रेम का राजा से निवेदन करती है। इससे राजा का अंकुरित अनुराग परिपुष्ट होता है एवं वह नायिका से मिलने के लिए उत्कण्ठित हो जाता है। द्वितीय जवनिकान्तर में नायिका के प्रत्यक्ष दर्शन से उनका प्रेम पराकाष्ठा को प्राप्त करता है। नायिका के दर्शन से नायक को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है, जिसकी तुलना जीव के ब्रह्मैक्य भाव से ही संभव। नायक की यह आनन्दानुभूति वस्तुतः सामाजिक की आनन्दानुभूति है। विविध प्रकार से विभावादि के संयोजन द्वारा इस रसानुभूति की अभिव्यञ्जना

में कवि सफलता के शिखर पर विद्यमान है, जैसा कि विश्वेश्वर ने स्वयं कहा है कि–इसमें रस के विभावादि सभी अंग अच्छी तरह अवस्थित किये गये हैं।[1] शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में शृङ्गार रस के दोनों ही रूपों–संभोग एवं विप्रलम्भ के स्थल बहुलता से प्राप्त होते हैं। इनमें भी विप्रलम्भ शृङ्गार की व्यञ्जना अपेक्षाकृत अधिक हुई है विश्वेश्वर ने खुद भी स्वीकार किया है कि विप्रलम्भ को विदग्ध जन अधिक प्रिय मानते हैं।[2] क्रमशः दोनों के उदाहरण प्रस्तुत हैं–

संभोग शृङ्गार–

यद्यपि प्रस्तुत सट्टक में संभोग शृङ्गार के स्थल अपेक्षाकृत कम हैं, फिर भी उनकी रसाभिव्यञ्जना उत्कृष्ट कोटि की है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

(क) नायिका द्वारा अपने को देखने का वर्णन राजा इन शब्दों में करता है–

अहिअविअसिएहिं ईसगुच्छीकएहिं
अहिमुहवलिएहिं दोपरावट्टएहिं।
रहस तरलिएहिं विब्भमाघुम्मिरेहिं
वरअणुणअणेहिं जं णिवीओ इमेहिं।।[3]

अर्थात्, अधिक विकसित होने वाले, कुछ कुछ धब्बे वाली आकृति वाले, मेरी ओर मुड जाने पर थोड़ा सिकुड़न के साथ दोनों ओर घूम जाने वाले, एकाएक भय से चञ्चल होने वाले और विलासयुक्त गति को दिखलाने वाले इस सुन्दरी के ऐसे नेत्रों ने (मेरा) पूर्णतः पान कर लिया है। यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, नायक आश्रय, नायिका के नेत्रों के विलास आदि उद्दीपन विभाव हैं। नायक द्वारा अपनी कृतार्थता की अनुभूति से हुए रोमाञ्च, श्वेद आदि अनुभाव एवं औत्सुक्य, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिससे स्थायी भाव रति उद्बुद्ध होकर रसानुभूति की स्थिति को

---

१. 'विहाअसंठविअसअलंगा'–शृङ्गारमञ्जरी–१/६
२. 'विप्पलंभो अइमेत्तं बहुमओ छइल्लाणं।'–शृङ्गारमञ्जरी–१/६
३. शृङ्गारमञ्जरी, २/३२

प्राप्त कर रहा है।

(ख) नायिका को देखकर नायक की निम्न उक्तियों में संभोग शृङ्गार की उत्कृष्ट अभिव्यञ्जना द्रष्टव्य है–

मग्गाइँ दो वि णअणाइँ सुहासरम्मि
अंगं प्पहिण्णपुलअंकुरदंतुरं मे।
अप्पा वि जेण जणिओ अणुहूअबम्हा–
णंदो व्व सव्वविसअंतरणाणसुण्णो।।[१]

अर्थात्, मेरे दोनों नेत्र अमृत सरोवर में डूबे हैं। मेरे अंग रोमाञ्च से कंटकित हो रहे हैं। आत्मा भी अन्य सभी विषयों के ज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्द का सा अनुभव प्राप्त कर रहा है। यहाँ नायक आश्रय, नायिका आलम्बन विभाव, रोमाञ्च अनुभाव, पूर्वकथित नायिका के नेत्रों के विलास आदि उद्दीपन विभाव, हर्ष, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भाव हैं; जिससे रति उद्बुद्ध होकर शृङ्गार रस की अभिव्यंजना करता है।

(ग) तृतीय जवनिकान्तर में नायक-नायिका माधवीलतामण्डप में मिलते हैं। इस समय नायिका के प्रति नायक के कथनों में संभोग शृङ्गार की अभिव्यञ्जना दर्शनीय है–

पणमिअ मुहअंदं पम्हघोलंतबाहा–
वलिलवविणिअवाआ किं पि तण्हाअ गंडं।
अइपसरिअसासाहाअ वेअप्पकंप–
त्यण मउलअमेअं ईरिसं होइ तुण्णं।।[२]

अवि अ–

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–२/३७
२. शृङ्गारमञ्जरी–३/५४

बाहुज्झरेण मइलीकिदमाणणं ते

मज्जेमि वासुणउ चारुकरेण मंदं।

णीसासवेअविहुरं हिअअं परं च

हत्थेण किं पि सिढिलेण परामिसामि।।[१]

अर्थात्, इस समय तुम्हारा यह मुखचन्द्र झुका है। पलकों से निकलकर बहती हुई आँसुओं की बूँदों के गिरने से कपोल नहाये हुए से हो गये हैं। साँसें बड़ी तेजी से दूर तक चल रही हैं, जिससे उरोज युगल भी बड़ी तेजी से काँपता हुआ-सा लग रहा है। (और भी) अरी सुन्दरी! तुम्हारा मुँह आँसुओं के निरन्तर झरते रहने से मलिन हो गया है, जिसे मैं अपने हाथों से धीरे-धीरे पोंछ देता हूँ और तेजी से चलते हुए साँसों से विकल हृदय को हल्के हाथ से सहलाता हूँ। यहाँ नायक आश्रय है। नायिका आलम्बन विभाव है। कम्प, तेज श्वास, अश्रु आदि अनुभाव हैं। नायिका का सौन्दर्य उद्दीपन है, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं, इनके संयोग से सामाजिक का स्थायी भाव रति उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा को प्राप्त होता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक के चारों ही जवनिकान्तरों में विप्रलम्भ शृङ्गार की सुन्दर अभिव्यञ्जना प्राप्त होती है। वियोग के ५ कारणों में सट्टक में पूर्वराग पाया जाता है। स्वप्न में एक कन्या को देखकर राजा उस पर आसक्त है। यह पूर्वराग का स्वरूप है। नायक स्वप्न में देखी गयी नायिका के मिलन के लिए व्याकुल हैं। उस अपूर्व सुन्दरी के सौन्दर्य एवं हावभावों का ही वह सतत् स्मरण कर रहा है। स्वप्न में दर्शित नायिका स्वयं विरहिणी है, जिसके विषय में राजा की उक्ति दर्शनीय है–

करअलधरिअमहिअला कहं पि णिम्मविअपअपडिट्ठाणा।

समविउणिअ-णीसासा समुट्ठिआ बालहरिणच्छी।।[२]

१. शृङ्गारमञ्जरी–३/५५
२. शृङ्गारमञ्जरी–१/२१

अर्थात्, उस बालमृगी के समान चञ्चल और रसीली नयनों वाली रमणी ने बड़ी मुश्किल से हाथों के तलुओं से उठने के लिए जमीन का सहारा लिया, जमीन में अपने पैरों को टिकाया और लगातार लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई वह जैसे-तैसे अपनी जगह से खड़ी हुई।

स्वप्न दर्शन के उपरान्त स्पृहा, ताप, निःश्वास और उन्माद ये दशायें नायक में पायी जाती हैं। नायिका के चित्र को नायक बनाना चाहता है, उसके लिए चित्रोपकरण जुटाये जाते हैं, किन्तु नायक के आन्तरिक भावना में नायिका है। अतः उसे सभी वस्तुओं में नायिका ही दिखाई पड़ती है, जिससे चित्र बनाना कठिन हो गया है। नायक स्वयं कहता है–

बाहुज्झरो वि लिहिअं लिहिअं ज रेह
आपुंसइ क्खलइ ताइ मणं भरंतं।
णो लेहणी परमवेविरअंसुलिम्मि
पाणिम्मि ठाइ कहमेत्थ अ किं लिहिस्सं।।[१]

अर्थात्, आँखों से अनुराग के कारण बहने वाली आँसुओं की धारा चित्र की रेखाओं को मिटा दे रही है। मेरा मन भरकर डगमगा रहा है। हाथ में तुलिका ठीक से नहीं टिक पा रही है, क्योंकि हाथ की अँगुलियाँ बहुत काँप रही हैं। इस कारण मैं क्या और कैसे प्रिया का चित्र बनाऊँ? यह बात समझ में नहीं आ रही है। यहाँ नायक आश्रय, नायिका आलम्बन विभाव, पृष्ठभूमि कें कथित उपवन उद्दीपन विभाव, अश्रु प्रवाह, प्रकम्प आदि अनुभाव, चिन्ता, उद्वेग आदि संचारी भाव हैं, जिनसे स्थायी भाव रति उद्‌बुद्ध होकर रस चर्वणा की स्थिति को प्राप्त करता है।

तृतीय जवनिकान्तर में विप्रलम्भ शृङ्गार के अनेक सुन्दर स्थल हैं, जिनमें उनकी अभिलाषा, चिन्ता, गुणकीर्तन, उद्वेग, विलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरणावस्था वर्णित है। यहाँ करुण

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–१/३५

विप्रलम्भ की कोटि के शृङ्गार अलंकार की अभिव्यञ्जना हुई है। नायिका की दशा का वर्णन करने वाला निम्न उदाहरण दर्शनीय है–

तुसारणिअरो तुसारणिचरो व्व वेसाणरो
तहा अ जलणीलिआ मअरकेदुणा ईलिआ।
फुरंति हिम-बालुआ तविअबालुआ दूसहा
परं अणलउक्करो अणलमुक्करोइप्पहो।।[१]

अर्थात्, उसे शीतल हिम का खण्ड तुषरूपी औरणि से निकली अग्नि की तरह जलाता है और इसी तरह जल का छोटा नाला उसे कामदेव से प्रेरित-सा लगता है। उसे हिमबालुका तपी हुई सिकता-सी दुःसह लगती है है और उसके मुँह से निकली हुई अग्नि के ढेर की सी गर्म साँसें, किसी मरे हुए रोगी के शरीर से छोड़ी गयी साँसों की भाँति हैं। यहाँ नायिका आश्रय; नायक आलम्बन; मधुमास, पवन आदि उद्दीपन, गर्मश्वास आदि अनुभाव; व्याधि, औत्सुक्य आदि सञ्चारी भाव हैं, जिनसे स्थायी भाव रति उद्बुद्ध होकर रसचर्वणा की स्थिति को प्राप्त होता है।

हास्य रस–

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में हास्य का आलम्बन विदूषक गौतम है। वह अपने हाव-भाव, क्रिया-कलाप से हास्य का वातावरण उपस्थित करता है, उसे अपने पाण्डित्य पर गर्व है। उसकी गर्वोक्तियों एवं पाण्डित्य प्रदर्शन में हास्य रस की झलक मिलती है। विदूषक एवं वसन्ततिलका के मध्य विवाद के प्रसङ्ग का उदाहरण द्रष्टव्य है। विदूषक क्रोधित होकर कहता है–

''एदारिसस्स राइणो सेवणस्स फलं एण्हिं मे पज्जंतं। जेण विहप्पइ–सरिच्छेहिं पि पंडिअ वरेहिं सलाहिज्जंतविण्णाण-विसेसो महाउलुप्पण्णो बम्हणो कीडादो वि अप्पबुद्धीए दासीए पराहुवीअदि। ता एत्तिअ-पज्जंतं जं जाअं तं जाअं। इमादो परं विवेअरहिअस्स पहुणो अलं अणुवट्टणेण। ता अण्णदो

१. शृङ्गारमञ्जरी–३/११

गमिस्सं। (इत्युत्तिष्ठति)[1]

अर्थात्, मुझे ऐसे राजा का सेवक होने का फल मिल गया, जिसके विशेष ज्ञान की प्रशंसा वृहस्पति के समान श्रेष्ठ पंडितों ने भी की थी। ऐसे कुलीन ब्राह्मण को विनोद का साधन बनाकर अल्प बुद्धि दासी से पराजित करवाया जा रहा है। अतः अब जो हुआ सो हो चुका। इसके पश्चात् किसी विवेकहीन स्वामी की सेवा से छुट्टी। अतः मैं अन्यत्र चला जाऊँगा। (जाने के लिए उठता है)। यहाँ नायक, नायिका, वसन्ततिलका आदि आश्रय, विदूषक आलम्बन, विदूपक की भाव-भंगिमायें उद्दीपन, हसित, मुंहविकास आदि अनुभाव, क्रोध, घृणा आदि संचारीभाव हैं, उनसे स्थायीभाव हास उद्बुद्ध होकर हास्य रस को अभिव्यञ्जित कर रहा है।

चतुर्थ जवनिकान्तर के अंतिम चरण में राजा के विवाहोपरान्त विदूषक दक्षिणा के लिए राजा से कहता है–

ठेरस्स उत्तमउलस्स ममावि किञ्चि–
अप्पाणुरूअमिह दिज्जउ बम्हणस्स।
मम्मेसु बंधणविअड्ढणजाअपीडा
तीरंति जेण हि रुआ अइ दूसहा वि।।[2]

राजा–(विहस्य) ण हु बम्हणपरिओसेण विणा कम्माइ संगाइं होंति।

अर्थात्, अरे मित्र! मैं उत्तम कुल में उत्पन्न वृद्ध ब्राह्मण हूँ। मुझे इस समय आत्मानुरूप कोई वस्तु दें, जिससे बन्धन और इधर-उधर खींचने से होने वाली असहनीय वेदनाओं को सह लेने की पीड़ा पूरी तरह जा सके। राजा हँसकर प्रत्युत्तर देता है कि–सचमुच, जब तक ब्राह्मण को संतोष न हो जाय तब तक कर्म अपने आप में पूर्ण नहीं माने जाते। यहाँ राजा आश्रय, विदूषक आलम्बन, विदूषक के हावभाव आदि उद्दीपन, हँसी अनुभाव, हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं, जिनसे स्थायी

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५
२. शृङ्गारमञ्जरी–४/२३

भाव हास के उद्बुद्ध होने से हास्य रस की अभिव्यञ्जना हो रही है।

अद्भुत रस–

सट्टक में अद्भुत रस का समावेश आवश्यक माना जाता है। शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में भी अद्भुत रस का समायोजन प्राप्त होता है। विश्वेश्वर ने खुद कहा भी है कि 'यह रचना अतिशय चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।'[१] इसका पूट प्रारम्भ से ही मिलने लगता है। राजा को स्वप्न में अपूर्व सुन्दरी का दिखलाई पड़ना विस्मय जनक है। विदूषक उसे सुनकर आश्चर्यचकित है, उसमें स्वप्न की सारी बातें जानने की उत्सुकता है। राजा द्वारा कथित पद्य को वसन्ततिलका द्वारा शब्दशः सुनाने पर राजा आश्चर्यचकित होता है। वह मन ही मन विचार करता है कि इसमें एक ही बार कही गयी बात को याद रखने की बड़ी क्षमता है। विस्मय का पुट इस तथ्य में भी झलकता है कि अन्तःपुर में नायक भी है एवं नायिका भी रहती है, किन्तु नायक उसे देख नहीं पाता है। इसी बात को द्वितीय जवनिकान्तर में आश्चर्यचकित होकर विदूषक कहता है कि–'आश्चर्य है अन्तःपुर में रहकर भी इसे अभी तक महाराज ने नहीं देखा।" ज्येष्ठा नायिका के सौन्दर्य वर्णन से सम्बन्धित नायक के कथन में अद्भुत रस की छटा दर्शनीय है। राजा कहता है–(आप ने) इस समय सिन्धुवार पुष्प की सुन्दर कलियों में मोती के दानों को बीच में लगाया है और अशोक पुष्पों से स्वच्छ माणिक्य को मलिन बना देने वाली निष्पन्द मधुकरों की लम्बी कतार-सी बनकर (आप) इन्द्रनीलमणि जैसी शोभित हो रही हो। अतः अचम्भित करनेवाली दूसरी संजीवनी लतिका के समान लग रही हो।[२] अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर में प्राप्त होता है। भगवती के मंदिर से वापस आती हुई महारानी को आकाशवाणी का सुनाई पड़ना आश्चर्यजनक है, साथ ही देवी द्वारा, राजा एवं शृङ्गारमञ्जरी का विवाह करवाने का निश्चय करना, सभी को विस्मित करने वाला है। राजा स्वयं इसे सुनकर आश्चर्यचकित एवं प्रसन्न है। वह कहता है–

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–१/६

२. शृङ्गारमञ्जरी–२/४०

अह्रो अच्छरिअं अच्छरिअं।

मज्जंतस्स महण्णवम्मि सहसा पोअस्स आसाअणं
अत्थक्के वि महंधआरकवलीभूअस्स दीवाअमो।
कंठे संठिअजीवअस्स अमआसारो सरीरंतरे
उज्जंतस्स अ मम्महेण दइआलाहस्स संभावणा।।[१]

अर्थात्, अरे! आश्चर्य है, आश्चर्य है। मन्मथ द्वारा प्रियतमा के लाभ की संभावना मेरे लिए वैसी ही दूसरे जीवन की तरह है, जैसे महासागर में डूबते हुए व्यक्ति को सहसा किसी जलपोत की प्राप्ति हो जाती है, जैसे घनघोर अंधेरे में दिशाहीन पुरुष को एकदम दीपक मिल जाता है और जैसे कण्ठ में प्राणों के रुक जाने पर शरीर में जीने के लिए अमृत वर्षा हो जाती है। यहाँ राजा आलम्बन है, अपने विवाह की सूचना उद्दीपन है। नेत्र विकास आदि अनुभाव हैं; हर्ष, आदि व्यभिचारी भाव हैं, इससे स्थायीभाव विस्मय उद्बुद्ध होकर अद्भुत रस की अभिव्यञ्जना करा रहा है।

भाव (अथवा भावध्वनि)-

(क) शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में भाव के अभिव्यञ्जक भी अनेक स्थल विद्यमान हैं। देव विषयक रति को अभिव्यञ्जित करने वाले भाव की कोटि में नान्दी के दोनों पद्य रखे जा सकते हैं। प्रथम में गौरी एवं द्वितीय में कामदेव के प्रति प्रेम का सन्निवेश है। शृङ्गारमञ्जरी के प्रथम एवं द्वितीय जवनिकान्तर के अंतिम पद्य, जिनमें क्रमशः शिव एवं कामदेव के प्रति प्रेम का प्रदर्शन है, भावध्वनि को अभिव्यञ्जित कर रहा है। इसमें देवविषयक रति का सुन्दर उदाहरण चतुर्थ जवनिकान्तर में महारानी द्वारा भगवती की आराधना के प्रसंग में प्राप्त होता है, जिसका वर्णन राजा से विदूषक ने इस प्रकार किया है-

जअ भअवदि अंब, संझासमाढ्त्तणट्टुच्छवुक्खित्तहत्थाइतिक्खंतणाणाणहग्गावलग्गंबुबा-

---

१. शृङ्गारमञ्जरी-४/१५

हुङ्करोलुग्गणक्खत्तलक्खाहिलक्खंत मोत्तावलीविब्भमे...णुदे दे णमो।[1]

अर्थात्, हे भगवति अम्बे! तुम्हारी जय हो! तुम सन्ध्या समय में आरम्भ हुए उत्सव के अवसर पर ऊपर उठाये हुए हाथ में, उनके तीखे नखों के आगे वाले भाग में, उलझने वाले मेघ-मण्डलों में समाये हुए, असंख्य नक्षत्रों की तरह लगने वाली मोतियों की माला की शोभा दिखा रही हो। .....इस प्रकार तीनों लोकों के द्वारा स्तुत हुई भगवती को मेरा नमस्कार है। यहाँ भगवति देवी के प्रति रति के कारण भावध्वनि है।

(ख) प्रधानता से प्राप्त संचारी भाव वाले भावध्वनि के भी अनेक स्थल प्रस्तुत सट्टक में प्राप्त होते हैं। नायिका के चित्र को अंकित करने की इच्छा वाला राजा कह रहा है–

सअले वि मए पअत्थजाए दइआ दीसदि भावणोवणीदा।
विलिहिज्जइ सा उणो कहं वा ण हु एदं लिहिदं ण वत्ति दुद्धी।।[2]

अर्थात्, सभी वस्तुओं में अपनी आन्तरिक भावना से लायी गयी प्रिया ही देखने में आ रही है। चित्र में ऐसी प्रिया का अंकन कैसे किया जाये? किन्तु सन्देह बना है कि चित्र में वह भलीभाँति चित्रित हो सकेगी या नहीं। यहाँ नायिका के प्रति नायक का रति भाव यद्यपि द्योतित हो रहा है, किन्तु वितर्क नामक व्यभिचारी भाव प्रधानता से अभिव्यञ्जित हो रहा है, अतः यह भाव का उदाहरण है।

तृतीय जवनिकान्तर में राजा के प्रति विदूषक का कथन है कि–"वअस्स, अलं विलंबेण–

तुह संगमतण्हाए संकेअ कुडंगअं पत्ता।
अणहिगअ-वल्लह-जणा अणुहोउ ण जीअमोक्खं सा।।"[3]

अर्थात्, मित्र देर न करे! क्योंकि आपकी प्रिया आपसे मिलने की अभिलाषा से संकेत स्थल के कुञ्ज में गयी। वहाँ उसे प्रिय प्राप्त नहीं हुआ ऐसी स्थिति में वह प्राण त्याग का अनुभव न करे। यहाँ नायक-नायिका की रति वर्ण्य विषय होने पर भी मरण नामक व्यभिचारी भाव की व्यञ्जना प्रधानता से हो रही हैं, अतः यह भावध्वनि का स्थल है।

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६६
२. शृङ्गारमञ्जरी–१/३४
३. शृङ्गारमञ्जरी–३/१६

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में रस परिपाक का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी दोनों ही कृतियाँ सट्टक कोटि की हैं, अतः अनिवार्यतः दोनों में शृङ्गार रस को अंगीरस के रूप में सन्निवेशित किया गया है। साथ ही सट्टक के लक्षणानुसार दोनों में ही अद्भुत रस का पुट समाहित है। नायक के नर्म सचिव विदूषक की दोनों ही कृतियों में उपस्थिति हास्य रस की अभिव्यञ्जना में सहायक हुई है। इन तीनों रसों के अलावे अन्य किसी रस के समायोजन का कोई प्रयास इन कृतियों में प्राप्त नहीं होता।

यद्यपि शृङ्गार रस को दोनों ही नाट्यकारों ने प्रमुखता से अभिव्यञ्जित करने का प्रयास किया है। परन्तु इसकी परिपुष्टि में दोनों में अन्तर है। शृङ्गारमञ्जरीकार संयोग एवं विप्रलम्भ शृङ्गार दोनों की अभिव्यञ्जना में जिस ऊँचाई को स्पर्श किये हैं, कर्पूरमञ्जरीकार उससे काफी पीछे दिखाई पड़ते हैं। शृङ्गारमञ्जरीकार ने अपने पात्र राजा के माध्यम से, जो यह कहलवाया है कि–"मेरे दोनों नेत्र अमृत सरोवर में डूबे हैं, मेरे अंग रोमाञ्च से कष्टकित हो रहे हैं। आत्मा भी अन्य सभी विषयों के ज्ञान से शून्य ब्रह्मानन्द का सा अनुभव प्राप्त कर रहा है।"[१] यह नायिका को देखकर नायक द्वारा अनुभूत आनन्दातिरेक का वर्णन मात्र नहीं है, अपितु यह सामाजिक द्वारा अनुभूत रसानन्द की वह स्थिति है, जो शृङ्गारमंजरी सट्टक का सामाजिक अनुभव करता है।

दोनों ही सट्टकों में विप्रलम्भ की अपेक्षा संभोग शृङ्गार के स्थल कम प्राप्त होते हैं, किन्तु शृङ्गारमञ्जरी का जो संभोग शृङ्गार का प्रसंग है, वह नायक-नायिका के मध्य एकान्त में हो रहे संवाद, नायिका द्वारा मान करने, नायक द्वारा उसे मनाने, प्रेम का विश्वास दिलाने आदि से अत्यन्त

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–२/३७

रोचक एवं रसाभिव्यञ्जक हो गया है। वहीं कर्पूरमञ्जरी में नायक-नायिका के मिलन का प्रसंग, नायक-नायिका के मध्य संवादहीनता की-सी स्थिति, नायक का एकतरफा संवाद, कुरंगिका की उपस्थिति के कारण पूर्ण एकान्त का अभाव, नायिका द्वारा मान करने आदि जैसे प्रसंग का न होना इत्यादि के कारण अपेक्षाकृत अरुचिकर है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में संयोग के प्रसंग में नायिका द्वारा कथित पद्य[१], जो अपनी अवस्था आदि गूढ़ अर्थ से समन्वित है को सुनकर; नायक उसके भाव पर विचार कर तदनुसार उत्तर देता है। वहीं कर्पूरमञ्जरी सट्टक में संयोग के प्रसंग में, कर्पूरमञ्जरी द्वारा विचरति एवं उसके तरफ से जो एकमात्र पद्य[२] कुरंगिका राजा से निवेदन करती है, वह चन्द्रमा का वर्णन मात्र है। साथ ही जब नायक-नायिका को अपनी अंतरंग बातें करने का अवसर मिलता है, वैसी परिस्थिति में अपनी बातें न करके चन्द्रमा के वर्णन आदि जैसी अप्रासंगिक बातें करना, वह आनन्द कहाँ उपस्थित कर सकती है, जो कि शृङ्गारमञ्जरी के ऐसे ही प्रसंग में प्राप्त होता है। और इससे बड़ी बात यह कि जब नायक-नायिका के पद्य को सुनकर इस अंतरंग क्षण में उस पद्य की प्रशंसा में लग जाता है, उसमें शब्द सुन्दरता, उक्ति वैचित्र्य एवं रस की झलक देखने लगता है, तब उसका अपना रस और भी विरस हो जाता है।

विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसंग में भी रस की अभिव्यञ्जना जिस उत्कृष्टता के साथ विश्वेश्वर ने किया है, वहीं राजशेखर अपेक्षाकृत पीछे दिखाई पड़ते हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार के प्रसंग में यद्यपि राजशेखर ने कुछ उत्कृष्ट कोटि के स्थल उपस्थित किये हैं, किन्तु विश्वेश्वर जैसी व्यापकता उनमें

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—३/५६
२. शृङ्गारमञ्जरी—३/३१

नहीं है। साथ ही विप्रलम्भ के उन सुन्दर स्थलों पर कुछ ऐसी बातें और कह जाते हैं, जो रस की अपकर्षक साबित होती हैं। जैसे कि विचक्षणा द्वारा अपने एवं अपनी बहन के तरफ से की गयी नायिका की विरह पीड़ा की स्थिति को सुनकर, नायक उसके कविता की प्रशंसा में लग जाता है। यहाँ जब यह बताया जा रहा है कि उसके विरह में नायिका के जीवन की आशा घट रही है। ऐसे प्रसंग में नायक द्वारा इस भाव में किया गया कथन कि—वाह क्या बढ़िया ढंग से आपने कहा; निश्चय ही रसानन्द की अविच्छन्नता को बाधित करता है। यहाँ तो चाहिए कि उसे सुनकर नायक, नायिका की पीड़ा से पीड़ित एवं व्यक्षित हो, उसकी अपनी पीड़ा शब्द रूप में फूट पड़े। वस्तुतः नाट्य में सामाजिक को आद्योपान्त अविछिन्न रसानुभूति की अपेक्षा रहती है। रसानुभूति की यह अविछिन्नता नाट्य की स्वाभाविक प्रस्तुति में ही बरकरार रह सकती है। कर्पूरमञ्जरी में इस स्वाभाविकता का कहीं कहीं अभाव-सा है। शृङ्गारमञ्जरी में यह स्वाभाविकता हर स्थल एवं पद्य में विद्यमान है, जो रसानन्द के प्रवाह को सतत् जारी रखती है।

दोनों कृतियों को यदि हास्य रस के सन्निबंधन की दृष्टि से देखा जाय, तो कर्पूरमञ्जरी सट्टक में शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की अपेक्षा हास्य की अभिव्यञ्जना के अधिक स्थल उपलब्ध होते हैं। कर्पूरमञ्जरी का विदूषक अपनी अनूठी उक्तियों द्वारा संवाद को सजीव बनाते हुए, हास्य का जो वातावरण उपस्थित करने में सफल हुआ है, वैसा शृङ्गारमञ्जरी में नहीं प्राप्त होता। राजशेखर कवि का विदूषक अपेक्षाकृत अधिक वाचाल प्रतीत होता है, जबकि विश्वेश्वर का विदूषक अधिकतर गंभीर कथन करने में सन्नद्ध है।

अद्भुत रस के समायोजन में दोनों की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। जहाँ कर्पूरमञ्जरीकार ने विस्मित करने वाले अनेक स्थलों का उन्मुक्त रूप से प्रदर्शन करते हुए, बहुत कुछ शब्दशः उपस्थित

किया है। वहीं शृङ्गारमञ्जरीकार उसे शब्दशः कहने की अपेक्षा, उसका वातावरण उपस्थित करने तक पहुँचकर, शेष सामाजिक की कल्पना पर छोड़ दिया है।

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट से भिन्न एक तीसरे प्रकार का भाव स्वीकार किया है, जिसमें रति आदि स्थायी भाव का उद्‌बोधन मात्र होता है। वे सामग्री के अभाव में परिपुष्टि को प्राप्त नहीं करते। इस भाव की दृष्टि से कर्पूरमञ्जरी को देखा जाय, तो कुछ स्थलों को छोड़कर अधिकांश स्थल ऐसे ही हैं; जहाँ रति, हास अथवा विस्मय नामक स्थायी भावों का उद्‌बोधन मात्र हुआ है; वहाँ वे उद्‌बुद्ध स्थायी भाव परिपुष्टि को नहीं प्राप्त हुए हैं। जबकि शृङ्गारमञ्जरी में ऐसे स्थल अपेक्षाकृत कम हैं। उसमें अधिकांश स्थलों पर उद्‌बुद्ध स्थायी परिपाक को प्राप्त करता है। विश्वेश्वर ने खुद कहा भी है कि—इस कृति में रस के विभावादि सभी अंग अच्छी तरह अवस्थित किये गये हैं और यह अतिशय चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।[१] यह कथन सर्वदा सत्य है। इस प्रकार कर्पूरमञ्जरी सट्टक में भाव की प्रधानता है; जबकि शृङ्गारमञ्जरी में रस की प्रधानता है।

●●●

---

१. सुघडिअसमत्तपत्ता विहाअसंठविअसअलंगा।
परमचमक्किदिजणणी तस्स अ सिंगारमंजरीत्ति किदी।।—शृङ्गारमञ्जरी—१/६

षष्ठ-अध्याय

भाषा एवं शैली-विवेचन

भाषा

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाषा

शौरसेनी प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भाषा

शैली

अलङ्कार

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

प्रकृति-चित्रण

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

छन्द

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

कर्पूरमञ्जरी तथा शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की भाषा एवं शैली का तुलनात्मक परिशीलन

षष्ठ-अध्याय

भाषा एवं शैली-विवेचन

भाषा

यद्यपि रूपकों में आङ्गिक चेष्टाओं के माध्यम से भी विचारों का आदान-प्रदान होता है; तथापि विचारों के संवहन का महत्त्वपूर्ण माध्यम भाषा ही है। 'भाषा' उच्चारण अवयवों से निकली सार्थक शब्द परम्परा का नाम है। रूपक के पात्र भाषा का उपयोग करने पर ही, अपने विचारों को पूर्णतः अभिव्यक्ति दे पाने में समर्थ हो पाते हैं। इस प्रकार भावाभिव्यक्ति के लिए वाग्-व्यापार परमावश्यक है। नाट्य में यह वाग्-व्यापार संवाद नाम से भी जाना जाता है। चार प्रकार के अभिनयों में वाचिक अभिनय का आधार संवाद है, जो कि भाषा द्वारा ही होता है।

विश्व में अनेक भाषा परिवार हैं, जिनमें भारोपीय परिवार का अपना विशेष महत्त्व है। प्राकृत भाषा, इसी भारोपीय परिवार की एक महत्त्वपूर्ण भाषा है, जो प्राचीन भारत की लोकभाषा रही है। यह आधुनिक भारतीय भाषाओं की जननी है। अलग-अलग क्षेत्रों में यह अलग-अलग स्वरूप में विद्यमान थी, जिसे इसके क्षेत्रों या बोलने वाले लोगों के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम दिये गये हैं। प्राकृत के प्रसङ्ग में लगभग दो दर्जन नामों का उल्लेख मिलता है। किन्तु भाषा वैज्ञानिक स्तर पर केवल पाँच प्रमुख भेद ही स्वीकार किये जा सकते हैं–१-शौरसेनी, २-पैशाची, ३-अर्द्धमागधी, ४-मागधी, ५-महाराष्ट्री।[१]

नाट्य की स्वाभाविकता बनाये रखने एवं दर्शकों को पूर्णतः ग्राह्य हो सकने की दृष्टि से रूपकों में प्राकृत भाषा का प्रयोग होता रहा है। सट्टक जन-सामान्य के बीच से उद्भूत हुआ नाट्य रूप

१. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ १६२

है। अतः सर्वजन-संवेद्यता हेतु पूर्णतः जन-सामान्य की भाषा का प्रयोग करने का विचार ही इस विधा के उद्भव एवं विकास का मूल कारण है। दूसरी बात यह कि--पूर्णतः प्राकृत भाषा में महाकाव्य आदि लिखने की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी थी। अतः उसी परम्परा में नाट्य लिखने की महत्त्वाकांक्षा भी इस विधा की उत्पति एवं विकास का कारण बनी। पात्रों का नाम एवं अभिनय संकेत के अतिरिक्त सट्टक में सर्वत्र प्राकृत भाषा का आश्रय लिया जाता है। सम्प्रति विवेच्य कृतियों में भाषा प्रयोग विचारणीय है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाषा

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में पात्रों के नाम एवं अभिनय सङ्केत को छोड़कर पूर्णतः प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है। भाषा सरस एवं सरल है। इसमें भाषा सम्बन्धी चर्चा के प्रसङ्ग में यह ध्वनित होता है कि–कवि ने इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग किसी नाट्यशास्त्रीय वाध्यतावश नहीं किया है; अपितु अधिकाधिक सुकुमारता एवं मृदुलता हेतु भाषा के रूप में प्राकृत का सहारा लिया है। पूर्णतः प्राकृत में नाट्य (या सट्टक) लिखने का यह संभवतः प्रथम प्रयोग था। इसकी सफलता ने सट्टक की भाषा के सम्बन्ध में द्वन्द्व को समाप्त कर, इसे लक्षण निर्धारक के रूप में स्थापित कर दिया। सट्टक, क्योंकि लोकजीवन के अधिक निकट है, अतः इस निकटता को अधिक सहज एवं ग्राह्य बनाये रखने के लिये, इनमें प्राकृत का ही प्रयोग पूर्णरूप से प्राप्त होता है।

राजशेखर ने जैसा कर्पूरमञ्जरी सट्टक में कहा है कि–".....जिस तरह पुरुष कठोर होते हैं, उसी तरह संस्कृत रचनायें कठोर (कर्कश) होती हैं। और जिस तरह स्त्रियाँ सुकुमार होती हैं, उसी तरह प्राकृत रचनाएँ मधुर और सुकुमार होती हैं।[१] यह कथन वास्तविकता से अधिक दूर नहीं है। कर्पूरमञ्जरी में सर्वत्र इस मधुरता एवं सुकुमारता के दर्शन होते हैं।

---

१. परुसा संक्किअबंधो पाउदबंधो बि होई सुउमारो।
पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणं।।-कर्पूरमञ्जरी–१/८

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में झूले पर झूलती हुई सुन्दरी का रमणीय शब्दचित्र प्रस्तुत करते हुए, निम्न छन्द का पदलालित्य द्रष्टव्य है—

रणन्तमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बरं।
विलोलवलआवलीजणिदमञ्जुसिञ्जारवं
ण कस्स मणमोहणं ससिमुहीअ हिन्दोलणं।।[१]

(मणिनूपुरों की झंकार से युक्त, हारावली के झण्-झण् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी-छोटी घंटियों के मधुर शब्द से भरा हुआ तथा चञ्चल कंकणों से उत्पन्न मधुर शब्द वाला यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना, किसके मन को अच्छा नहीं लगता?)

कर्पूरमञ्जरी में दो प्रकार की प्राकृत भाषाओं–शौरसेनी एवं महाराष्ट्री का प्रयोग प्राप्त होता है। इसका गद्य भाग शौरसेनी प्राकृत में एवं पद्य भाग महाराष्ट्री में निबद्ध है।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आस-पास की बोली थी। संस्कृत नाटकों में गद्य की भाषा शौरसेनी ही रही है। नाट्यशास्त्र में भी शौरसेनी के, नाटकों की प्रधान भाषा होने का संकेत मिलता है–"शौरसेनं समाश्रित्य भाषा कार्यं तु नाटके।"[२] मध्यदेश की भाषा होने के कारण शौरसेनी का बड़ा आदर रहा है। इसका प्रारम्भिक रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। मध्यदेश संस्कृत का केन्द्र था, अतः शौरसेनी इससे बहुत प्रभावित है। कर्पूरमञ्जरी में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर संस्कृत की तुलना में शौरसेनी प्राकृत की प्रमुख विशेषतायें इस प्रकार हैं–

(i) असंयुक्त तथा दो स्वरों के बीच आने वाले 'त्' एवं 'थ्' का क्रमशः 'द्' एवं 'ध्' होना।

---

१. कर्पूरमञ्जरी–२/३२

२. भाषा विज्ञान, भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ १६३ पर सूचित

जैसे–भगति > भोदि, इत इतो > इदो इदो, कथयामि ते > कधेमि दे।

(ii) 'क्ष' के स्थान पर सामान्यतः 'क्ख' एवं कहीं–कहीं 'च्छ' प्राप्त होता है। जैसे—प्रेक्षतां देवी > पेक्खदु देवी, विचक्षणा > विअक्खणा, अक्षिणी > अच्छिणी।

(iii) 'ऋ' के स्थान पर प्रायः 'इ' एवं कहीं–कहीं 'उ' प्राप्त होता है। जैसे–ईदृशोऽहं > ईदिसोऽहं, श्रृणु > सुणु।

(iv) संयुक्त वर्णों में सरलीकरण की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। जैसे–दर्शनं > दसणं, प्रविश्य > पविसिअ, प्रिय > पिय।

(v) कर्मवाच्य में 'य' का 'इअ' हो जाता है। जैसे–विक्रीयते > बिक्किणीअदि, कष्यते > कसीयदि।

(vi) केवल परस्मै पद का प्रयोग मिलता है, आत्मने पद का प्रायः नहीं।

(vii) रूपों की दृष्टि से यह संस्कृत की ओर झुकी है। जैसे–आदरार्थ आज्ञा के रूप में महाराष्ट्री एवं अर्द्धमागधी की भाँति 'एज्ज' लगाकर 'वर्तेत' आदि शब्दों का रूप 'वट्टेज्ज' आदि नहीं बनता, अपितु संस्कृत की भाँति 'बट्टे' आदि बनता है।

(viii) उपर्युक्त के अतिरिक्त प्राकृत की अन्य अनेक सामान्य विशेषतायें इसमें भी मिलती हैं। जैसे 'व' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग; श, ष, स के लिए मात्र 'स' का प्रयोग इत्यादि।

महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। काव्य की भाषा के रूप में इसका प्रचार पूरे उत्तर भारत में था। गाहासतसई, रावणवहो आदि कृतियाँ इसी भाषा में हैं। कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों के गीतों की यही भाषा रही है। कर्पूरमञ्जरीसट्टक के शब्दों के आधार पर महाराष्ट्री प्राकृत की प्रमुख विशेषतायें प्रस्तुत हैं।

(i) इसमें दो स्वरों के बीच आने वाली अल्पप्राण स्पर्श ध्वनियाँ (क् त् प् द् ग्) प्रायः लुप्त

हो गयी हैं। जैसे–प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छइ।

(ii) दो स्वरों के बीच आने वाले महाप्राण प्रार्ट स्पर्श ध्वनियों (ख् थ् फ् ध् घ्) का 'ह' हो गया है। जैसे–मुखं > मुहं, क्रोधो > कोहो, कथयति > कहेइ।

(iii) ऊष्म ध्वनियों स्, श्, का प्रायः 'ह्' हो गया है। जैसे—तस्य > ताह, पाषाण > पाहाण।

(iv) कर्मवाच्य में 'य' का 'इज्ज' बनता है। जैस—गम्यते > गमिज्जइ।

(v) पूर्व-कालिका क्रिया बनाने में 'ऊण' प्रत्यय का प्रयोग होता है। जैसे—कृत्वा > काऊण, इत्यादि।

राजशेखर के समय संस्कृत तथा प्राकृत का स्थान अपभ्रंश भाषा ले चुकी थी। ऐसे समय में संस्कृत, शौरसेनी प्राकृत तथा महाराष्ट्री प्राकृत पर समान अधिकार एवं उसमें साहित्य सर्जना करना, ही कवि की विद्वत्ता का द्योतक है। कवि ने गद्य में शौरसेनी एवं पद्य निश्चय में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग कर उस परम्परा को आगे बढ़ाया है, जिसका श्रीगणेश अश्वघोष, कालिदास, आदि जैसे कवियों ने किया था। महाराष्ट्री संभवतः अन्य प्राकृतों की अपेक्षा अधिक ललित एवं मधुर है। यही कारण है कि पद्य में अधिकाधिक लालित्य लाने के लिए उसमें महाराष्ट्री का ही प्रयोग होता रहा है। इसीलिए राजशेखर ने भी पद्य के लिए महाराष्ट्री को ही चुना होगा।

कर्पूरमञ्जरी की प्राकृत में अनेक प्रान्तीय तथा देशज शब्द आये हैं, जिनका प्रयोग बाद में हिन्दी भाषा में भी चल पड़ा। जैसे–चट्टि > चटाई, खिड़क्किआ > खिड़की, कहिं पि > कहीं भी, अज्जबि > आज भी, ढिल्ल > ढीला, उट्ठिअ > उठकर, कोइल > कोयल, चम्म > चाम (चमड़ा), थण > थन (स्तन) आदि।

कर्पूरमञ्जरी में लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को अधिकाधिक सरसता प्रदान कर रहा है। कुछ उदाहरण दर्शनीय हैं—दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए (द्राक्षारसो न मधुरायति

---

१. कर्पूरमञ्जरी—२/२६

शर्कराभिः),[१] एदं तं सीसे सप्पो देसन्तरे वेज्जो (इदं तत् शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः)[१], तडं गदाए वि णावए न वीससीदव्वं (तटं गतायामपि न नावि विश्वस्यते)[२], अथवा हस्तकंकणं किं दप्पणेण पेक्खीअदि? (अथवा हस्तकङ्कणं किं दर्पणेन दृश्यते?)[३], ण कत्थूरिआ कुग्गामे बने बा विक्किणीअदि (न कस्तूरिका कुग्रामे वने वा विक्रीयते)[४], ण सुबण्णं कसवट्टिअं बिणा सिलापट्टए कसीअदि (न सुवर्णे कषपट्टिकां बिना शिलापट्टके कष्यते)[५] इत्यादि। इस प्रकार निश्चय ही राजशेखर की सूक्तियाँ अमृत वर्षाने वाली हैं। उनका भाषा कौशल अद्भूत हैं। 'सर्वभाषाविचक्षण' एवं 'सब्बभाषाचतुर' ये विशेषण राजशेखर के लिए उपयुक्त ही हैं।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक की भाषा

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक प्राकृत भाषा में निबद्ध है इसमें केवल पात्रों के नाम एवं अभिनय सङ्केत संस्कृत में हैं। कर्पूरमञ्जरी सट्टक की भाँति इसमें भी महाराष्ट्री एवं शौरसेनी प्राकृतों का ही प्रयोग हुआ है। विद्वानों ने महाराष्ट्री एवं शौरसेनी का जो भेद माना है, वह इसमें पूर्णतः घटित होता है। दोनों प्राकृतों का पद्य एवं गद्य में बराबर प्रयोग हुआ है, जैसे–कर्तुं के लिए एक पद्य में महाराष्ट्री का काउं[६] मिलता है तो दूसरे पद्य में शौरसेनी का कादुं[७] प्राप्त होता है। इसी प्रकार आत्मा शब्द के लिए गद्य में महाराष्ट्री का 'अप्प' एवं शौरसेनी का 'अत्त' दोनों प्राप्त होता है। एक ही पद्य में कहीं-कहीं महाराष्ट्री और शौरसेनी दोनों का प्रयोग भी हुआ है। जैसे–बहुमतः > बहुमओ (महाराष्ट्री)

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ १४४
२. वही, पृष्ठ १५१
३. वही, पृष्ठ १९
४. वही, पृष्ठ १९
५. वही, पृष्ठ १९
६. शृङ्गारमञ्जरी–२/१७
७. वही–२/१५

एवं बहुमदो (शौरसेनी)[1], भवतु > होउ (महाराष्ट्री) एवं एदु (शौरसेनी)[2]।

इस सट्टक में वररुचि-विरचित 'प्राकृतप्रकाश' के पहले अध्याय से नवें और १२वें अध्याय के अनुसार नियमित रूप अधिकतर मिलते हैं। स्वर मध्य क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, स्, और व् का लोप तथा प् के स्थान पर व् भी पाया जाता है। जैसे–उपक्रान्तः > उवक्कंतो, विपरीते > विवरीए, इत्यादि। अपि के लिए अपि, पि, और वि; इव के लिए व्व, व, व्विअ और विअ; एव के लिए चिअ, ज्जेव; पुनः के लिए पुण, उण रूप मिलते हैं। इदं, अदस्, युष्मद्, अस्मद् आदि सर्वनामों के प्रायः सभी वैकल्पिक रूप 'प्राकृतप्रकाश' के अनुसार प्रयुक्त हैं।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में धात्वादेशों का बाहुल्य क्रियापदों में दर्शनीय है। इसमें अधिकतर लट्, लोट् एवं लृट् के परिवर्तित रूप प्रयुक्त हुए हैं। भू के स्थान पर हो, हुव, हव, भो आदि सभी प्रयोग मिलते हैं। लृट् में हुविस्सदि, भविस्सदि, होहिइ और होज्ज के प्रयोगों का बाहुल्य है। लोट् में होज्ज, भोदु, होउ, अच्छतु के रोचक प्रयोग उपलब्ध हैं।[3] इसमें कर्मवाच्य क्रियाओं का का बाहुल्य है, जो धातुओं के अन्त में 'इज्ज' और 'ईअ' जोड़ने से बने हैं। जैसे–विलिख्यते > विलिहिज्जइ[4], उपनीयते > उवणिज्जइ[5] आदि। प्राकृत भाषा के प्रत्ययों से बने अनेक शब्दों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। शील के अर्थ में 'इर' और मतुप् के अर्थ में 'इल्ल' प्रत्यय के क्रमशः उदाहरण हैं—शोभा > सोहा + इर = सोहिरी, लोभ > लोह + इल्ल = लोहिल्ल।

मागधी प्राकृत का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। 'र्' के लिए 'ल्' का प्रयोग मागधी की

---

१. वही—१/६
२. वही—१/२८
३. शृङ्गारमञ्जरी—१/३७, ३/४२
४. वही—१/३४
५. वही—२/१२

विशेषता है, जिसका बहुशः प्रयोग हुआ है। जैसे—रोहित > लोहित, किर > किल, संप्रेरणा > संपेल्लणा, ईरिता > इलिता[१] आदि।

शृङ्गारमञ्जरी में तत्सम, तद्भव, देशी और गढ़े हुए शब्द प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। अनेक संस्कृत शब्द ज्यों के त्यों प्रयुक्त हुए हैं, जैसे-बुद्धि, कर, समूह, विरह[२], साहस[३] इत्यादि। तद्भव का भी बाहुल्य है, जैसे-चन्द्र > चंद, दृष्टि > दिट्ठि[४]। देशी शब्दों की भी भरमार है, जैसे-सुहेल्ली[५] (सहेली), उल्ल[६] (आर्द्र), अचुक्क (भ्रष्ट न होना) आदि।

शृङ्गारमञ्जरी की प्राकृत संस्कृत से अधिक प्रभावित है। क्योंकि विश्वेश्वर के समय में प्राकृत भाषा का ह्रास हो चुका था। प्राकृत जन भाषा नहीं थी। इसलिए सट्टक की प्राकृत में कृत्रिमता का होना स्वाभाविक है। उस समय प्राकृत के, व्याकरण के नियमों तक सीमित रहने के कारण, सट्टक की प्राकृत ग्रन्थकार के बुद्धि—व्यायाम का विषय जान पड़ती है। विश्वेश्वर का संस्कृत भाषा पर असाधारण अधिकार था। अतः सट्टक में संस्कृत छायाशैली के प्रभाव का परिलक्षित होना स्वाभाविक है। पहले वाक्य रचना संस्कृत में हुई जान पड़ती है, तदुपरान्त प्राकृत व्याकरण के अनुसार उसे ढाल दिया गया है। प्राकृत का जो परिनिष्ठित रूप, प्राचीन प्राकृत काव्यों में था, वह इस सट्टक में नहीं मिलता। सुकुमार शब्द विन्यास, मुहावरों के साथ ललित गद्य और मनोरम पद्यों को प्राकृत में लिखने से, प्राकृत भाषा में विश्वेश्वर की असाधारण क्षमता द्योतित होती है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—३/११
२. वही—२/३
३. वही—३/३६
४. वही—१/३८
५. वही—२/१०
६. वही—२/२२

शैली

भारतीय नाट्यकारों का प्रमुख उद्देश्य अभिनयात्मक रचना के द्वारा सामाजिकों में तदनुकूल रसानुभूति कराना रहा है। रस को पूर्ण परिपाक की अवस्था तक पहुँचाने के लिए, जिन बाह्य साधनों या उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनमें अलङ्कार, छन्द, प्रकृति-चित्रण आदि का प्रमुख स्थान है। इनकी समुचित योजना से ही नाट्य अधिकाधिक चमत्कारिक, व्यवहारिक एवं सरस हो पाता है। जिस प्रकार एक सामान्य कथन की अपेक्षा, भूमिका–पूर्वक सलीके से कही गयी मृदुवाणी अधिक मनोहर होती है; उसी प्रकार अलङ्कार, वस्तु-चित्रण आदि से समन्वित नाट्य की वस्तु, नेता एवं रस-योजना अधिकाधिक आनन्ददायक होती है। यह बाह्य रूप को अलङ्कृत करने के साथ–साथ आन्तिरिक रूप को विकसित करती है। इसे ही कहने का ढंग, तरीका, सलीका या शैली नाम से अभिहित किया जाता है। शैली के अभाव में शरीरभूत भाषा, आत्मभूत रस एवं भाव का सौन्दर्य प्रकट नहीं हो पाता। सम्प्रति शैली के प्रमुख उपविभागों की दृष्टि से विवेच्य कृतियाँ विचारणीय हैं। साथ ही लोकजीवन से काफी निकट सम्बन्ध रखने वाले नाट्य भेद— सट्टक की प्रतिनिधि विवेच्य कृतियों में लोकशैली का किस सीमा तक दखल है? यह भी आकलनीय है।

अलङ्कार

"अलङ्करोति इति अलङ्कारः" यह अलङ्कार शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके अनुसार शरीर को विभूषित करने वाले तत्त्व का नाम अलङ्कार है। ध्वनिवादियों ने अलङ्कार को काव्य का अस्थिर तत्त्व माना है। उनके अनुसार—'यदि अलङ्कार हैं तो वे काव्य के उत्कर्षाधायक होंगे और यदि नहीं हैं तो भी काव्य की कोई हानि नहीं है।"[१] किन्तु अलङ्कारवादी आचार्य अलङ्कारों को काव्य का

---

१. "......सर्वत्र सालंकारौ क्वचित्तु स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानिः।"

—काव्यप्रकाश, मम्मट–१/४

अपरिहार्य तत्व मानते हैं। उनके अनुसार अलङ्कार रहित काव्य की कल्पना उष्णता रहित अग्नि की कल्पना के समान ही उपहास योग्य है।[1] ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्यशास्त्रीय तत्त्व अलङ्कार के लिए कवियों का प्रयासरत होना स्वाभाविक है। नाट्यकार भी नाट्यों में अलङ्कारों की छटा विखेरने के मोह को नहीं छोड़ पाते। विवेच्य-कृतियाँ भी अलङ्कार की दृष्टि से विचारणीय हैं।

कपूर्रमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

कर्पूरमञ्जरीकार राजशेखर रसवादी आचार्य हैं। वह रस को काव्य की आत्मा मानते हैं। इनकी मान्यता है कि–"स्वाभाविक सुन्दर व्यक्ति को बाह्य सजावट की आवश्यकता नहीं। अनोखी वेष-रचना से मूर्ख आकृष्ट होते हैं। जो अनुभवी एवं चतुर हैं, वे स्वाभाविक सौन्दर्य पर ही मोहित होते हैं।"[2] स्त्रियों के आभूषण के सन्दर्भ में उन्होंने स्पष्टतः कहा है कि–"बाह्य शृङ्गार व्यर्थ है। संसार में यह कोई और ही चीज है, जिसमें स्त्रियाँ आकर्षक लगती हैं।"[3]

---

१. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलं कृती।।—चन्द्रालोक, जयदेव।

२. मुद्धाणं णाम हिअआइँ हरन्ति हन्त!
णेवच्छकप्पणगुणेण णिअबिणीओ।
छेका उणो पकिदिचंगिमभावणिज्जा
दक्खारसो ण महुरिज्जइ सक्कराए।।
(मुग्धानां नाम हृदयानि हरन्ति हन्त!
नेपथ्यकल्पनगुणेन नितम्बिन्यः।
छेकाः पुनः प्रकृतिचङ्गिमभावनीयाः
द्राक्षारसो न मधुरायति शर्कराभिः।।)—कर्पूरमञ्जरी–२/२६

३. किं मेहलावलअणेउरसेहरेहिं? किं चंङ्गिमाअ? किमु मण्डणडम्बरेहिं?
तं अण्णमत्थि इह किंपि णिअम्बिणीओ जेणं लहन्ति सुहअत्तणमञ्जरीओ।।
(किं मेखलावलयनूपुरशेखरैः? किं चङ्गिमत्वेन? किमु मण्डनाडम्बरैः?
तदन्यदस्ताहि किमपि नितम्बिन्यो येन लभन्ते सुभगत्वमञ्जरीः।।)—कर्पूरमञ्जरी–३/१३

किन्तु यह राजशेखर की सैद्धान्तिक मान्यता मात्र ही प्रतीत होता है। व्यवहार में वे अपनी कृति को विविध अलङ्कारों से सजाने सँवारने में परहेज करते हुए नहीं दिखाई पड़ते। यद्यपि राजशेखर द्वारा हर कहीं बलात् अलङ्कारों की योजना का प्रयास नहीं दिखाई पड़ता, फिर भी वर्णन के प्रसङ्ग में अवसर के अनुसार उन्होंने अलङ्कारों का खुलकर प्रयोग किया है। कुछ प्रमुख अलङ्कारों के प्रयोग देखे जा सकते हैं।

अनुप्रास—

अनुप्रास अलङ्कार[१] के अनेक सुन्दर स्थल आद्योपान्त प्रस्तुत कृति में प्राप्त होते हैं। अनुप्रास का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

रणन्तमणिणेउरं झणझणंतहारच्छडं
कलक्कणिदकिङ्किणीमुहरमेहलाडम्बरं।
विलोलवलआवलीजणिदमज्जुसिञ्जारवं
ण कस्स मणमो हणं ससिमुहीअ हिन्दोलणं?।।[२]

(मणिनूपुरों की झंकार से युक्त, हारावली के झन्-झन् शब्द से पूर्ण, करधनी की छोटी–छोटी घंटियों के मधुर शब्द से भरा हुआ, चञ्चल कङ्कणों से उत्पन्न मधुर शब्द वाला; यह चन्द्रमुखी कर्पूरमञ्जरी का झूलना, किसके मन को अच्छा नहीं लगता।) यहाँ ण, झ, क, व, ल, म, स आदि वर्णों की एकाधिक बार आवृत्ति हुई है, जिससे यहाँ अनुप्रास नामक शब्दालङ्कार है। साथ ही 'ससिमुहीअ' (शशिमुख्या) पद में, मुख पर चन्द्रमा का आरोप होने के कारण रूपक अलङ्कार भी है। अनुप्रास के अन्य उदाहरणों के रूप में ".....दोलालीलासरलतरलो दीसए से मुहेन्दु।"[३] "किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअङ्कवअणा वि.....।"[४] "सपञ्चमतरंगिणो सवणसीअला

१. 'वर्णसाम्यमनुप्रासः'—काव्यप्रकाश–७९
२. कर्पूरमञ्जरी–२/३२
३. कर्पूरमञ्जरी–२/३०
४. कर्पूरमञ्जरी–२/४२

वेणुणो समं सिसिरवावारिणा वअणसीअला वारूणी....।"[1] आदि जैसे अनेक स्थलों को देखा जा सकता है।

उपमा–

उपमा अलङ्कार[2] का भी यथासम्भव राजशेखर ने आश्रय लिया है। विदूषक की निम्न गद्योक्ति में मालोपमा की छटा दर्शनीय है– "एसो पिअवअस्सो हंसो विअ विमुक्तमाणसो, करी विअ मदक्खामो, मुणालदण्डो विअ घणघम्मलिंलाणों, दिणदीवो विअ विगलिदच्छाओ, पभादपुण्णिमाचन्दो विअ पंडुरपरिक्खीणो चिट्ठदि।"[3] (यह मेरा प्रियमित्र मानसरोवर से छुटे हुए हंस के समान उद्विग्न मन वाला, मदस्राव से दुर्बल हाथी की तरह प्रचण्ड सूर्यातप से मुरझाये हुए कमलनाल की तरह, दिन में कान्तिहीन दीपक की तरह तथा प्रभातकालीन पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह पीला और थका सा बैठा हुआ है।) यहाँ प्रत्येक उपमान तथा उपमेय में भेद होने पर भी उनके साधर्म्य का वर्णन किया गया है, अतः यहाँ उपमा अलङ्कार है। कर्पूरमञ्जरी में यत्र-तत्र उपमा के अन्य भेदों के स्थल भी प्राप्त होते हैं।

उत्प्रेक्षा–

उत्प्रेक्षा[4] के प्रति राजशेखर का विशेष लगाव प्रतीत होता है। द्वितीय जवनिकान्तर में नायिका के झूला-झूलने के प्रसङ्ग में कवि ने उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा दी है। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं–

उवरिट्ठिअथणपब्भापीडिअं चरणपंकजजुअं से
फक्कार इव्व मअणं रणंतमणिणेउररवेण।।[5]

---

१. कर्पूरमञ्जरी–४/६
२. 'साधर्म्यमुपमा भेदे'–काव्यप्रकाश–८७
३. कर्पूरमञ्जरी, रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ५१
४. 'सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्'–काव्यप्रकाश–९२
५. कर्पूरमञ्जरी–२/३३

(कर्पूरमञ्जरी के चरणकमल उपर उठे हुए स्तनों के उभार से दबकर मणिनूपुरों के शब्द द्वारा कामदेव को बुलाते हुए से लगते हैं।) यहाँ मणितूपुरों के शब्दों में कामदेव को बुलाने की संभावना की गयी है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

निम्न पद्यों में भी उत्प्रेक्षा की सुन्दर छटा देखी जा सकती है–

ताडंकजुअं गण्डेसु बहलघुसिणेसु घडणलीलाहिं।

देई व्व दोलान्दोलणरेहाओ गणणकोदुएण।।[१]

(कर्पूरमञ्जरी के कानों में पड़े हुए ताटंक उसके कुमकुम लगे हुए कपोलों पर बार-बार लगने से ऐसे मालूम देते हैं, जैसे झूला-झूलने की गिनती करने के लिए रेखायें लगाते हों।)

णअणाइं पसिदिसरिसाइं झत्ति फुल्लाइँ कोदुहल्लेण।

अप्पेन्ति व्व कुवलआसलीमुहे पञ्चबाणस्स।।[२]

(कर्पूरमञ्जरी की बड़ी–बड़ी आँखें कौतूहल में एकाएक खुली हुई ऐसी लगती हैं, मानो कामदेव ने नीलकमलरूपी बाण कामिपुरुषों के मन पर छोड़ दिया हो।)

विशेषोक्ति–

द्वितीय जवनिकान्तर में विशेषोक्ति अलङ्कार[३] का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है–

किसलअकरचरणा वि हु कुवलअणअणा मिअङ्कवअणा वि।

अहह! णवचंपअङ्गी तह वि हु तावेइ अच्चरियं।।[४]

(नये पत्तों के समान कोमल चरणों वाली, नीलकमल के समान नेत्रों वाली, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तथा चम्पा के नये फूल के समान मनोहर अङ्गों वाली यह कर्पूरमञ्जरी सन्ताप

---

१. कर्पूरमञ्जरी–२/३७

२. कर्पूरमञ्जरी–२/३८

३. 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः'–काव्यप्रकाश–१०८

४. कर्पूरमञ्जरी–२/४२

उत्पन्न करती है–यह बड़ा आश्चर्य है।) यहाँ संताप निवारण के उपायों के होने के बावजूद संताप की उत्पत्ति दिखाई गयी है। अर्थात् कारण के एकत्र होने पर भी कार्य का कथन नहीं हुआ है। अतः यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

व्यतिरेक–

कर्पूरमञ्जरी में यत्र-तत्र व्यतिरेक अलङ्कार[1] का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है, राजशेखर द्वारा अपने विषय में लिखा गया निम्न पद्य व्यतिरेक का सुन्दर उदाहरण है–

सो अस्स.कई सिरिराअसेहरो तिहुअणं पि धबलेंति।
हरिणंकपालिसिद्धिए णिक्कलंका गुणा जस्स।।[2]

(वह इस (सट्टक) के लेखक कवि राजशेखर हैं, जिनके निष्कलङ्क गुणों से त्रिभुवन उज्ज्वल हो रहा है। चन्द्रमा तो केवल एक भूतल को प्रकाशित करता है, ये तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं) यहाँ उपमेय राजशेखर का उपमान चन्द्रमा से व्यतिरेक अर्थात् आधिक्य वर्णन किया गया है। अतः यह व्यतिरेक अलङ्कार का उदाहरण है।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन के सन्दर्भ में व्यतिरेक अलङ्कार का निम्न उदाहरण अत्यन्त रोचक है–

मा कहं पि वअणेण विब्भभो होउ इत्ति तुह णूणमिन्दुणा।
लत्तणंछणच्छलमसीविसेसओ पेच्छ बिम्बफलये णिए कओ।।[3]

(तेरे मुख को देखकर लोग चन्द्रमा न समझ बैठें, इसलिए निश्चय ही चन्द्रमा ने अपने मण्डल में कलङ्क के बहाने यह धब्बा लगा दिया है, तू देख।)

---

१. 'उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः'–काव्यप्रकाश–१०५
२. कर्पूरमञ्जरी–१/१०
३. कर्पूरमञ्जरी–३/३२

स्वाभावोक्ति–

स्वाभावोक्ति अलङ्कार[1] के भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत कृति में प्राप्त होते हैं। इस अलङ्कार से अलङ्कृत निम्न पद्य प्रशंसनीय है–

जं धोआंजणसोणलोअणजुअं लग्गालअग्गं मुहं
हत्थालंबिदकेसपल्लवचए दोल्लंति जं बिंदुणो।
जं एक्कं सिचअंचलं ण्णिबसिदं तं ण्हाणकेलिट्ठिदा
आणोदा इअमब्भुदेक्कजणणी जोईसरेणामुणा।।[2]

(इसकी आँखों में अंजन धुला हुआ है, आँखें लाल हैं, मुख पर अलकें बिखरी हुई हैं। हाथ से अपने केशों को पकड़ी हुई है और केशों से पानी की बूँदें टपक रही हैं। एक ही वस्त्र से शरीर ढंका है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि–स्नानक्रीड़ा के बाद योगीश्वर ने इस अपूर्व सुन्दरी को उपस्थित किया है।)

सहोक्ति–

कर्पूरमञ्जरीकार ने सहोक्ति अलङ्कार[3] का भी प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

सह दिवसणिसाहिं दीहरा सासदण्डा सह मणिवलएहिं बाहधारा गलन्ति।
सुहअ! तुह विओए तेअ उव्वेअणीए सह अ तणुलदाए दुव्वला जीविदासा।।[4]

(हे प्रिय! तुम्हारे वियोग में व्याकुल हुई उस कर्पूरमञ्जरी रात और दिन के साथ-साथ श्वास दण्ड बढ़ते जा रहे हैं। मणिवलयों के साथ आँसुओं की धारा गिरने लगती है और उसकी कोमल देहलता के साथ जीवन की आशा क्षीण होती जा रही है।) यहाँ सह शब्द के अर्थ की सामर्थ्य

---

१. 'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्'–काव्यप्रकाश–१११
२. कर्पूरमञ्जरी–१/२६
३. 'सा सहोक्तिः सहार्थस्य बलादेकं द्विवाचकम्'–काव्यप्रकाश–११२
४. कर्पूरमञ्जरी–२/९

से श्वासदण्डाः पद, दिवस-निशा आदि पदों के साथ प्रतीत हो रहा है। अतः यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है। आचार्य मम्मट ने भी 'काव्यप्रकाश' में सहोक्ति के उदाहरण के रूप में इस पद्य को उद्धृत किया है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में अलङ्कार-निरूपण

विश्वेश्वर ने शृङ्गारमञ्जरी में सौन्दर्य-वर्धन हेतु विविध अलङ्कारों का आश्रय लिया है। कुछ प्रमुख अलङ्कारों के प्रयोग द्रष्टव्य हैं—

अनुप्रास—

प्रस्तुत कृति में आद्योपान्त अनुप्रास की छटा दिखाई पड़ती है। निम्न पद्य में उसका सुन्दर प्रयोग देखा जा सकता है—

सिविणअदसाबलेण अज्जो परकामिणीसत्तो।
अइवेलं अणुहूओ तेण तहिं तारिसं वुत्तं।।[१]

(स्वप्न में होने वाली दशा में मुझे आर्य को अधिक समय तक पर-कामिनी में आसक्त रहने का अनुभव होने से ऐसा हुआ।) यहाँ ण्, स्, त् आदि वर्णों की अनेक बार आवृत्ति हुई है, जिससे यहाँ अनुप्रास अलङ्कार है।

उपमा—

उपमा अलङ्कार के विविध प्रयोग प्राप्त होते हैं। विदूषक के निम्न कथन में पूर्णोपमा का प्रयोग प्रशंसनीय है—

केसरिदड्ढापडिओ फुरंतओ ठेरहरिणो व्व।
मुक्को म्हि देव्वजोआ इदो वरं केरिसं कुसलं।।[२]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/१३
२. शृङ्गारमञ्जरी—४/१०

(सिंह के दाढ़ो की भयानक पकड़ में फँसे हुए बेचारे बूढ़े हरिण की भाँति आज मैने सौभाग्यवश छुटकारा पाया है। इससे बढ़कर और क्या कुशलता हो सकती है।) यहाँ हरिण उपमान है, विदूषक उपमेय है, मुक्त होना साधारण धर्म और इव सादृश्यवाचक शब्द है। इस प्रकार यह पूर्णोपमालङ्कार का स्थल है।

मालोपमालङ्कार के भी स्थल प्राप्त होते हैं। निम्न उदाहरण में मालोपमा का प्रयोग अत्यन्त रोचक है–

दाढत्तं विअ राहुणो ससि कला हंसि व्व मेहंतर
माअंगस्स मुणालिअ व्व वअणं मुत्त व्व पंकुक्करं।
तारा दारुणकेदुणो व्व उअरं छाआसुअग्गासदं
संपत्ता विअ रोहिणी पिअअमा दुत्थं अवत्थं गआ।।[१]

(मेरी दुलारी भी कष्ट की दुर्दशा को प्राप्त हुई है, जो राहू के दाढ़ों में आयी हुई चन्द्रकला की तरह है, बादलों के मध्य में आयी हुई हंसिनी-सी, हाथी के मुँह में कमलनाल के समान, कीचड़ में पड़ी हुई मोतियों के लड़ी-सी, भयानक धूमकेतु के उदर में पड़े हुए तारे के समान और राहु का कौर बनने वाली रोहिणी की तरह है।) यहाँ नायिका की दशा को अनेक उपमानों के माध्यम से प्रस्तुत कर लड़ी-सी बना दी गयी है। इस प्रकार यहाँ मालोपमालङ्कार है।

रूपक–

कवि को विशेष रूप से प्रिय अलङ्कारों में रूपक[२] को माना जा सकता है। कवि ने बहुशः इसका प्रयोग किया है। कुछ सुन्दर प्रयोग अवलोकनीय हैं–

तुह पेच्छणेण सहसा वड्ढंतो मम्महहुआसो।
देहलदिआइ इतीए किं कअवंतोत्ति ण मुणामो।।[३]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी–४/६
२. 'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः'–काव्यप्रकाश–९३
३. शृङ्गारमञ्जरी–२/४

(तुम्हारे दर्शन से अचानक भड़क उठने वाले कामानल ने उसकी देहलता को कैसा कर डाला? यह ज्ञात नहीं होता।) यहाँ देह में लतिका का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

निम्न पद्म में भी रूपक का प्रयोग रोचक है—

आसाइदो वअणपुण्णसुहामऊह-

बिंबावलोअणरसो णअणेहिँ एण्हिं।

आअण्णणेण महुराणां सुजंपिआण

सोत्ताण होउ णवरं अमआहिसेओ।।[१]

(इस समय आप के आगमन से आप के अमृत किरण वाले पूर्ण मुख-चन्द्र के दर्शन का नेत्रों को आनन्द मिला। अब अपने मधुर वचनों को सुनाकर कानों में भी अमृत का सिंचन कर दें।) यहाँ मुख पर चन्द्र का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपक अलङ्कार है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रयोग प्रस्तुत कृति में प्राप्त होते हैं।

उत्प्रेक्षा—

उत्प्रेक्षा अलङ्कार भी कवि को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होता है, क्योंकि इसके अनेक प्रयोग प्रस्तुत सट्टक में दिखाई पड़ते हैं। इसके कुछ प्रयोग उदाहरणीय हैं—

माहवीण मउलग्गविलग्गा माणसे फुरइ छप्पअमाला।

मुत्तिआमरगअप्पवरेहिं गुंफिदा महुसिरीरसण व्व।।[२]

(माधवी-लताओं की छोटा-छोटी कलियों के अगले भाग पर बैठी हुई भौरों की कतार मेरे मन में स्फुरित हो रही है, मानो यह मोतियों की माला के साथ मरकतमणि की गूँथी हुई वसन्तलक्ष्मी

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—४/१९

२. शृङ्गारमञ्जरी—२/१४

की करधनी हो।) यहाँ कलियों पर बैठी हुई भौरों की कतार में वसन्तलक्ष्मी की करधनी की संभावना किया गया है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है। उत्प्रेक्षालङ्कार के अन्य कुछ स्थल देखे जा सकते हैं—

उम्मिल्लचंपअकदंबअजाअसंगा
एदे सिलीमुहगणा थिमिआ फुरंति।
कादुं वसे तिहुअणं रइवल्लहेण
कत्थूरिआइ गुलिअ व्व हुआ हुआसे।।[१]

(खिले हुए चम्पक-पुष्पों के गुच्छों पर भौरों के झुण्ड निश्चल होकर बैठे हैं। लगता है मानों वे तीनों भुवनों को अपने वश में करने के लिए कामदेव द्वारा अग्नि में आहुत हुई कस्तूरी की गोली हो।) यहाँ चम्पक पुष्पों के गुच्छों पर बैठे भौरों में अग्नि में आहुत हुई कस्तूरी का उत्कटैककोटिक सन्देह किया गया है, जिससे यहाँ उत्प्रेक्षालङ्कार है। इसी प्रकार के अन्य अनेक उत्प्रेक्षालङ्कार के स्थल प्रस्तुत सट्टक में उपलब्ध हैं।

दृष्टान्त—

कवि ने दृष्टान्त अलङ्कार[२] से भी अपनी नाट्यकृति को अलङ्कृत किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

अविबुहविहीसिआहिं ण क्खु बुहा परिहुवी अंति।
ण विलोइओ सुदो वा तिमिरेहिं रइतिरक्कारो।।[३]

(निश्चय ही विद्वान मूर्खों की घुड़कियों से पराभूत नहीं हुआ करते, क्योंकि अन्धकार द्वारा सूर्य का तिरस्कार न तो देखा गया और न सुना गया है।) यहाँ उपमान-वाक्य एवं उपमेय-वाक्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है, अतः यहाँ दृष्टान्त अलङ्कार है।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१५
२. 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्'—काव्यप्रकाश—१०२
३. शृङ्गारमञ्जरी—२/२५

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति मानव की सहचरी है। जीवन-पर्यन्त प्रकृति के सामीप्य के कारण मनुष्य का प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध हो जाता है। साहित्य जगत में प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन दोनों ही रूपों में चित्रण प्राप्त होता है। आलम्बन रूप वाले वर्णनों में प्रकृति स्वयं वर्ण्य रहती है तथा उद्दीपन रूप में उसका मानव-प्रकृति के उपर उत्पन्न प्रभाव ही वर्ण्य विषय रहता है। रस के उपनिबन्धन में कवि प्राकृतिक दृश्यों का उद्दीपन विभाव के रूप में आश्रय ग्रहण करता है। प्रकृति के विभिन्न रूप जैसे—वन, उपवन, नदी, शैल, सूर्योदय, चन्द्रोदय, वसन्त-ऋतु, कोकिल-स्वर, मेघमाला आदि मानवीय भावों को उद्दीप्त करने वाले होते हैं। साहित्य में अवसर के अनुसार प्रकृति के मंजुल एवं भयावह दोनों ही स्वरूपों का चित्रण प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियों में भी रस के अनुकूल वातावरण के सृजन हेतु प्रकृति-वर्णनों का सहारा लिया गया है, जिनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत है—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-वर्णन प्रमुखता से प्राप्त होता है। राजशेखर वर्णन करने में नितान्त निपुण हैं। यद्यपि वर्णन नाट्य की प्रकृति के विरुद्ध होता है। फिर भी राजशेखर ने प्रकृति की सहजता, सुकुमारता, उदात्तता आदि से अपने नाट्य को सिक्त करने का मोह न छोड़ पाते हुए; वसन्त, ग्रीष्म, सन्ध्या, चाँदनी आदि के वर्णन के लिए कथा के प्रवाह में ही अनेक अवसर तलाश लिया है। उनके वर्णन लम्बे एवं विविधतापूर्ण हैं। वे जिस तन्मयता से वसन्त की सुकुमारता के वर्णन में प्रवृत्त होते हैं; उसी मनोयोग से ग्रीष्म की भयावहता का भी वर्णन किया है।

कथा का प्रारम्भ ही वसन्त-वर्णन से होता है; जहाँ राजा, रानी, वैतालिक आदि विविध प्रकार से वसन्त-वर्णन में सन्नद्ध हैं; वहीं विदूषक भी अपनी अनूठी उक्तियों द्वारा वसन्त-वर्णन करते हुए हास्य की उद्भावना करता है। राजशेखर का वसन्त-वर्णन इतना विशद है कि विभिन्न प्रकार

के दृश्य आँखों के सामने से गुजरते हुए से दिखाई पड़ते हैं। चम्पा, मल्लिका एवं पलास-कुसुम का सुन्दर वर्णन द्रष्टव्य है—

जादं कुंकुमपंकलीढमरठीगंडप्पहं चंपअं
थोआवट्टिअदुद्धमुद्धकलिआ पप्फुल्लिया मल्लिआ।
मूले सामलमग्गलग्गभमलं लक्खिज्जए किंसुअं
पिञ्जंतं भमलेहिं दोहिं बि दिसाभाएसु लग्गेहिं ब।।[१]

(कुङ्कुम राग लगे हुए महाराष्ट्र की स्त्रियों के कपोलों की तरह चम्पा फूल पीला और लाल हो गया है। कुछ-कुछ विलोए हुए दुग्ध की तरह सुन्दर कलियों वाली मल्लिका पुष्पलता भी खिल उठी है। मूलभाग में काले वर्ण का और अग्रभाग में भौरों से युक्त पलास कुसुम ऐसा लगता है, जैसे कि उसके दोनों ओर दो भौंरे बैठे हों और इसका रसपान कर रहे हों।) शैत्य, मान्द्य एवं सौरभ इन तीनों गुणों से युक्त पवन का वर्णन कितना यथार्थ एवं रोचक है—

लंकातोरणमालिआतरलिणी कुंभुब्भवस्सास्समे
मंदंदोलिअचंदणद्दुमलदाकप्पूरसंपक्किणो।
कंकोलीकुलकंपिणो फणिलदाणिप्पट्टणट्टाबआ
चंडं चुंबिदतंबबण्णिसलिला बाअंति चित्ताणिला।।[२]

(लङ्कानगरी के बहिर्द्वार पर स्थित मालाओं को हिलाने वाली, अगस्त ऋषि के आश्रम में अर्थात् दक्षिण दिशा में मन्द-मन्द हिलती हुई, चन्दन और कपूर की लताओं के सौरभ से युक्त, कङ्कोली (काली मिर्च) की लताओं को कँपाने वाली, ताम्बूलबल्लियों को मन्द-मन्द नचाने वाली और ताम्रपर्णी नदी के जल का स्पर्श लिये हुए चैत्र मास की हवायें चल रही हैं।)

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/१६
२. कर्पूरमञ्जरी—१/१७

एक तरफ कवि ग्रीष्म-ऋतु के विषय में बड़े दिन एवं सूर्य की प्रचण्डता का नियम बनाने वाले विधि को छुरी से काट डालने के लिए कहता है,[१] वहीं उस ग्रीष्म की सुखप्रद स्थिति पर मुग्ध होकर उसके कल्याण की कामना करता है—

"पण्डुच्छविच्छुरिदणाअलदादलाणं साहारतेल्लपरिपेसलपोप्फलाणं।
कप्पूरपंसुपरिवासिदचन्दणाणं भद्दं णिदाहदि असाणं वअस्स! भोदु।।"[२]

(मित्र! पान की बेल के पीले रंग के पत्तों से युक्त, आम, तेल और कोमल पूगफलों वाले तथा कपूर की सुगन्ध से युक्त चन्दन जिसमें खुब पाया जाता है, ऐसे गर्मी के दिनों का कल्याण हो।)

प्रथम एवं द्वितीय जवनिकान्तरों का अंत सायंकाल के आगमन के साथ ही होता है, अतः प्रङ्गानुसार कवि को सायंकाल के वर्णन का अवसर प्राप्त हो जाता है। सायंकाल का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने वाले निम्न पद्य में कवि के कल्पना की उत्कृष्टता दर्शनीय है—

"एअं वासरजीवपिण्डसरिसं चण्डंसुणो मण्डलं
को जाणाइ कहिं पि संपइ गअं एतम्मि कालंतरे।
जाआ किं च इअं पि दीहविरहा सोऊण णाहे गए
मुच्छामुद्दिदलोअण व्व णलिणी मीलन्तपङ्केरुहा।।"[३]

(सायंकाल होते ही दिन के लिए प्राणों के समान सूर्य का मण्डल कहाँ छिप गया; यह कौन जानता है। यह नलिनी भी सूर्यास्त होने पर विरहिणी-सी हो गयी है और इसके मुँदे हुए कमल देखकर ऐसा लगता है, मानो शोक से मूर्च्छा आ जाने पर मिच गयी हैं।)

तृतीय जवनिकान्तर में चाँदनी का बहुविधि वर्णन प्रशंसनीय है। "अन्धकार के लगातार बढ़ने से भूमण्डल के मलिन और वृक्ष की तरह नीले मालूम पड़ने पर, पूर्वदिशा चाँदनी से नये भोजपत्र

---

१. कर्पूरमञ्जरी—४/३
२. कर्पूरमञ्जरी—४/५
३. कर्पूरमञ्जरी—१/३५

के समान पीली हो गयी है। मुचुकुन्द फूल की केसर की शोभा के समान शोभावाली किरणों को बरसाता हुआ चन्द्रमा, देखो किस तरह धीरे-धीरे अपनी कलाओं से पूर्ण हो गया है।"[१] चाँदनी के वर्णन से संवलित निम्न पद्य देखने ही योग्य है—

देन्ता कप्पूरपूरच्छुरणमिव दिसासुन्दरीणं मुहेसु
लण्हं जोण्हं किरन्तो भुअणजणमणोणंदणं चंदणं व्व।
जिण्णं कन्दप्पकन्दं तिहुअणकलणाकन्दलिल्लं कुणन्ता
जादा एणङ्कपादा सअलजलहरोम्मुक्कधाराणुआरा।।[२]

(जल से भरे हुए मेघों से उन्मुक्त धाराओं जैसी चन्द्रमा की किरणें दिशा-रूपी सुन्दरियों के मुख पर कपूर के चूर्ण का लेप-सा देती हुई दिखायी देती हैं। सारे संसार के मन को प्रसन्न करने वाले चन्दन की तरह स्वच्छ और चिक्कण चाँदनी फैल रही है। शान्त कामदेव को तीनों लोकों में फैलाकार ये चन्द्रकिरणें काम का उद्दीपन कर रही हैं।

द्वितीय जवनिकान्तर में झूले पर झूलती हुई नायिका एवं चतुर्थ में नृत्य की छटा का सुन्दर चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का इनमें अभाव है, फिर भी संगीतात्मक लम्बे पद्य, नादात्मक भावानुभूति एवं ललित पद्य रचना में राजशेखर अग्रगण्य हैं।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में प्रकृति-चित्रण

शृङ्गारमञ्जरीकार ने अवसर के अनुकूल प्रकृति-वर्णन का आश्रय लेते हुए कथा को आगे बढ़ाया है। कवि प्रकृति वर्णन में सिद्धहस्त है। वर्णनों में सजीवता, स्वाभाविकता एवं उत्कृष्ट कल्पनाओं का समायोजन प्रशंसनीय है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण एवं सचित्र वर्णन अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं। कवि ने प्रकृति के सकुमार एवं भयावह दोनों ही रूपों का वर्णन किया है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी—३/२५
२. कर्पूरमञ्जरी—३/२८

कथा के घटनाओं की शुरुआत वसन्त-ऋतु में होती है, जिसकी प्रस्तावना में सूचना मात्र दी गयी है। द्वितीय जवनिकान्तर में, मदनपूजा हेतु उपवन के मध्य से गुजरने के प्रसङ्ग में वसन्त की सुषमा पर मोहित नायक एवं विदूषक द्वारा वसन्त की सुकुमारता के वर्णन का अवसर प्राप्त होता है। वसन्त के कारण उद्यान की शोभा बढ़ गयी है। विभिन्न फूलों पर बैठे भौंरों की भिन्न-भिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से किया गया वर्णन उत्कृष्ट कोटि का है। राजा कहता है—"भौंरों की पंक्ति वासन्ती लता की उभरी हुई कलिकाओं की पँखुड़ियों के बीच में स्थित है, जो कामदेव की भौंरों से मिलकर बनी डोरी-सी लग रही है।"[१] "माधवी लताओं की छोटी-छोटी कलियों के अग्रभाग पर बैठी हुई भौंरों की कतार मन में स्फुरित हो रही है, मानो यह मोतियों की माला के साथ मरकतमणि की गूँथी हुई करधनी हो।"[२] "चम्पक फूलों के गुच्छों पर भौंरों का झुण्ड निश्चल होकर बैठे हैं। लगता है मानो तीनों भुवनों को अपने वश में करने के लिए कामदेव द्वारा अग्नि में आहुत की हुई कस्तूरी की गोली हो।"[३] वसन्त में वन के अनुपम सौन्दर्य की छटा का वर्णन करने वाले निम्न पद्य में कवि की कल्पना की उत्कृष्टता दर्शनीय है—

> गुच्छेहिं सपओहर व्व भसलोहेहिं सकेस व्विअं
> प्पाणंति व्विअ दाहिणेण पवणेणाइव्व अमोइणा।
> जपंति व्व पिईरुवेण सअला जा जंपएहिं व सा
> पुप्फेहिं व विभूसिआ वणसिरी णिम्माइ कोदूहलं।।[४]

(वनशोभा फूलों के गुच्छों से मानो उरोजों वाली बन रही है, भौंरों के समूह से केशों वाली लग रही है, अधिक सुगन्ध से पूर्ण दक्षिण पवन से श्वासों को लेती हुई-सी लग रही है। कोकिलाओं

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१३
२. शृङ्गारमञ्जरी—२/१४
३. शृङ्गारमञ्जरी—२/१५
४. शृङ्गारमञ्जरी—२/२०

के आलापों से मानो बोल रही है और चम्पक वृक्षों के पुष्पों से सुशोभित होती हुई वनश्री अतिशय कौतूहल को उत्पन्न कर रही है।)

वसन्त के सुकुमार रूप का वर्णन करने के साथ-साथ उसके भीम रूप के चित्रण में भी कवि ने कुशलता का परिचय दिया है। वही मनोहर वसन्त जो सामान्य चित्त वाले के लिए सुखद होता है; विरही व्यक्ति की दृष्टि में कितना भयावह है। इस रूप में वसन्त का वर्णन करने वाला निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

> एदे चंदणरुक्खसंगदमहादव्वीअराहीसर-
> प्पच्चुग्गिण्णहलाहलाइ व खलफ्फंसाउला मारुआ।
> वल्लीसुं किदभूरिवेल्लणभरा बाणे पसूणेसुणो
> दिद्धे किं णु कुणंति हा विरहिणां सव्वाण काउं वहं।।[१]

(ये पवन चन्दनवृक्षों पर लिपटे हुए बड़े-बड़े नागराजों के मुख से निकलने वाले मानो हलाहल हैं, जो केवल छू लेने से (विष की तरह) बेचैनी उत्पन्न करने वाले हो रहे हैं। ये पवन अधिक शक्ति के साथ अपनी सुन्दर चाल के भार को लताओं पर रखते हैं। लगता है, ये निश्चय ही सभी विरही जनों के वध हेतु कामदेव के वाणों को किस प्रकार घातक बना दे रहे हैं।)

विश्वेश्वर के प्रकृति-वर्णन का चरमोत्कर्ष तृतीय जवनिकान्तर में सन्ध्या एवं रात्रि के वर्णन के प्रसङ्ग में दिखाई पड़ता है। प्रदोषकाल से प्रारम्भ कर गहन अन्धकार तक का क्रमशः वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक सरस एवं ललित है। जिस प्रकार सन्ध्या के बाद क्रमशः अँधेरे की गहनता, बढ़ते हुए घनघोर अन्धकार का रूप ले लेती है। उसी प्रकार कवि भी अपने वर्णन में सन्ध्या का वर्णन करने के बाद उत्तरोत्तर अन्धकार की गहनता का वर्णन करते हुए, अंततः भयंकर अंधकार के वर्णन में प्रवृत्त हुआ है। सन्ध्या का वर्णन करते हुए कहता है—"वह प्रदोषकाल प्रकट हुआ है, जो वरुण और इन्द्र के

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—२/१७

दिशामुखों को क्रमशः लाल और मलिन कर रहा है। चन्द्रकिरणों और सूर्यकिरणों से विकसित होने वाले कुमुद एवं कमलों को क्रमशः विकसित एवं संकुचित कर रहा है। और जो चक्रवाकी को अपने प्रिय के अनुकूल एवं प्रतिकूल होने के आधार पर अभिसार करने वाला हो रहा है।"[१] सन्ध्या समय कुमुदों एवं कमलों की एक सी अवस्था का वर्णन अत्यन्त रोचक है—

अण्णोण्णाहिमुहपरम्मुहावलेहिं
पत्तेहिं रइअरधाउरंजिएहिं।
एअस्सिं उअहमुहुत्तए अवत्था
जाअंभोरुहकुसुमाण एक्करूआ।।[२]

(जरा देखो, इस समय एक–दूसरे की तरफ मुँह किये हुए और एक-दूसरे की ओर मुँह मोड़े हुए इन कमलों और कुमुदों की अवस्था सूर्यकिरणरूपी धातु से रंजित हुए पत्तों से एक सी हो रही है।)

सूर्य किरणों के विलुप्त होने पर कमलों की दशा का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है—"ऊपर की ओर उठने वाले ये कमलदल, सूर्य की किरणों के स्पर्श से रहित होने से, शिशिरत्व की उत्कट इच्छा से मानो एक–दूसरे के गले लग रहे हैं।"[३] घने अन्धकार के प्रसार की अनेक सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से कवि ने अत्यन्त मनोहारी एवं स्वाभाविक चित्र खींचा है। ऐसा ही एक उदाहरण द्रष्टव्य है।—

मग्गं व उण्णमिअं कज्जलपव्वअम्मि
हीणं व तुल्लसमअं णअणिंदिएहिं।
आपूरिअं व णिबिडेहिं समीभरेहिं
जाअं जअं पसरिए तिमिरुक्करम्मि।।[४]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—३/१५
२. शृङ्गारमञ्जरी—३/१८
३. शृङ्गारमञ्जरी—३/१९
४. शृङ्गारमञ्जरी—३/२९

(घने रूप में अंधेरे के अधिक फैलने से ऐसा लग रहा है, मानो यह संसार काजल के पहाड़ पर चढ़कर डूब गया हो। एक साथ ही मानो आँखों से हीन हो चुका हो या गाढ़ी स्याही के बोझ से भरा जा चुका हो।)

निश्चय ही विश्वेश्वर के वर्णनों में सजीवता, सरसता एवं चित्रात्मकता है। इनके वर्णनों में अलङ्कृतता सर्वत्र विद्यमान है। वर्णनों में कल्पना की नवीनता एवं नई सूझ–बूझ विशेष प्रशंसनीय है।

छन्द

नाट्य के शरीर स्थानीय तत्त्वों में छन्द का विशेष महत्त्व है। जैसे चरण के बिना आत्मवान प्राणी में गति नहीं आती, उसी प्रकार काव्य या नाट्य में छन्द के बिना गति या प्रवाह नहीं आ पाता। इसीलिए छन्द को वेद का चरणयुगल कहा गया है।[१] भावों का आच्छादक होने के कारण छन्द का यह नाम सार्थक है।[२] कात्यायन ने 'सर्वानुक्रमणी' में छन्द का लक्षण दिया है– "यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः" अर्थात्, संख्या-विशेष में वर्णों की सत्ता छन्द है। विवेच्य-कृतियों में छन्दों का वैविध्य दृष्टिगत होता है, जो क्रमशः प्रस्तुत है–

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में कुल १४३ छन्द हैं, जिनमें वर्णिक एवं मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार कुल १९ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। शार्दूलविक्रीडित राजशेखर का अत्यन्त प्रिय छन्द है, अतः क्षेमेन्द्र ने उनके शार्दूलविक्रीडित की प्रशंसा की है–

शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखैरुच्चशेखरः।।[३]

---

१. 'छन्दः पादौ तु वेदस्य'।

२. 'छन्दांसि छादनात्'-यास्क

३. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास; कपिलदेव द्विवेदी द्वारा उद्धृत, पृष्ठ ४३५

आर्या, स्रग्धरा एवं वसन्ततिलका छन्दों का भी उन्होंने अत्यधिक प्रयोग किया है। कर्पूरमञ्जरी में प्रयुक्त छन्दों का विवरण इस प्रकार है—

आर्या—

कर्पूरमञ्जरी के एकतीस छन्दों में आर्या[१] का प्रयोग हुआ है। ये इस प्रकार हैं—प्रथम जवनिकान्तर में छन्दसंख्या—३, ५, ७, ८, ९, एवं १०; द्वितीय जवनिकान्तर में छन्द संख्या—१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४८ एवं ४९; तृतीय जवनिकान्तर में छन्द संख्या—८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर में छन्द संख्या—१९। कर्पूरमञ्जरी में आर्या छन्द के प्रयोग का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

ससिखंडमंडमाणं
सममोहणासाणं सुरअणपिआणं।
गिरिसगिरिंदसुआणं
संघाडो वो सुहं देउ।।[२]

यहाँ आर्या के लक्षणानुसार प्रथम एवं तृतीय पाद में बारह—बारह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ में क्रमशः अट्ठारह एवं पन्द्रह मात्राएं हैं।

शार्दूलविक्रीडित—

कुल तेईस पद्य शार्दूलविक्रीडित[३] छन्द में निबद्ध हैं। ये इस प्रकार हैं— प्रथम जवनिकान्तर की छन्द संख्या—१, १३, १६, १७, १८, २०, २६, २९, ३२ एवं ३५; द्वितीय जवनिकान्तर की

---

१. 'यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीयचतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या ।।'—श्रुतबोध—६

२. कर्पूरमञ्जरी—१/३

३. 'सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्' वृत्तरत्नाकर—३/९९

छन्द संख्या–१, ३, ८, २७, २९ एवं ४६; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द संख्या–१, ३, २५ एवं २७ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द संख्या–४, ९ एवं २३। शार्दूलविक्रीडित छन्द का निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है–

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

सच्चे णन्ददु सज्जणाणँ सअलो वग्गो खलाणं पुणो

णिच्चं खिज्जदु होन्दु ब्रह्मणजणा सच्चासिहो सव्वदा।

मेहो मुञ्चदु सञ्चिदं वि सलिलं सस्सोचिदं भूदले

लोओ लोहपरम्मुहोऽणुदिअहं धम्मे मई भोदु अ।।[१]

यहाँ शार्दूलविक्रीडित छन्द के लक्षणानुसार चारो चरणों में उन्नीस–उन्नीस वर्ण हैं; जो एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण एवं एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित हैं। इसमें बारह एवं सात वर्णों पर यति है।

वसन्ततिलका–

वसन्ततिलका[२] छन्द का प्रयोग भी तेईस पद्यों में हुआ है। जैसे–प्रथम जवनिकान्तर की छन्द संख्या—१४, १९, २१, २४, २५ एवं २७; द्वितीय जवनिकान्तर की छन्द संख्या–४, ५, ६ एवं २६; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द संख्या—९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ एवं २२ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द संख्या—५, ८ एवं २१। कर्पूरमञ्जरी सट्टक से वसन्ततिलका छन्द का उदाहरण प्रस्तुत है–

---

१. कर्पूरमञ्जरी—४/२३

२. 'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः '–वृत्तरत्नाकर–३/७८

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ। । ऽ । ऽ ऽ

छल्लंति दंतरअणाइं गदे तुसारे

ईसीसि चंदनरसम्मि मणः कुणंति।

एणहिं सुवंति घरमज्झमसालिआसु

पाअंतपुंजिअपडं मिहुणाइं पेच्छ।।[१]

यहाँ वसन्ततिलका छन्द के लक्षण के अनुसार चारो चरणों में चौदह-चौदह वर्ण हैं; जो एक तगण, एक भगण, दो जगण एवं दो गुरू के क्रम से व्यवस्थित हैं। इसमें पदान्त में यति है।

स्रग्धरा–

कुल ग्यारह छन्दों में स्रग्धरा[२] का प्रयोग हुआ है। जैसे—प्रथम जवनिकान्तर की छन्द संख्या-४, १५ एवं ३६ ; द्वितीय जवनिकान्तर की छन्द संख्या-१०, २८, ३१, ४१ एवं ५०; तृतीय जवनिकान्तर की छन्द संख्या—१९ एवं २८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द संख्या—७। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है-

ऽ ऽऽऽ । ऽऽ । । । । ।   । । ऽ   ऽ । ऽऽ । ऽऽ

ईसारोसप्पसादप्पणदिसु बहुसो सग्गगंगाजलेहिं

आ मूलं पूरिदाए तुहिणअरअलारुप्पसुत्तीअ रुद्दो।

जोण्हामुत्ताफलिल्लं णदमउलिणिहित्तग्गहत्थेहिं दोहिं

अग्घं सिग्घं ब देंतो जअइ गिरिसुआपाअपं केरुहाणं।।[३]

यहाँ स्रग्धरा छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण में एक्कीस वर्ण हैं तथा प्रत्येक चरण-एक मगण, एक रगण, एक भगण, एक नगण एवं तीन यगण के क्रम से व्यवस्थित है। इसमें सात-सात वर्णों पर यति है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/१४

२. 'मभ्नैर्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्'-वृत्तरत्नाकर-३/१०३

३. कर्पूरमञ्जरी—१/४

रथोद्धता—

कुल आठ छन्दों में रथोद्धता[1] का प्रयोग हुआ है। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर की पद्य संख्या-११; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—७; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२१, २४, ३१, ३२, ३३ एवं ३४। निम्न पद्य में रथोद्धता का प्रयोग द्रष्टव्य है—

ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽ।ऽ

केअईकुसुमपत्तसंपुडं

पाहुडं तुअ सहीअ पेसिदं।

एणणाहिमसिवण्णसोहिणा

तं सिलोअजुअलेण लञ्छिदं।।[2]

यहाँ रथोद्धता के लक्षण के अनुसार प्रत्येक चरण में ग्यारह-ग्यारह वर्ण हैं; जो एक रगण, एक नगण, एक रगण, एक लघु एवं एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित हैं। पदान्त में यति है।

मालिनी—

कुल सात पद्यों में मालिनी[3] छन्द का प्रयोग हुआ है। ये इस प्रकार हैं—द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—९, २४ एवं ४४; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२, ७ एवं १८ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२०। निम्न पद्य में मालिनी का प्रयोग देखा जा सकता है—

।। ।।।। ऽ ऽ ऽ । ऽऽ।ऽऽ

भुअणजअपडाआ रूअसोहा इमीए

जह जह णअणाणं गोअरे जस्स जाइ।

वसइ मअरकेदू तस्स चित्ते विचित्तो

वलइअधणुदंडो पुंखएहिं सरेहिं।।[4]

---

१. 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ'-वृत्तरत्नाकर-३/३९

२. कर्पूरमञ्जरी—२/७

३. 'ननमययुतेयं, मालिनी भोगिलोकैः'-वृत्तरत्नाकर-३/८३

४. कर्पूरमञ्जरी—४/२०

यहाँ मालिनी छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक पाद में पन्द्रह वर्ण हैं; जो दो नगण, एक मगण एवं दो यगण के क्रम से व्यवस्थित हैं। यहाँ आठ एवं सात वर्णों पर यति है।

अन्य छन्द—

कुल चार पद्यों— १/२२, ३/५, ३/६ एवं ४/१० में इन्द्रवज्रा छन्द; सात पद्यों—१/३४, २/३२, २/४७, ३/२०, ३/२६, ४/३, एवं ४/६ में पृथ्वी छन्द; पाँच पद्यों-१/३०, १/३३, २/२, २/२३, एवं २/३० में मन्दाक्रान्ता छन्द; सात पद्यों-१/२८, १/३१, २/२५, ४/११, ४/१२, ४/१३ एवं ४/१५ में उपजाति छन्द; पाँच पद्यों-१/१२, ४/१६, ४/१७, ४/१८, एवं ४/२२ में स्वागता छन्द तथा दो पद्यों—१/२ एवं ४/१ में पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके अलावे कुछ छन्दों का प्रयोग मात्र एक बार ही हुआ है। जैसे—२/४५ में उपगीति, ४/१४ में उपेन्द्रवज्रा, १/६ में गीति, ३/४ वंशस्थ, ३/२९ में शशिवदना, १/२३ में शालिनी तथा २/११ में शिखरिणी है।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में छन्द-योजना

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में उन्नीस प्रकार के, कुल १६९ छन्द प्राप्त होते हैं। इसमें वर्णिक एवं मात्रिक दोनों ही प्रकार के छन्द हैं। आर्या छन्दों की संख्या सर्वाधिक है। इस छन्द के प्रति विश्वेश्वर की विशेष अभिरुचि जान पड़ती है। वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, उपगीति एवं गीति छन्दों का भी अधिक प्रयोग दिखाई पड़ता है। प्रयुक्त छन्दों का विवरण इस प्रकार है—

आर्या—

कुल अड़तीस छन्दों में आर्या का प्रयोग प्राप्त होता है। यथा—प्रथम जवनिकान्तर की छन्द संख्या—५, ७, ८, १०, १४, १५, २१, २३, २७, ३०, ३१, ३२, ३३ एवं ३९; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—३, ९, २२, २७, २९, ३४ एवं ३५; तृतीय जवनिकान्तर पद्य की संख्या—६, ७, १२, २२, २७, २८, ३०, ३७, ४०, ४२, ४९ एवं ६१ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की छन्द संख्या—३, ८, १०, १२ एवं २२ में आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है।

भासाविसेसजाणिरि

सुविदिदसेलूसतंतपरमत्थे।।

बहुवण्णिआसुणिउणे

उवेहि सहसा इदो अज्जे।।[1]

यहाँ आर्या छन्द के लक्षणानुसार प्रथम एवं तृतीय चरण में बारह-बारह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में क्रमशः अठ्ठारह एवं पन्द्रह मात्रायें हैं।

वसन्ततिलका—

शृङ्गारमञ्जरी के कुल तीस पद्य वसन्ततिलका छन्द में निबद्ध हैं। ये हैं—प्रथम जवनिकान्तर की पद्य संख्या—१७, १८ एवं ३५; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—८, १३, १५, १८, २१, ३३, ३७ एवं ३९; तृतीय जवनिकान्तर की श्लोक संख्या—४, १५, १७, २३, २५, २९, ३६, ४१, ४३, ४५, ४८, ५३, ५५, ५८ एवं ६० तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य संख्या—१९, २१ एवं २३। निम्न पद्य में वसन्ततिलका का लक्षण द्रष्टव्य है—

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ
बाहुज्झरो वि लिहिअं लिहिअं ज रेहं

आपुंसइ क्खलइ ताइ मणं भरंतं।

णो लेहणी परमवेविरअंसुलिम्मि

पाणिम्मि ठाइ कहमेत्थ अ किं लिहिस्सं।।[2]

यहाँ वसन्ततिलका के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण हैं; जो एक तगण, एक भगण, दो जगण एवं दो गुरु के क्रम से व्यवस्थित हैं। इसमें पदान्त में यति है।

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/५

२. शृङ्गारमञ्जरी—१/३५

शार्दूलविक्रीडित–

कुल छब्बीस पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध हैं; जो इस प्रकार हैं—प्रथम जवनिकान्तर की पद्य संख्या—१, २, १२, २८, ३६ एवं ३८; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२, ७, १२, १७, २०, २३, ३६, ४० एवं ४१; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—२, ९, १०, १५ एवं ५६ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य संख्या-१, २, ५, ६, १५ एवं २५। इसका उदाहरण प्रस्तुत है—

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ
णाणारूअकइत्तणप्पणअणे अव्वाहओ सव्वओ
सव्वंगे कअचव्वणे वि अहिले कव्वाअमे अव्वणं।
चक्कीणं कुलचक्कवट्टिभणिईचक्के अचुक्कट्ठिदी
आचक्खीअदि अक्खवाअवअणाहिक्खावणे अक्खओ।।[१]

यहाँ प्रस्तुत छन्द के लक्षणानुसार प्रत्येक चरण में उन्नीस वर्ण हैं; जो एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण एवं एक गुरु के क्रम से व्यवस्थित हैं। इसमें बारह एवं सात वर्णों पर यति है।

गीति—

शृङ्गारमञ्जरी के कुल उन्नीस पद्य गीति[२] छन्द में हैं। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर की पद्य संख्या-४, ६, १६, २६ एवं २९; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या-५, १०, ११, १९, २४, ३० एवं ३१ तथा तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या—१४, ३२, ४४, ४६, ४७, ५१ एवं ६२। इसके उदाहरण रूप में निम्न पद्य द्रष्टव्य है—

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/१२
२. 'आर्यापूर्वार्द्धसमं द्वितीयमपि यत्र भवति हंसगते।
छन्दोविदस्तदानीं गीतिं तामभृतवाणि! भाषन्ते।।'—श्रुतबोध–७

सरिसेसु वि वण्णेसुं

इत्थी अक्खरविसेसओ अण्डणो।

तत्थ वि होइ अवंतर

जाई जाए मुणिज्जई विसेसो।।[२]

यहाँ गीति के लक्षणानुसार प्रथम एवं तृतीय चरण में बारह-बारह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में अट्ठारह-अट्ठारह मात्रायें हैं।

उपगीति—

उन्नीस पद्यों में उपगीति[३] छन्द है। जैसे-प्रथम जवनिकान्तर की पद्य संख्या १३ एवं २०; द्वितीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या-४, ६, २५ एवं २८; तृतीय जवनिकान्तर की पद्य संख्या— १, १३, १६, १९, २०, ३१, ३४, ३५, ३८, ५२ एवं ५९ तथा चतुर्थ जवनिकान्तर की पद्य संख्या १८ और २०। इसका एक उदाहरण देखा जा सकता है—

तुह पेच्छणेण सहसा

वड्ढंतो मम्महहुआसो।

देहलदिआइ इतीए

किं कअवंतोत्ति ण मुणामो।।[४]

यहाँ उपगीति छन्द के लक्षणानुसार प्रथम एवं तृतीय चरण में बारह-बारह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में अट्ठारह-अट्ठारह मात्रायें हैं।

---

१. शृङ्गारमञ्जरी—१/४

२. 'आर्योत्तरार्द्धतुल्यं प्रथमार्द्धमपि प्रयुक्तश्चेत् ।
कामिनि! तामुपगीति प्रकाशयन्ते महाकवयः ।।'-श्रुतबोध-८

३. शृङ्गारमञ्जरी—२/४

अन्य छन्द—

कुल सात पद्यों—१/३, १/१९, १/२४, १/२५, ३/३, ३/११ एवं ४/१६ में पृथ्वी छन्द; सात पद्यों—२/३२, ३/८, ३/२१, ३/३३, ३/३९, ३/५४ एवं ४/११ में मालिनी छन्द; छः पद्यों—१/९, २/२६, ३/५७, ३/६३, ४/९, एवं ४/१४ में उद्गीति छन्द; तीन पद्यों—१/४०, ४/१७ एवं ४/२४ में मन्दाक्रान्ता छन्द; तीन पद्यों—१/३४, १/३७ एवं ३/५० में औनुपच्छन्दसिका; दो पद्यों २/१ एवं ३/१८ में प्रहर्षिणी तथा दो पद्यों— ३/२६ एवं ४/४ में शिखरिणी छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ छन्द मात्र एक बार ही प्रयुक्त हुए हैं, जैसे–३/१४ में उपजाति, ४/१३ में दण्डक, १/२२ में पुष्पिताग्रा, ४/७ में मंजुभाषिणी, १/२ में वैतालीय, २/१६ में स्रग्धरा एवं २/१४ में स्वागता छन्दों का प्रयोग हुआ है।

छन्द सम्बन्धी उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, कि—लोक-भाषा-प्राकृत में रचना करने के बावजूद, राजशेखर एवं विश्वेश्वर दोनों ही सट्टककारों ने अपनी कृतियों में उन्हीं छन्दों का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग अब तक के संस्कृत-भाषा के कवि करते रहे हैं। यद्यपि 'प्राकृतपैंगल' से अनेक प्रकार के प्राकृत-भाषा के छन्दों के अस्तित्व के विषय में जानकारी होती है, किन्तु राजशेखर एवं विश्वेश्वर को उन सबका प्रयोग अभिप्रेत नहीं था। हाँ इतना अवश्य है, कि प्राकृत कवियों में लोकप्रिय आर्या छन्द का प्रयोग इन दोनों ही कवियों द्वारा हुआ है। सट्टक के लोक-विधा से सम्बन्धित होने के कारण इनसे ग्राम्य-छन्दों या गीतों के प्रयोग की अपेक्षा की जा सकती थी; परन्तु ऐसे अशास्त्रीय छन्दों या गीतों का प्रयोग विवेच्य-कृतियों में प्राप्त नहीं होता। दोनों ही नाट्यकारों ने उन प्रसिद्ध छन्दों का ही आश्रय लिया है, जो अधिक व्यवहृत होते रहे हैं। दोनों ने ही बड़े–बड़े छन्दों का खुलकर प्रयोग किया है। यद्यपि नाटकीय दृष्टि से बड़े छन्द अनुपयुक्त होते हैं, तथापि वर्णन की दृष्टि से उपयोगी हैं। बड़े छन्दों के माध्यम से कवियों ने अपने भावों,क्लिष्ट कल्पनाओं और वर्णनों को अधिक व्यापक रूप में चित्रित करने में सफलता पायी है। इन बड़े छन्दों के प्रयोग कवियों की प्रौढ़ता और विदग्धता के परिचायक हैं।

कर्पूरमञ्जरी तथा शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों की भाषा एवं शैली का तुलनात्मक परिशीलन

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी दोनों में ही सट्टक, प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं। दोनों में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री प्राकृत का आश्रय लिया गया है, परन्तु दोनों में प्रमुख अन्तर यह है, कि–जहाँ कर्पूरमञ्जरी सट्टक का गद्य भाग शौरसेनी प्राकृत में एवं पद्य भाग महाराष्ट्री प्राकृत में निबद्ध है; वहीं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में दोनों ही प्राकृतों का प्रयोग, गद्य एवं पद्य दोनों में समान रूप से मिलता है। साथ ही कहीं-कहीं पर एक ही वाक्य में, शौरसेनी एवं महाराष्ट्री दोनों ही प्राकृतों का खिचड़ी रूप में प्रयोग भी मिलता है। ध्यातव्य है कि राजशेखर के समय, प्राकृत-भाषा जनसामान्य के काफी नजदीक की भाषा थी। यद्यपि जन-साधारण में अपभ्रंश का प्रयोग प्रारम्भ हो चुका था, फिर भी लोक-जीवन में प्राकृत का संस्कार अभी ताजा था। अतः लोगों द्वारा इसे हृदयंगम करने में कोई कठिनाई नहीं थी। दूसरी तरफ विश्वेश्वर के समय प्राकृत, जन-भाषा से काफी दूर हो चुकी थी। अतः स्वयं विश्वेश्वर को भी काफी प्रयास से इसे सीखना पड़ा होगा। यही कारण है कि—जहाँ राजशेखर प्राकृत के दोनों ही रूपों में, गद्य एवं पद्य में अलग-अलग रचनायें करने में कुशलता का परिचय दिये हैं; वहीं विश्वेश्वर चाहकर भी ऐसा नहीं कर पाये हैं; एवं उनके द्वारा इसका खिचड़ी रूप ही प्रस्तुत हो पाया है। अनेक संस्कृत शब्दों को ज्यों का त्यों रख देने के लिए भी वे विवश हुए हैं। कुछ शब्दों को विश्वेश्वर को स्वयं गढ़ना भी पड़ा है। विश्वेश्वर की भाषा पर मागधी प्राकृत का भी प्रभाव है, जबकि राजशेखर इससे मुक्त हैं। वैसे राजशेखर एवं विश्वेश्वर दोनों ने ही देशज शब्दों को स्थान दिया है।

राजशेखर की भाषा मुहावरेदार एवं स्वाभाविक प्रवाह से पूर्ण है; जबकि विश्वेश्वर की भाषा कृत्रिमता से युक्त एवं संस्कृत से अधिक प्रभावित है। फिर भी अपने बुद्धि-व्यायाम के बल पर विश्वेश्वर ने ललित गद्य एवं मनोरम पद्य को प्राकृत भाषा में लिखकर, अपनी असाधारण क्षमता को प्रदर्शित

किया है।

शैलीगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से, कपूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी दोनों ही उत्कृष्ट हैं। यद्यपि राजशेखर रसवादी आचार्य हैं, फिर भी अपनी रचना को अलङ्कारों से अलङ्कृत करने में पीछे नहीं हटे हैं। उन्होंने अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, स्वाभावोक्ति, सहोक्ति आदि अलङ्कारों का खुलकर प्रयोग किया है। वहीं विश्वेश्वर ने भी अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलङ्कारों से अपनी रचना को सजाया है। जहाँ राजशेखर का उत्प्रेक्षा के प्रति विशेष लगाव प्रतीत होता है, वहीं विश्वेश्वर में रूपक में प्रति विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर दोनों ने ही, कथा के विकास एवं प्रस्तुति हेतु, प्रकृति-चित्रण का सहारा लिया है। प्रकृति-चित्रण वस्तुतः काव्य का विषय रहा है। नाट्य की प्रकृति के विपरीत होने के बावजूद राजशेखर ने प्रमुखता से प्रकृति-चित्रण किया है। नाट्यों में या उससे भी बढ़कर सट्टक में प्रकृति-चित्रण करने का प्रयोजन यह रहा होगा, कि—सामान्य-जन, जो सामान्यतः अशिक्षित एवं अनपढ़ होते थे जो; काव्यों में वर्णित प्रकृति-वर्णन का आनन्द उठा पाने में असमर्थ थे; वे भी वह आनन्द प्राप्त कर सकें, जो काव्य का सुशिक्षित पाठक प्राप्त करता है। राजशेखर ने कथा के प्रवाह में ही वसंत, ग्रीष्म, सन्ध्या, चाँदनी आदि के वर्णन के अनेक अवसर तलाश लिये हैं। परन्तु अत्यधिक प्रकृति-वर्णन कथा के प्रवाह में अवरोध उपस्थित करता है, दर्शकों को उबन-सी होने लगती है। वहीं विश्वेश्वर का प्रकृति- वर्णन सीमित, संतुलित एवं प्रसङ्गानुसार है; जो कथा के विकास के लिए अति आवश्यक सा प्रतीत होता है। कर्पूरमञ्जरी के प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी कुछ पद्यों को निकाल दिये जाने पर भी, मूलकथा की प्रकृति पर कोई असर पड़ता हुआ प्रतीत नहीं होता; जबकि शृङ्गारमञ्जरी के प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी पद्यों के विलोपन से वह अधूरी एवं अपङ्ग-सी हो सकती है। दोनों ही कृतियों के सन्दर्भ में यह विशेष रूप से कहा जा सकता है, कि—इनमें प्रकृति को सामान्य रूप से उद्दीपन रूप में ही वर्णित किया गया है। इनके द्वारा विभिन्न प्रसङ्गों

के अनुकूल परिवेश निर्माण का कार्य ही अधिकतर लिया गया है। इनमें प्रकृति के संवेदनशील पक्ष को उकेरने का कोई प्रयास दिखाई नहीं पड़ता। प्रकृति-वर्णन में सूक्ष्म निरीक्षण की दृष्टि से शृङ्गारमञ्जरी, कर्पूरमञ्जरी की अपेक्षा उत्कृष्ट कोटि की प्रतीत होती है।

दोनों ही कृतियों में विविध प्रकार के मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है। आर्या, वसन्ततिलका एवं शार्दूलविक्रीडित दोनों के ही प्रिय छन्द हैं। कर्पूरमञ्जरीकार ने स्रग्धरा, रथोद्धता, मालिनी आदि छन्दों को भी प्रमुखता से अपनाया है, वहीं शृङ्गारमञ्जरीकार में गीति एवं उपगीति छन्दों के प्रति विशेष लगाव है। दोनों ही कृतियों में सामान्यतः वर्णनात्मक प्रसङ्गों में बड़े–बड़े छन्दों का प्रयोग हुआ है; जबकि भावपूर्ण एवं वार्तालाप के प्रसङ्गों में छोटे–छोटे छन्दों का प्रयोग परिलक्षित होता है। प्राकृत-भाषा के काव्यों में आर्या छन्द का प्रयोग विशेष रूप से लोकप्रिय रहा है। क्योंकि आर्या छन्द में कम आकार होने के बावजूद गंभीरभाव भरलेने की विलक्षण क्षमता रही है। यही कारण है कि यह धीरे–धीरे नाट्यों में भी लोकप्रिय होता गया एवं गंभीर भावों के संवहन का माध्यम बना। कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी दोनों ही कृतियों में आर्या छन्द का प्रमुखता से प्रयोग हुआ है, तथा विशेषकर गंभीरभावों के द्योतन हेतु इसका आश्रय लिया गया है। इस प्रकार दोनों ही रचनाओं में छन्दों का वैविध्य सराहनीय है।

प्रस्तुत सट्टकों में लोकशैली की संभावना का जहाँ तक प्रश्न है, तो यद्यपि यह विधा लोकशैली की ही उपज है; परन्तु विवेच्य कृतियों में लोकशैली का रूप सुरक्षित नहीं रह पाया है। अपवादस्वरूप कुछ दृश्य विधान एवं परिवेश को छोड़ दिया जाय तो कुल मिलाकर इनमें लोकशैली का पूर्णतः अभाव है। शैली के प्रत्येक स्तर पर नाट्य लेखन एवं प्रस्तुति का वही तरीका अपनाया गया, जो परम्परागत नाटकों, प्रकरणों आदि में व्यवहृत था। वही प्रकृति-चित्रण-परम्परा, वे ही अलङ्कार एवं छन्द प्रस्तुत कृतियों में प्राप्त होते हैं; जिनका अब तक के लक्षण ग्रन्थकारों ने विधान किया था तथा लक्ष्य ग्रन्थकारों द्वारा व्यवहार में लाया गया था।

●●●

सप्तम-अध्याय

सांस्कृतिक-विवेचन

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

- नारी दशा
- विवाह् व्यवस्था
- रूढ़-प्रक्रिया के रूप में दोहद
- वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन
- वर्ण व्यवस्था
- धार्मिक दशा
- अन्तःपुर की दशा
- मनोरञ्जन
- सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

- नारी दशा
- विवाह् व्यवस्था
- वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन
- वर्णाश्रम व्यवस्था
- धार्मिक दशा
- अन्तःपुर की दशा
- सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी के सट्टकों में चित्रित समाज का तुलनात्मक परिशीलन

सप्तम-अध्याय

सांस्कृतिक-विवेचन

साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है क्योंकि अपने परिवेश से प्रभावित कवि अपने सृजन में जाने अनजाने उसका चित्रण किये बिना नहीं रह पाता। फलतः कवि अपने काल विशेष के विषय में प्रत्यक्षतः कुछ न कहता हुआ भी बहुत कुछ कह जाता है। जहाँ तक नाट्य साहित्य की बात है, वहाँ तो कवि का आग्रह मुख्यतः रसाभिव्यक्ति के प्रति ही होता है। किन्तु उस रसाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक विभावानुभावव्यभिचारी के चित्रण हेतु सामग्रियाँ, वह समाज में डुबकी लगाकर ही एकत्रित कर पाता है। परिणामतः उसका साहित्य समाज को दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित करने लगता है। विवेच्य-कृतियों में तत्कालीन समाज के प्रतिबिम्ब का अवलोकन प्रसङ्गोपात्त है। समाज के पूर्णावलोकन के बिना तत्कालीन सांस्कृतिक स्तर का आकलन नहीं किया जा सकता; क्योंकि समाज की उत्कृष्टतम् उपलब्धियाँ ही संस्कृति है।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

कर्पूरमञ्जरी सट्टक दशवीं शताब्दी की रचना है। इसमें तत्कालीन नारी दशा, विवाह संस्था, धार्मिक स्थिति, लोक-विश्वास, मनोरञ्जन, क्रीड़ा-विनोद, कला-कौशल इत्यादि की स्पष्ट झलक मिलती है, जिनका विवेचन इस प्रकार है—

नारी दशा—

समुदाय विशेष की सांस्कृतिक उन्नति अथवा अवनति का आकलन नारी के प्रति सामान्य-जन के दृष्टिकोण से किया जा सकता है। नारी-वर्ग के प्रति अनास्था समाज की हीनता का द्योतक है। भारतीय सभ्यता के अरुणोदय से ही समाज में नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कालिदास,

भास, भवभूति आदि प्रारम्भिक कवियों ने नारी की प्रतिष्ठा को यथावत रखा था; किन्तु कर्पूरमञ्जरी में नारी के चित्रण से उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति का सङ्केत नहीं मिलता। इस सन्दर्भ में यह बहाना भी उचित नहीं कि—सट्टक का वस्तु विन्यास ही कुछ इस प्रकार का है, कि नारी को भोग्या से इतर रूप में चित्रित कर पाना कठिन है। नाटिका या सट्टक की प्रकृति के ही कथानक वाले मालविकाग्निमित्रम् की ज्येष्ठा नायिका महारानी धारणी के महनीय चरित्र को यदि देखें तो यह मानना पड़ेगा कि—कालिदास और राजशेखर के समाज में पर्याप्त अन्तर है। राजशेखर का ध्यान नायिकाओं के चरित्राङ्कन की अपेक्षा उनके सौन्दर्य-वर्णन में अधिक रमा हुआ है, जो नारी को मात्र भोग की वस्तु समझने की मानसिकता का द्योतक है।

विधिवत परिणीता सुन्दर पत्नी के रहते हुए भी दूसरी अद्वितीय स्त्री-रत्न की खोज में लगे रहने की प्रवृति राजाओं में पायी जाती है।[१] राजकुल में ऐसी योगियों को सम्मान प्राप्त है; जो न मन्त्र जानता है न तन्त्र। ज्ञान-ध्यान से भी जिसका कोई नाता नहीं; मद्यपान एवं युवतियों से सहवास ही जिसके मोक्ष का साधन एवं कुलाचार है।[२] जो योगबल से प्रयोजन विशेष हेतु युवती का अपहरण करते हैं।[३] और आश्चर्य है कि ऐसे ही व्यक्ति महारानी के धर्मगुरु भी हैं।[४]

धार्मिक आचार व्यवहार एवं पूजा प्रथा में नारी की पूर्ण आस्था है; जैसा कि देवी द्वारा गौरी पूजा[५] तथा वटसावित्री उत्सव मनाने का उल्लेख हुआ है। मञ्च पर नारी द्वारा अभिनय करने की परम्परा का भी संकेत कर्पूरमञ्जरी में मिलता है; जब पारिपार्श्विक कहता है कि—महाराज की भूमिका आर्य सूत्रधार एवं देवी की भूमिका आर्य भार्या को करनी है।[६] चतुर्थ जवनिकान्तर

---

१. कर्पूरमञ्जरी, श्री रामकुमार आचार्य, पृष्ठ ३०-३१
२. कर्पूरमञ्जरी—१/२२
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३१
४. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४३
५. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ७० एवं १४३
६. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १०

में नृत्य के प्रसङ्ग में स्त्रियों द्वारा वाचिक एवं आहार्य अभिनय करने का सङ्केत प्राप्त होता है। जैसा कि वर्णन है—कुछ स्त्रियाँ....हुंकाररूप में सियारों का सा शब्द करती हुई तथा रौद्ररूप बनाकर राक्षसियों के चेहरे लगाकर श्मशान का अभिनय करती हैं।[३] कर्पूरमञ्जरी की प्रस्तावना से यह विदित होता है कि राजशेखर की धर्मपत्नी अवन्तिसुन्दरी के आदेश पर सर्वप्रथम कर्पूरमञ्जरी सट्टक का मञ्चन किया गया था।[४] स्पष्ट है कि—एक तरफ पुरुष वर्ग का दृष्टिकोण नारी के प्रति संकुचित था, तो दूसरी तरफ नारी विभिन्न समारोहों एवं अवसरों पर अपनी सहभागिता सुनिश्चित करने के प्रति सजग थी।

विवाह व्यवस्था—

कर्पूरमञ्जरी सट्टक से तत्कालीन विवाह पद्धति के विषय में पर्याप्त जानकारी होती है। इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि प्राप्त यौवना होने पर ही कन्या के विवाह का प्रचलन था। नायिका कर्पूरमञ्जरी युवावस्था को प्राप्त है, अन्यथा नायिका की कामनाओं का वर्णन संभव ही नहीं हो सकता। नायक और नायिका दोनों समान रूप से परस्पर तारुण्य सुलभ आकर्षण से अभिभूत हैं; ज्येष्ठा नायिका से डरे हुए छुप—छुपकर एक—दूसरे से मिलते हैं; जिसकी परिणति विवाह की व्यवस्था के रूप में होती है।

विवाह के सम्बन्ध में दूसरा तथ्य जो ध्यान आकर्षित करता है, वह है पतिगृह में कन्या का विवाह सम्पन्न होना। अर्थात् समाज में ऐसी परम्परा थी जब कन्या विवाह से पूर्व ही पतिगृह पहुँच जाती थी, जहाँ कन्या के सगे सम्बन्धियों की अनुपस्थिति में ही उसका विवाह सम्पादित होता था। भारतीय परम्परा में विवाह की आठ विधियाँ मानी गयी हैं; किन्तु इस सट्टक में सम्पन्न विवाह इन आठों से भिन्नता लिये हुए है। नायक-नायिका का विवाह विधि-विधान के साथ सम्पन्न

---

१. कर्पूरमञ्जरी—४/१५
२. कर्पूरमञ्जरी—१/११

हुआ है, भाँवरें दी गयी हैं, अग्नि में खीले छोड़ी गयी हैं।[1] ऐसा ब्रह्म, प्राजापत्य, आर्ष एवं दैव विवाहों में ही होता है। किन्तु इनके पूरे लक्षण कर्पूरमञ्जरी एवं चन्द्रपाल के विवाह में नहीं मिलते। इनका विवाह आसुर या राक्षस एवं पैशाच कोटि का भी विवाह नहीं है। जहाँ तक गान्धर्व विवाह का प्रश्न है, तो इसके कुछ लक्षण इस विवाह पद्धति में हैं, जैसे कि नायक-नायिका का विवाह-पूर्व प्रेम, कन्यादान कर्ता का अभाव आदि। किन्तु नायक-नायिका के विवाह में इस पद्धति से भिन्न लक्षण भी विद्यमान हैं, यथा—देवी द्वारा नायक-नायिका का ब्राह्मणों की उपस्थिति में विधिवत विवाह सम्पन्न करवाना आदि। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि—प्रसिद्ध आठ विवाह पद्धतियों से भिन्न प्रकार की विवाह परम्परायें भी समाज में विद्यमान थीं एवं उनको मान्यता प्राप्त थी। भैरवानन्द के यह कथन कि—"विधवा, चंडा (चाण्डाल स्त्री) एवं तांत्रिक दीक्षा वाली स्त्रियों को मैं धर्मानुकूल अपनी पत्नी समझता हूँ"[2] से यह प्रतीत होता है, कि—समाज में विधवा विवाह एवं अन्तर्जातीय विवाह का भे प्रचलन था।

रूढ़-प्रक्रिया के रूप में दोहद—

प्राचीन भारतीय साहित्य में जिन कतिपय रूढ़-प्रक्रियाओं अथवा विषयों को कवि प्रसिद्धि की कोटि में गिनाया गया है, उसमें दोहद क्रिया का प्रमुख स्थान है।[3] किसी गर्भवती स्त्री द्वारा किसी विशेष वस्तु को पाने की अभिलाषा को 'दोहद' नाम दिया गया है, जैसाकि कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा की स्पृहा विशेष को 'दोहद' कहा है।[4] भवभूति ने भी गर्भवती सीता की पवित्रसलिला भागीरथी में पुनः अवगाहन करने की इच्छा को 'दोहद' कहा है।[5] इसके अतिरिक्त

१. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १५३
२. कर्पूरमञ्जरी—१/२३
३. साहित्यदर्पण-विश्वनाथ, पृष्ठ ५१७
४. रघुवंश—३/६—७
५. "आर्यपुत्र ! एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युत्पन्न दोहदाया मम विज्ञेपनीयमस्ती।"
—उत्तररामचरितम्—प्रथम अङ्क

कली आने के समय पौधों की इच्छा 'दोहद' कहलाती है।[१] सामान्यतः इस 'दोहद' का अर्थ वृक्ष को बलात अर्थात् असमय में पुष्पित कराने से लिया जाता है। दोहद में अशोक चाहता है कि— तरुणियाँ उसे ठोकर मारें, बकुल चाहता है कि उसके ऊपर मदिरा से कुल्ले किये जायँ। भारतीय रूपकों में वृक्ष को बलात पुष्पित कराने वाले दोहद को विशेष महत्व दिया गया है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि—दोहद पूर्ति का कार्य किसी सामान्य युवती से नहीं कराया जाता। कभी-कभी यह कार्य किसी अज्ञातकुल शीलवाली युवती की वंश परीक्षा की दृष्टि से भी कराया जाता है।[२] अर्थात् दोहद उच्चकुल की औरतें ही करती हैं।

कर्पूरमञ्जरी सट्टक में कुरबक, तिलक एवं अशोक वृक्ष के दोहद का प्रसङ्ग आया है। ज्येष्ठा नायिका द्वारा लगाये गये इन वृक्षों के दोहद का कार्य कर्पूरमञ्जरी द्वारा करवाया गया है। कर्पूरमञ्जरी कुरबक वृक्ष का आलिंगन द्वारा; तिलक वृक्ष को तिरक्षी निगाहें देखकर और अशोक वृक्ष का पादप्रहार द्वारा दोहद करती है।[३] दोहद की क्रिया को तत्कालीन समाज में विद्यमान प्रकृति-प्रेम के भाव के रूप में देखा जा सकता है।

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन—

वस्त्रों पर कसीदाकारी करने का सन्दर्भ प्राप्त होता है।[४] सामान्य रूप से साडिआ (साड़ी)[५], कूर्पासक (चोली)[६], पडिसीसअं (पगड़ी)[७], उत्तरीय[८] आदि धारण करने वाले वस्त्र थे, जिनका

---

१. संस्कृत-हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे, पृष्ठ ४७८

२. मालविकाग्निमित्रम्

३. कर्पूरमञ्जरी—२/४४-४७

४. .... पदिबट्टे बिअ टसरबिरअणा,.....(प्रतिपट्ट इव त्रसरविरचना)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

५. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

६. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११ एवं २२

७. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २७

८. एदं मे उत्तरीअं आसणं (एतन्मे उत्तरीयमासनम्)—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ३९

इस कृति में यत्र-तत्र नामोल्लेख हुआ है। तान्त्रिकों (सिद्ध-पुरुषों) द्वारा सोने के लिए चर्मखण्ड का भी प्रयोग किया जाता था।[1]

प्रमुख आभरणों में— एक लड़ी की मोती की माला, कर्णोत्पल, मणिकंकण, घुँघुरूदार सुवर्णकटिसूत्र, घुँघुरू लगा नूपुर, मालती पुष्प की माला, सिन्धुवार के फूलों का हार, केश में मालती के फूलों का गजरा आदि प्रचलित थे। आभूषण निर्माण में काँच एवं माणिक्य का प्रयोग होता था।[2] पन्ने की पायजनी का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[3]

सोना, लोहा, पन्ना, मरकतमणि, चन्द्रकान्तमणि, पद्मरागमणि, वैदूर्यमणि, मोती आदि का उल्लेख मिलता है।

होठों का विलेपन, केश में सुगंधित तेल, मुख पर कुमकुमराग, चन्दन का लेप, कुमकुम-रस का लेप, अंगराग, काजल आदि[4] प्रसाधन सामग्रियों का प्रचलन था।

वर्णव्यवस्था–

समाज में जन्म पर आधारित वर्णव्यवस्था पूर्णतः प्रतिष्ठित प्रतीत होती है। विदूषक ब्राह्मण है, उसे अनपढ़ होने पर भी पूज्य बताया गया है, जो ब्राह्मण वर्ण की समाज में विशेष महत्ता का द्योतक है। दासियाँ सुयोग्य, सुशिक्षित होने के बावजूद भी सेवाकार्य में नियुक्त होती थीं तथा अनपढ़ ब्राह्मण से भी अवरकोटि की मानी जाती थीं।[5] ब्राह्मण वर्ण अपनी सामाजिक श्रेष्ठता के कारण अहंकार में था तथा दासी को अपने से बात करने के योग्य नहीं समझता था।[6] भरत

१. ......चम्मखंडं च सेज्जा.....(चर्मखण्डश्च शय्या)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २९

२. कच्चं माणिक्कं च समं आहरणे पउंजीअदि (कांचं माणिक्यं च सममाभरणे प्रयुज्यते)।
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २४

३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ५९

४. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २२

५. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २३

६. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २६

वाक्य में यह अपेक्षा की गयी है, कि—ब्राह्मणों के आशीर्वाद सदा सत्य निकलें।[1] इससे निष्कर्ष निकलता है, कि—ब्राह्मणों के आशीर्वाद झूठे भी निकलते थे। अर्थात् ब्राह्मणों में दिव्यता, पवित्रता नहीं रह गयी थी, उनका पतन हो चुका था।

अन्तःपुर में पायदान उठाने वाली, स्नान कराने वाली, स्वर्णदण्ड लेने वाली, चाँवर डुलाने वाली, सैरन्ध्रियाँ आदि वर्ग की दासियाँ थी। शिकारी, वैद्य, वन्दीजन, वेधकार आदि समाज के विभिन्न कर्मकार वर्ग थे।

धार्मिक दशा—

जनता में धर्म के प्रति विश्वास हटने की शुरुआत हो चुकी थी, यही कारण है कि—भरतवाक्य में जनता का धर्म में दृढ़ विश्वास बने रहने की अपेक्षा की गयी है।[2] फिर भी शिव, सरस्वती, कामदेव, गौरी, चामुण्डा आदि देवी-देवताओं की स्तुति एवं पूजा हुआ करती थी। सृष्टिकर्ता के रूप में ब्रह्मा की मान्यता थी।[3] देवी-देवताओं की स्थापना कर उसमें प्राणप्रतिष्ठा हेतु कर्मकाण्ड करने का विधान था। किसी को गुरु बनाकर उससे इष्टमन्त्र लेने का उल्लेख[4] समाज में गुरु की महत्ता को द्योतित करता है। हिंडोला चतुर्थी एवं वटसावित्री महोत्सवों जैसे सामाजिक-धार्मिक समारोहों का आयोजन होता था।

तान्त्रिक सम्प्रदाय अपने उत्कर्ष पर था। भैरवानन्द के कथनों एवं क्रियाओं से स्पष्ट होता है, कि—तान्त्रिकों द्वारा कुछ अभ्यास किये जाते थे, जिनसे उनकी आध्यात्मिक उन्नति होती थी,

१. ....होन्दु बह्मणजणा सच्चासिह्रो सव्वदा (.....भवन्तु ब्राह्मणजनाः सत्याशिषः सर्वदा)।
—कर्पूरमञ्जरी—४/२३
२. ......धम्मे मई भोदु अ (धर्मे मतिर्भवतु च)।—कर्पूरमञ्जरी—४/२३
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १०८
४. ....देवीए पोम्मराअमणिमई गोरी कदुअ भइरवाणन्देण प्पडिट्ठाविदा, सअं अ दिक्खा गहिदा (.....देव्या पद्मरागमणिमयी गौरी कृत्वा भैरवानन्देन प्रतिष्ठापिता, स्वयञ्च दीक्षा गृहीता)।
—कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४३

उन्हें कुछ गुह्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती थीं, जिनसे वे आश्चर्यजनक कार्य कर सकते थे। तन्त्र सम्प्रदाय की शिक्षाओं में संन्यास से कोई भी सामञ्जस्य नहीं था। इसलिए तन्त्रमत का अनुयायी यह नहीं मान सकता था कि—अपनी स्त्री.को साथ रखने और थोड़ी सी मदिरा और मांस प्रयोग में लेने से मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। तन्त्रमत के अनुयायी वैदिक कर्मकाण्ड और परम्पराओं को प्रोत्साहन नहीं देते थे; जैसाकि भैरवानन्द ने कहा है कि—"ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता कहते हैं कि ध्यान, वेदपाठ और यज्ञ करने से मोक्ष मिलता है। केवल भगवान शङ्कर ने सुरा और स्त्रियों के संसर्ग से मोक्ष बताया है।"[१] समाज में ऐसे तान्त्रिकों की प्रतिष्ठा थी। इनका प्रभाव-क्षेत्र राजपरिवारों तक था। राजपरिवार के सदस्यों द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए तान्त्रिकों की सेवायें ली जाती थीं।

अन्तःपुर की दशा—

राजाओं का अन्तःपुर बृहदाकार होता था, जिसमें प्रमदवन जैसे विहार करने वाले स्थलों की व्यवस्था होती थी। अन्तःपुर में ढेर सारे नौकर-चाकरों के साथ राजा एवं उनका परिवार रहता था। यहाँ कुब्ज, वामन, किरात, वर्षवर, सौविदल्ल आदि[२] जैसे मसखरा करने वाले या मसखरे के पात्र लोगों की भरमार रहती थी, जो रानी के साथ चला करते थे। यह राजपरिवारों की विलासिता एवं निठल्लेपन को सूचित करता है। वन्दीगण सङ्केतकाल को सूचित करने के लिए अवसरानुसार प्रकृतिवर्णन अथवा राजा का गुणगान किया करते थे।[३]

मनोरञ्जन—

मनोरञ्जन हेतु कई प्रकार के साधनों का सहारा लिया जाता था। वसन्त में लोग झूला

---

१. कर्पूरमञ्जरी—१/२४
२. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १२५
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४/३५-३६ एवं २/५०

झूलने का आनन्द लिया करते थे। गर्मी में साम को जलक्रीड़ा करते थे।[१] सामान्यतः सायंकाल क्रीड़ावावलियों एवं चित्रशालाओं में लोग आनन्द लेने जाते थे।[२] जादू-विद्या (इन्द्रजाल) का उल्लेख हुआ है,[३] जो मनोरञ्जन का प्रमुख साधन रहा होगा। वन्दीगण प्रकृति-वर्णनों से युक्त अपने काव्यपाठ द्वारा राजा-रानी को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। वेणु, वीणा, करताल, मृदंग,[४] वंशी[५] मर्दलवाद्य[६] आदि का उल्लेख तत्कालीन समाज की संगीतप्रियता को उद्घोषित करता है। नृत्यकला भी लोकप्रिय थी।

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार–

गुरु दक्षिणा का समाज में महत्त्व था। इसे किसी भी कीमत पर अदा करना पुनीत कर्तव्य माना जाता था। यहाँ तक कि इसे अदा करने में स्त्रियाँ सौत तक बना लेने प्रस्तुत थीं।[७] समाज में झगड़ा होने पर गालियाँ देने का प्रचलन था। दासीपुत्री, झगड़ालू, धन ठगने वाली, गलियों में पुरुषों के साथ घूमने वाली, लम्बे स्तनों वाली, सूप की तरह कानों वाली आदि स्त्रियों को दी जाने वाली प्रमुख गालियाँ थीं।[८] कान-उखाड़ने, मुँह-तोड़ने के लिए कहने जैसे धमकीपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया जाता था। ज्योतिष पर लोगों का विश्वास था। मदिरा निंदित वस्तु रही होगी ऐसा ध्वनित होता है, किन्तु इसका प्रयोग किया जाता था। पञ्चगव्य का प्रयोग पवित्र माना जाता

---

१. लीलामज्जणमापदोससमअं (लीलामज्जनमाप्रदोषसमयं)–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १२९
२. उग्घाडीज्जंति लीलामणिमअवलहीचित्तभित्तीणिवसा (उद्घाट्यन्ते लीलामणिमयवलभीचित्रभित्तिनिवेशाः)
   –कर्पूरमञ्जरी–१/३६
३. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ८६ एवं ११३
४. कर्पूरमञ्जरी, प्रस्तावना
५. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ११३
६. कर्पूरमञ्जरी–४/१६
७. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ १४४
८. कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ २५

था। मांस, खण्ड (शक्कर)[११], तक्र (मट्ठा) दूध, दही, भात आदि प्रमुख खाद्य एवं पेय पदार्थ थे। पशुओं में हाथी, घोड़ा, बैल का उल्लेख हुआ है। बैल को नथा जाता था। दो पहियों के रथ का प्रयोग होता था।[१२] लोगों में विमान की कल्पना थी,[१३] जैसा कि ध्यानरूपी विमान एवं देवांगनाओं के विमान शब्द का प्रयोग हुआ है। धनुष, बाण, तरकश, भाला, चर्मनिर्मित- कशा, तलवार, ढाल, मल्लयुद्ध आदि का उल्लेख हुआ है; जो निश्चय ही उस समय सामान्य प्रयोग की चीजें थीं। गर्मी की रात में लोग घर के आँगन में सोते थे।

शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में सांस्कृतिक प्रतिबिम्ब

नारी दशा–

१८वीं शदी के प्रारम्भिक काल के लगभग रचित शृङ्गारमञ्जरी सट्टक से, नारी दशा के विषय में ऐसा प्रतीत होता है, कि–पूर्व मध्यकाल से चली आ रही नारी के प्रति शोच में कोई विशेष बदलाव नहीं आया था । वह पूर्ववत भोग की वस्तु मानी जाती रही। स्त्रियाँ वस्तु की भाँति उपहार में दी जाती थीं; जैसाकि ज्येष्ठा-नायिका शृङ्गारमञ्जरी को राजा को सुपुर्द करते समय कहती है–"आर्यपुत्र! इस शुभ अवसर पर आज मैं शृङ्गारमञ्जरी को उपहार के रूप में आपको दे रही हूँ।"[१] अपनी कुलीनवंशजा पत्नी के होते हुए भी अन्य स्त्री के प्रति आकर्षित होना तथा उसे किसी भी प्रकार से प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयास करने की प्रवृत्ति कुलीन वर्ग में पायी जाती थी। कवियों द्वारा सतत् नारी सौन्दर्य के वर्णन में सन्नद्ध रहना, नारी को भोग की वस्तु मानने की मानसिकता का ही द्योतक है।

---

१. कर्पूरमञ्जरी–२/२६

२ कर्पूरमञ्जरी–२/१८

३. पच्छा झाणविमाणेण णइस्सध (पश्चात् ध्यानविमानेन नेष्यथ)।–कर्पूरमञ्जरी, पृष्ठ ४१

४. देवी–अज्जउत्त, इम्मस्सिं अहम्मि इमं सिंगारमंजरिं देवस्स उवहारं करेमि।

(आर्यपुत्र! अस्मिन्नहनि इमां शृङ्गारमञ्जरीं देवस्योपहारं करोमि।)–शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०४

नारी के कष्ट एवं उनके जजबात का ध्यान नहीं रखा जाता था। प्रस्तुत कृति में स्पष्टतः नायक द्वारा सौत के कष्ट को सबसे बड़ा कष्ट बताया गया है,[१] फिर भी नायक अपनी पत्नी के जजबातों को नजरन्दाज करते हुए दूसरे विवाह के लिए प्रयासरत है। महिलाओं द्वारा घूँघट किया जाता था; जैसाकि नायक से मिलने के लिए नायिका घूँघट करके आती है, जिसे नायक द्वारा हटाया जाता है।[२]

स्त्रियों की हीनदशा के बावजूद उन्हें सुशिक्षित होने के अवसर दिये जाते थे। वसन्ततिलका, शृङ्गारमञ्जरी आदि रसशास्त्र की विशेषज्ञ हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि नारी शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी। समाज में नारी का स्थान पहले की अपेक्षा कुछ बढ़ता हुआ सा प्रतीत होता है। नायक, नायिकाओं के प्रति अत्यन्त विनम्रता एवं शिष्टता के साथ प्रस्तुत होता है। नायक ज्येष्ठा नायिका के उपस्थित होने पर आदरपूर्वक उसका हाथों में हाथ लेकर उसके साथ वार्ता करता है।[३]

विवाह व्यवस्था—

समाज में बहुपत्नी-प्रथा को मान्यता थी। राजा लोग एकाधिक विवाह करते थे। अपनी पत्नी के बहनोई (साढ़ू) की पुत्री के साथ विवाह होना भी अनुचित नहीं माना जाता था, जैसाकि प्रस्तुत कृति में शृङ्गारमञ्जरी नायक की पहली पत्नी के बहनोई की पुत्री है,[४] जिससे उसका विवाह

१. राजा—....विज्जंति एत्थ लोए महिलाणं जेत्तिआइँ दुक्खाइं।
तासइँ सवत्तिसमुब्भअदुक्खादो णवर हिज्जंति।।
(विद्यन्तेऽत्र लोके महिलानां यावन्ति दुःखानि।
तानि सपत्नीसमुद्भवदुःखात् केवलं हीयन्ते।।)—शृङ्गारमञ्जरी—२/९

२. शृङ्गारमञ्जरी, डॉ० जगन्नाथ जोशी, पृष्ठ ८६

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०३

४. देवी—.....मम आवुत्तस्स अवंतिपइणो दुहिदा....।
(...ममावुत्तस्यावन्तिपतेर्दुहिता...।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

होता है। कन्या को शादी हेतु उपहार में दिया जाता था। शादी हेतु कन्या की मँगनी भी की जाती थी।[१] गान्धर्व विवाह की परम्परा विद्यमान थी। इसका रूप कुछ बदला हुआ-सा प्रतीत होता है, जिसमें कुछ अनुष्ठान भी किये जाते थे। जिसकी सूचना दी गयी है।[२]

वस्त्राभरण एवं शृङ्गारप्रसाधन—

मोतियों की माला, करधनी, रत्नजटित कंकण आदि अलङ्कारों को धारण किया जाता था। माणिक्य, इन्द्रनीलमणि, मरकतमणि, स्वर्ण आदि रत्नों एवं धातुओं का उल्लेख प्राप्त होता है। रानियाँ गौरव के अनुरूप अलङ्कार एवं वस्त्र धारण करती थीं।[३] ताम्बूलकरङ्कवाहिनी का उल्लेख हुआ है,[४] जिससे ताम्बूल खाने के प्रचलन का पता चलता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था—

यद्यपि वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति लोगों की आस्था थी, जैसा कि भरतवाक्य में सभी वर्णों एवं आश्रमों को अपने-अपने कर्मों में लगे रहने की अपेक्षा की गयी है;[५] फिर भी यह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी प्रतीत होती है। विशेष विद्याओं का ज्ञान ब्राह्मण का कुलधर्म माना जाता था।[६] ब्राह्मण के स्वस्ति-वाचन से धार्मिक कृत्य पूर्ण होते थे। ब्राह्मण के मान का भंग वध के समान समझा जाता था। ब्राह्मण दान ग्रहण करता था, कार्य की पूर्णता हेतु ब्राह्मण को संतुष्ट

---

१. अमात्य—तदो देअस्स कए तं कण्णाअं मए भअवं पत्थिदो।
(ततो देवस्य कृते एतां कन्यां भगवान् प्रार्थितः।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०८

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०४

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ–१५

५. .....धम्मे संतु णिए णिए अविरअं सव्वे वि वण्णस्सा।
(धर्मे सन्तु निजे निजेऽविरतं सर्वेऽपि वर्णाश्रमाः।)—शृङ्गारमञ्जरी–४/२५

६. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४७

करना आवश्यक समझा जाता था।[1] साथ ही ब्राह्मण सेवा कार्य में भी नियुक्त होते थे, जैसा द्वितीय जवनिकान्तर में क्रोधित होकर विदूषक राजा से कहता है—"मुझे ऐसे राजा के सेवक होने का फल मिल गया।"[2] बहुत से ब्राह्मण अल्पज्ञ भी होते थे, ऐसे ब्राह्मणों को पंडित मानकर चरण नहीं छूये जाते थे।[3] अर्थात् पंडित ब्राह्मण के ही चरण छूवे जाते थे। ऋषि जंगलों में आश्रम बनाकर रहा करते थे, जैसा कि मातंग ऋषि के आश्रम का उल्लेख हुआ है।[4]

धार्मिक दशा—

यज्ञीय कर्मकाण्ड में लोगों का विश्वास था। अतः भरतवाक्य में अधिक तेज अग्नि के यज्ञीय धुएँ से, दिशाओं के विस्तार व्याप्त रहने की कामना की गयी है।[5] भगवती गौरी एवं शिव की विशेष प्रतिष्ठा थी। कामदेव का पूजन होता था। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, विष्णु आदि का नामोल्लेख उनके प्रति समाज में प्रचलित भक्ति भावना को द्योतित करता है। गणेशजी की लड्डू चढ़ाकर पूजा की जाती थी।[6] मधुमास के शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को मदनपूजा की जाती थी।[7] शकुन-विचार किया जाता था।[8] ज्योतिष पर विश्वास था, तभी कामदेव की पूजा के प्रसङ्ग में देवी कहती है कि—"पूजा का मुहूर्त निकला जा रहा है।"[9] जादू के चमत्कार में भी लोगों का विश्वास

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०५
२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५
३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५
४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०६
५. आहोआ हरिआण होंतु बहलत्ते अग्गिधूमाउला......।
(आभोगा हरितां भवन्तु बहलतेजोऽग्निधूमाकुलाः...।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/२५
६. गुडजोअमहुरिएहिं पिहुलेहिं अज्ज पक्केहिं।
देवीअ मोदएहिं सुहिदो म्हि कओ गणाहिणाहो व्व।।
(गुडयोगमधुरितैः पृथुलैरद्य पक्वैः।
देव्या मोदकैः सुखितोऽस्मि कृतः गणाधिनाथ इव।।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/९
७. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ३७
८. शृङ्गारमञ्जरी—३/४४
९. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४६

था। व्यक्ति को छूकर कसम खाया जाता था।[१] भाग्य पर अटूट विश्वास परिलक्षित होता है। शाप, वरदान, आकाशवाणी, भविष्यवाणी, राक्षस-योनि[२] इत्यादि के प्रति लोगों का विश्वास था; तभी ऐसी घटनाओं का आश्रय लेकर कथा को आगे बढ़ाया गया है।

अन्तःपुर की दशा–

राजा का अन्तःपुर काफी विशाल हुआ करता था, जिसमें उपवन आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। यह इतना विस्तृत एवं गूढ़ स्थानों वाला होता था कि वहीं रहने वाले लोग भी एक-दूसरे को नहीं देख पाते थे। अन्तःपुर में ज्येष्ठा रानी की अपनी प्रशासनिक व्यवस्था होती थी। वह लोगों को बन्दी तक बनाकर रख सकती थी; जैसाकि देवी द्वारा विदूषक के बन्दी बनाये जाने के बाद मुक्त किये जाने का उल्लेख किया गया है।[३] रानियाँ सामान्यतः सवारी से चला करती थीं; जैसाकि रानी द्वारा मंदिर जाते समय पैदल जाने की बात को विदूषक द्वारा विशेष रूप में कहा गया है।[४] अन्तःपुर में सबका प्रवेश संभव नहीं था।[५] यहाँ विदूषक, बौने आदि जैसे हास्यकारी लोगों का जमावड़ा रहता था, जैसा कि विदूषक के सम्बन्ध में वसन्ततिलका ने कहा है कि–"तुम अन्तःपुर के लोगों द्वारा गेंद की तरह फेंके जाते रहे हो।"[६] यह अन्तःपुर के लोगों के निठल्लेपन का परिचायक भी है, कि वे अपने मनोरञ्जन हेतु बौने, कुबड़े जैसे लोगों को इकट्ठा कर अपने आप में ही मस्त रहा करते थे। अन्तःपुर में विविध प्रकार के उत्सव मनाये जाते थे, जैसे मदनपूजा आदि। सुबह मङ्गलवाद्य बजते थे, जिसे सुनकर राजा जगा करता था।

---

१. .....एदं पि मण्णसि जइ च्छलवाअमेत्तं
 ता पाणिणा तुह अहं हिअअं छिवामि।
 (....एतदपि मन्यसे यदि च्छलवाङ्मात्रं
 तत् पाणिना तवाहं हृदयं स्पृशामि।)-शृङ्गारमञ्जरी–३/५८

२. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

३. शृङ्गारमञ्जरी–४/१२

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९८

५. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ५०

६. वसन्ततिलका–अदो ज्जेव्व कंदुओ व्व सपरिहासं सअलंतेउरवासिजणेण जहिच्छं पाडिज्जंतो
 उट्ठाविज्जंतो अ चिट्ठसि।-शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार—

लोग सभी कष्टों से छुटकारा पाने का साधन मौत को मानते थे, अतएव कष्टमुक्ति के लिए फाँसी लगाकर आत्महत्या करने में भी नहीं हिचकते थे।[१] गुड़ का लड्डू प्रिय खाद्य पदार्थ था। समाज में विद्वता सिद्ध करने के लिए शास्त्रार्थ होते थे। क्षमा माँगते समय आलिंगनबद्ध होने का व्यवहार था।[२] अपने बुरे कार्यों के लिए छोटे से भी क्षमा माँगी जाती थी। पुरुष भी चित्रकारी में प्रवीण होते थे; जैसाकि नायक द्वारा नायिका के चित्र बनाने का प्रसङ्ग प्राप्त होता है। धनुष, बाण, तलवार, त्रिशूल[३] आदि सामान्य रूप से प्रयुक्त होने वाले हथियार थे। राजाओं द्वारा दिग्विजय किया जाता था। सेविकायें भी सुखवैभव से रहती थीं। पक्षियों को जाल द्वारा फँसाया जाता था। महासागर एवं जलपोत से लोग परिचित थे।[४] इन्द्र के राज्य की परिकल्पना सर्वाधिक समृद्धि एवं सुखकारक के रूप में थी।[५] देवगुरु बृहस्पति की सर्वोच्च ज्ञानी के रूप में मान्यता थी।[६] भाग्य पर पूर्ण विश्वास परिलक्षित होता है। आकाश मार्ग से यात्रा संभव है, इसके प्रति विश्वास था; जैसाकि अमात्य ने राक्षस द्वारा शृङ्गारमञ्जरी को आकाशमार्ग से ले जाने की बात कही है।[७] दूसरे के गुणों में अनुराग रखने वाले सहृदयों के चिरकाल तक जीवित रहने की कामना की जाती थी।[८]

---

१. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ६७

२. देवी—.......परिअणोइअं वत्तिआ सि। ता खमीअदु अदिक्कमो। (....परिजनोचितं वर्तितासि। तत् क्षम्यतामतिक्रमः।) (इत्यालिङ्गति)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०८

३. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ९९

४. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०१

५. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ७७

६. .....जेण विहप्पइसरिच्छेहिं पि पंडिअवरेहिं....।
(येन बृहस्पतिसदृशैरपि पण्डितवरैः....।)—शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ ४५

७. शृङ्गारमञ्जरी, पृष्ठ १०७

८. ......अण्णाणं गुणराइणो सहिअआ जीअंतु लोए चिरं।
(....अन्येषां गुणरागिणः सहृदया जीवन्तु लोके चिरम् ।)—शृङ्गारमञ्जरी—४/२५

कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों में चित्रित समाज का तुलनात्मक परिशीलन

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी के पर्यालोचन से तत्कालीन समाज का जो स्वरूप परिलक्षित होता है, उस पर यथासंभव दृष्टिपात किया जा चुका है। इन दोनों कृतियों के रचनाकाल में लगभग सात सौ वर्षों का अन्तर है। अतः दोनों कालखण्डों के समाज में निश्चय ही पर्याप्त विभिन्नतायें होंगी, फिर भी अनेक बिन्दुओं पर कुछ समानतायें संभव है; जिनका विवेच्यकृतियों की सूचनाओं के आधार पर अवलोकन करना प्रसङ्गानुकूल है।

सर्वप्रथम नारीदशा की दृष्टि से दोनों समाजों के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि—दोनों ही कालखण्डों में नारी की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। समाज में विशेषकर राजपरिवारों में बहुविवाह की प्रथा जोरों पर थी। अपनी विधिवत परिणीता पत्नी के होते हुए भी राजा दूसरी स्त्रीरत्न की कामना करते थे। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि दोनों ही कालखण्डों में पुरुषों के इस कार्य में स्त्रियाँ उनकी सहयोग करती थीं। स्त्रियों के सुशिक्षित होने के प्रमाण दोनों ही कालखण्डों में दिखाई पड़ते हैं। अतः कहा जा सकता है कि स्त्री शिक्षा की व्यवस्था भी की जाती थी। कुल मिलाकर नारीदशा दोनों समाजों में एक सी प्रतीत होती है।

विवाह व्यवस्था का जहाँ तक प्रश्न है—दोनों की कालखण्डों में कन्या का विवाह पतिगृह में सम्पन्न होने का प्रचलन दिखाई पड़ता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि विवाह

युवावस्था को प्राप्त होने पर ही सम्पन्न होते थे। गान्धर्व विवाह की ऐसी प्रथा प्रचलित थी, जिसमें कुछ अनुष्ठान भी किये जाते थे। ऐसे विवाहों में कन्या के संरक्षक की अनुमति या उपस्थिति की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। ऐसे विवाहों के लिए शुभ मुहूर्त आदि पर विचार भी नहीं किया जाता था। दोनों ही कालखण्डों में द्वितीय विवाह हेतु प्रथम पत्नी की अनुमति आवश्यक थी। उसकी सहमति के बिना पुरुष द्वारा दूसरा विवाह कर पाना सम्भव नहीं था।

वर्णव्यवस्था दोनों ही कालों में प्रतिष्ठित दिखाई पड़ती है। समाज में ब्राह्मण वर्ण का विशेष सम्मान था। अनपढ़ होने पर भी ब्राह्मण आदरणीय माना जाता था। साथ ही समाज में विभिन्न प्रकार के कर्मकार वर्गों का भी अस्तित्व था।

राजाओं का अन्तःपुर बृहदाकार होता था, जिसमें उपवन आदि की समुचित व्यवस्था होती थी। दोनों ही कालों में अन्तःपुर में राजा की ज्येष्ठा पत्नी का प्रशासनिक वर्चस्व था। अन्तःपुर में बौने, कुबड़े, विदूषक आदि जैसे मसखरा करने वाले लोगों को मनोरञ्जन हेतु रखा जाता था। दोनों कालखण्डों में कंकण, पायजेब, हार, करधनी आदि जैसे विविध प्रकार के आभूषणों को धारण किया जाता था। सोना, मोती, रत्नों आदि का उल्लेख उनकी लोकप्रियता को सूचित करता है। रानियाँ गौरव के अनुरूप अलङ्कार, वस्त्र आदि धारण करती थीं।

दोनों समाजों में बहुदेववाद की प्रतिष्ठा थी। कामदेव लोकप्रिय देव प्रतीत होते हैं। हिंड़ोला चतुर्थी, वटसावित्री जैसे धार्मिक, सामाजिक महोत्सव मनाये जाने की

परम्परा दिखाई पड़ती है। दोनों ही कृतियों में राजाओं के अकर्मण्य विलासरत जीवन की झाँकी है।

राजशेखर एवं विश्वेश्वर दोनों की कृतियों में समाज का बहुविध स्वरूप दिखाई पड़ता है। फिर भी राजशेखर की रचना विश्वेश्वर की कृति की अपेक्षा समाज को अधिक प्रतिबिम्बित करती है; जैसाकि १०वीं शदी के समाज में भैरवानन्द जैसे कौलमतावलम्बियों की वरिष्ठता एवं सामान्यजनों से राजपरिवार तक उसकी पहुँच कर्पूरमञ्जरी सट्टक में दिखाई पड़ती है। दोहद जैसे प्रसङ्ग को प्रस्तुत कर राजशेखर ने समाज में ऐसी मान्यताओं के प्रति विश्वास को उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है। राजशेखर ने अपेक्षाकृत अधिक वस्त्राभूषणों एवं शृङ्गारप्रसाधनों का उल्लेख किया है। विश्वेश्वर की अपेक्षा राजशेखर ने वाद्ययन्त्रों आदि मनोरञ्जन के अधिकाधिक संसाधनों का संकेत किया है। सामान्य सामाजिक तथ्य एवं व्यवहार को सूचित करने में भी राजशेखर विश्वेश्वर का अतिक्रमण कर गये हैं।

●●●

अष्टम-अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

उपसंहार

मनुष्य में स्वभाव से ही अनुकरणवृत्ति पायी जाती है। मनुष्य की इस अनुकरणवृत्ति को रसानन्द में परिवर्तित कर देने के प्रयास स्वरूप ही 'नाट्यकला' का आविर्भाव हुआ है। नाट्यकला के कुछ प्रसिद्ध प्रतिरूपों के आधार पर, नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं की स्थापना करते हुए, नाट्य के दश भेद स्वीकार किये गये; जिन्हें रूपक नाम से अभिहित किया गया है। इन शास्त्रीय रूपकों के समानान्तर समाज में लोकनाट्यों की एक समृद्ध परम्परा भी रही है, जो निरन्तर विकास के परिणामस्वरूप उपरूपक के रूप में मान्यता प्राप्त करने में सफल हुई।

नाटक, प्रकरण जैसे रूपक आभिजात्यवर्ग को ध्यान में रखकर लिखे जाते थे। इनका मञ्चन प्रबुद्ध वर्ग के बीच होता था; जैसाकि अभिज्ञानशाकुन्तल में उसके मञ्चन के अवसर पर कालिदास ने सूत्रधार से कहलवाया है–"अभिरूपभूयिष्ठा परिषदियम्। (विद्वानों से भरपूर है यह सभा।)"। रूपकों के मञ्चन हेतु नटों को पर्याप्त अभ्यास एवं कुशलता की आवश्यकता होती थी; जैसाकि अभिज्ञानशाकुन्तल के सन्दर्भ में सूत्रधार कहता है–"प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः। (प्रत्येक पात्र के विषय में सावधानी रखनी चाहिए।)" नाटकों जैसे प्रसिद्ध रूपकों के मञ्चन में व्यापक व्यवस्था एवं विभिन्न दृश्य-विधानों के निर्माण हेतु पर्याप्त साज-सज्जा की आवश्यकता होती थी; जिनकी व्यवस्था सामान्य-जन द्वारा कर पाना संभव नहीं था। यहाँ सामान्य-व्यक्ति की संतुष्टि से कोई तात्पर्य भी नहीं होता था। नाटककारों को तो विद्वानों के संतुष्टि की चिन्ता थी; जैसा कालिदास ने कहा है–"आ परितोषाद् विदुषां

न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।" किन्तु ऐसा नहीं कि–इन प्रसिद्ध रूपकों के रसानन्द से वञ्चित सामान्य-वर्ग को, इन रूपकों के प्रति विशेष उत्सुकता रही हो। क्योंकि उनके पास अपनी लोक-नाट्य-विधा थी; जिसके मञ्चन में वह अपने स्तर से व्यवस्था करने में पूर्ण समर्थ था। उसे न विशाल नाट्यशाला भी अपेक्षा थी, न प्रशिक्षित नटों की, न महँगी साज-सज्जा की और न ही प्रसिद्ध कवियों द्वारा लिखित नाट्य साहित्य की। वह स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों से जहाँ कहीं भी लघुमञ्च बनाकर, जो कुछ मिला उसी से सुसज्जित होकर, अपने ही बीच के लोगों द्वारा गढ़े हुए अथवा परम्परा से सुने हुए कथा– को अपने स्तर से अभिनीत करके आनन्दविभोर होने में समर्थ था। यही कारण है कि– जहाँ रूपक अभिजात्यवर्ग का कण्ठहार रहा है, वहीं उपरूपक आम आदमी की अमूल्यनिधि रहा। अन्य उपरूपकों की भाँति सट्टक भी जन-सामान्य के बीच आविर्भूत हुई, उसकी प्रिय लोक-नाट्य-विधा है।

यद्यपि आज सट्टकसाहित्य के रूप में कुछ गिने-चुने सट्टक ही उपलब्ध हैं; परन्तु इससे इनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। सट्टक साहित्य की कमी का मूल कारण है समर्थ कवियों में सट्टक के प्रति लगाव का अभाव होना। वैसे अलिखित अथवा अव्यवस्थित रूप से लिखित सट्टकों का अस्तित्व बहुत पहले से रहा होगा, इसके सङ्केत मिलते हैं। परन्तु सर्वप्रथम व्यवस्थित रूप से सट्टक लिखकर उसे प्रचारित-प्रसारित करने के श्रेय राजशेखर को ही है, जिसे नयचन्द्र, रुद्रदास, कण्ठीरव घनश्याम, विश्वेश्वर पाण्डेय आदि जैसे परवर्ती कवियों ने आगे बढ़ाया।

सट्टक विधा में साहित्य सर्जना करने का राजशेखर का कार्य निश्चय ही क्रान्तिकारी कदम था। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी के सन्दर्भ में भास, कालिदास, जैसे कवियों द्वारा अपनाई गयी विधा या वर्ण्यविषय को नहीं उठाया; यह उनकी कमी का द्योतक नहीं अपितु उनकी

विशेषता का परिचायक है। क्योंकि उन्होंने ऐसी विधा को अपनाया जो अब तक के समर्थ कवियों द्वारा उपेक्षित थी। उन्होंने लोक-सामान्य का ध्यान रखते हुए ऐसे विषय को उठाया जो लोकशैली, लोकभाषा एवं लोकमञ्च से सम्बद्ध था। अब तक प्रबुद्ध वर्ग के लिए बहुत-कुछ लिखा जा चुका था; जन-सामान्य का वह् वर्ग, जो संस्कृत भाषा के प्रयोग में कठिनाई अनुभव करता था। जो शिक्षित नहीं था; उसके मनोरञ्जन हेतु उसकी मञ्च व्यवस्था एवं साजसज्जा के अनुरूप उसकी भाषा में दृश्यकाव्य उपलब्ध कराने की आवश्यकता थी। राजशेखर ने इस रूप में कपूर्रमञ्जरी सट्टक को प्रस्तुत कर जनता-जनार्दन की आकांक्षा की पूर्ति की एवं इस प्रकार अपने आपको जन-कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया।

वैसे तो संस्कृत-नाट्य-साहित्य में अनेक नवीन प्रयोग होते रहे हैं; जैसेकि—जयन्तभट्ट ने 'आगमडम्बर' नामक चार अङ्कों का नाट्य लिखा; जिसका विषय दर्शन है। विशुद्ध अभिधा-वृत्ति के आश्रय वाला यह् नाट्य, दार्शनिक गोष्ठियों की कठोर एवं नीरस बहस का विषय है। इसी प्रकार मानवीय भावों को पात्र रूप में रखते हुए कृष्णमिश्र द्वारा 'प्रबोधचन्द्रोदय' जैसे नाट्य-साहित्य का प्रणयन करना नवीन प्रयोग था। परन्तु ये प्रबुद्ध वर्ग के लिए लिखे गये नाट्यरूप थे। इनमें लोकरञ्जकता का अभाव था। जबकि राजशेखर का कार्य नवीन भी था एवं लोकप्रिय भी। वह सत्य भी था, शिव भी था एवं सुन्दर भी। उनके पश्चाद्वर्ती नयचन्द्र रुद्रदास, कण्ठीरव घनश्याम, विश्वेश्वर पाण्डेय जैसे कवियों ने सट्टक जैसी नाट्य विधा के महत्व को समझा एवं जन-कवि होने की आकांक्षा से, उस अधिकाधिक लोकप्रिय नाट्य-विधा को अपनी प्रतिभा से सिक्त करने का सफल प्रयास किया। इन कवियों ने कालिदास की भाँति अपने प्रयोग द्वारा विद्वद्वर्ग को संतुष्ट करने की अपेक्षा नहीं की। इनके सट्टक तो पूर्णतः लोकरञ्जन की दृष्टि से निबन्धित थे।

यद्यपि सट्टक में राजा की कथा का निबन्धन प्राप्त होता है, परन्तु यह् कथानक जनता

की आकांक्षा के अनुरूप लोकजीवन से ही सम्बन्धित है। क्योंकि जन-सामान्य का इस लोक में सर्वोच्च प्राप्तव्य सम्मान, ऐश्वर्य, प्रभाव, सत्ता, राजत्व आदि ही है। इस प्रकार आम-आदमी के उस सर्वोच्च प्राप्तव्य पद को नायक के रूप में प्रस्तुत कर राजशेखर जैसे सट्टककारों ने जन आकांक्षा की पूर्ति ही किया है। इस रूप में सट्टककारों द्वारा राजकथा के माध्यम से रसोद्रेक की अवस्था में साधारणीकरण द्वारा जन-सामान्य को राजत्व तक पहुँचाने का उद्योग किया जाता है। यद्यपि सट्टक की कथा में राजा का द्वितीय प्रेम प्रदर्शित किया गया है, जो आदर्श नहीं है। किन्तु यह लोक-जीवन का ख्याति प्राप्त विषय रहा है; इसलिए इसे भी जन सामान्य का ही विषय माना जाना चाहिए।

सट्टककारों ने जन-सामान्य द्वारा संभव हो सकने योग्य मञ्च-व्यवस्था, दृश्य-विधान तथा परिवेश का सम्यक् ध्यान रखा है। सट्टक के पात्रों की संख्या सीमित रखी गयी है; जिससे आवश्यक संख्या में कुशल नट अपने ही बीच से आसानी से उपलब्ध कराये जा सकें। इसका ध्यान रखा गया है कि ग्राम्य-लघु-मञ्च पर अधिक से अधिक छः-सात पात्रों तक का ही प्रवेश हो, तभी इस नाट्य के अनुरूप मञ्च-व्यवस्था जहाँ कहीं भी कर पाना संभव हो सकेगा। दृश्य-विधान भी सीमित एवं लोक-व्यवस्था के अनुकूल रखे गये हैं। सम्पूर्ण कथा राजा के अन्तःपुर से ही सम्बन्धित है। राजकथा होते हुए भी वैभवपूर्ण राजदरबार के दृश्य-विधान से बचा गया है। इसकी अधिकांश घटनायें प्रमदोद्यान जैसे प्राकृतिक वातावरण में ही घटित होती हैं। राजा होते हुए भी नायक प्रमदोद्यान की पगडण्डियों पर पैदल चलता हुआ ही नजर आता है; इसके लिए रथ, हाथी, घोड़े आदि की अपेक्षा नहीं की गयी है। अपितु दृश्य-विधान एवं घटनाक्रम ऐसी होती थी जिसकी मञ्च-व्यवस्था एवं दृश्य-विधान का समायोजन लोक-कलाकारों द्वारा जहाँ कहीं भी कर पाना संभव था।

सट्टक के पात्रों की वेश-रचना में भी आम-व्यक्तियों को उपलब्ध हो सकने वाले संसाधनों

का ध्यान रखा गया है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक को देखें तो इसके प्रथम-अङ्क में शकुन्तला वल्कलवसना आश्रम-बाला है। चतुर्थ-अङ्क में वह वनदेवताओं द्वारा प्रदत्त वस्त्राभरणों से सुसज्जित दुलहन के रूप में प्रस्तुत है। आगे चलकर विरह-संताप में संतप्त विरहिणी के अनुरूप वेश-भूषा में दिखाई पड़ती है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अंङ्कों के अनुरूप वेश-सज्जा की व्यवस्था कर पाना आम-आदमी के वश की बात नहीं थी। अतः कथा की ऐसी योजना की गयी कि– एक अथवा अधिक से अधिक दो प्रकार के परिधानों में ही सम्पूर्ण नाट्य सम्पन्न किया जा सके।

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी, ऐसे जनप्रिय नाट्य-विधा 'सट्टक' के परिवार में पथ-प्रदर्शक की भाँति रही है। यही सट्टक परिवार की अगुवा है। इसी से प्रेरणा लेकर बाद के सट्टककारों ने अपनी कृतियों का प्रणयन किया है। १७वीं-१८वीं शदी के कवि विश्वेश्वर ने यद्यपि विभिन्न विषयों पर अपनी लेखनी चलाई, फिर भी सट्टक जैसे ललित, सर्वजनसंवेद्य नाट्य-विधा पर अपनी लेखनी चलाने के मोह को संवरण नहीं कर पाये। परिणामतः शृङ्गारमञ्जरी जैसे मोहक सट्टक का सृजन हुआ। शृङ्गारमञ्जरी में विश्वेश्वर ने कथावस्तु, पात्र-व्यवस्था, रस-योजना आदि दृष्टियों से राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी का पर्याप्त अनुशरण किया है; जिससे दोनों कृतियों में अनेक बिन्दुओं पर पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है। अतः इन दोनों सट्टकों का एक साथ तुलनात्मक दृष्टि से आलोचनात्मक अध्ययन करना अपने आप में पर्याप्त आकर्षक विषय रहा है। इसी आकर्षण के वशीभूत होकर "राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी एवं विश्वेश्वरकृत शृङ्गारमञ्जरी सट्टकों का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर शोधकार्य में प्रवृत्त होकर पिछले अध्यायों में इसका सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ प्रथम अध्याय में सट्टक का सविस्तार परिचय प्राप्त करने का प्रयास हुआ है, क्योंकि अब तक यह पक्ष अस्पष्ट-सा था। सट्टक मूलतः दृश्य-काव्य अर्थात् नाट्य है। अतः नाट्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए, इसके महत्त्व पर दृष्टिपात करने के साथ प्रथम-अध्याय का प्रारम्भ

हुआ है। नाट्य सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं का सार यही है, कि–नाट्य अभिनेय है। यह मूलतः रङ्गमञ्च की वस्तु है। आनन्द के साथ चरित्र को उदार तथा जीवन के स्तर को उदात्त एवं आदर्शमय बनाने में ही नाट्य की महत्ता है। सट्टक के उपरूपक होने के कारण उपरूपकों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करते हुए उसकी उत्पत्ति प्रक्रिया का अनुशीलन किया गया है; जिसका निष्कर्ष यह है कि–उपरूपकों का उद्भव दो मार्गों से हुआ है, पहला–नृत्त एवं नृत्य के विकास स्वरूप तथा दूसरा––प्रसिद्ध रूपक भेदों के सङ्कीर्णन के परिणाम स्वरूप। उपरूपकों के विकास में कोहल का विशेष योगदान स्वीकार किया जाता है। अतः उनके तत्सम्बन्धी योगदान का आकलन करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है, कि–कोहल के समय ये उपरूपक नृत्यात्मक-रागकाव्य के स्तर पर थे। उसी रूप में कोहल ने उनकी शास्त्रीय-मीमांसा की थी। उपरूपकों ने वर्तमान स्वरूप वस्तुतः कोहल के बाद ही प्राप्त किया। सट्टक के सन्दर्भ में इसके उद्भव पर विचार करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है, कि–यह ऐसा लोकनाट्य रहा है, जिसमें सट्टक वस्त्र की यवनिका बना ली जाती थी। इसी से यह विधा आगे चलकर सट्टक नाम से प्रख्यात हुई। यहाँ सट्टक रूपक है अथवा उपरूपक? इसकी सम्यक् विवेचना करते हुए, उसको उपरूपक मानने की मान्यता की पुष्टि की गयी है। अंत में सट्टक साहित्य की परम्परा पर दृष्टिपात करते हुए उपलब्ध सट्टकों का परिचय दिया गया है।

द्वितीय-अध्याय में राजशेखर एवं विश्वेश्वर का पूर्ण परिचय प्रस्तुत है; क्योंकि कवि के काल, परिवेश एवं व्यक्तित्व के ज्ञान के बिना उसकी सन्दर्भित काव्य में प्रवृत्ति का कारण एवं काव्य में प्रस्तुत उसके मन्तव्य को स्पष्ट कर पाना कठिन है। यहाँ विभिन्न श्रोतों से प्राप्त कवि सम्बन्धी सूचनाओं को एकत्रित करते हुए, तत्सम्बन्धी भ्रान्त-धारणाओं का निराकरण किया गया है। इसके अनुसार कर्पूरमञ्जरीकार यायावरवंशीय राजशेखर, अकालजलद के प्रपौत्र एवं दर्दुक तथा शीलवती के पुत्र थे। ये कन्नौज-नरेश महेन्द्रपाल एवं महीपाल के दरबारी ब्राह्मण कवि थे। इन्हें ८८० ई० से ९२० ई० के मध्य रखा जा सकता है। इनकी जन्मभूमि एवं

कर्मभूमि मध्यदेश रहा है। इनकी पाँच प्रसिद्ध कृतियाँ—काव्यमीमांसा, बालरामायण, बालभारत, कर्पूरमञ्जरी एवं विद्धशालभञ्जिका उपलब्ध हैं। इसी प्रकार विश्वेश्वर अल्मोड़ा नगर के समीपवर्ती पटिया ग्राम के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। लक्ष्मीधर के पुत्र के रूप में वाराणसी में इनका जन्म हुआ था। इनकी कर्मभूमि कूर्माचल रहा है। इन्होंने अनेक विषयों पर २५ के लगभग कृतियों का प्रणयन किया था। इनका समय १६७५ ई० से १७१५ ई० के मध्य रखा जा सकता है। इन दोनों कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के तुलनात्मक परिशीलन के सन्दर्भ में देखा गया है, कि—दोनों ही प्रसिद्ध विद्वानों के वंशज तथा जन्मजात कवि एवं विद्वान हैं। इसमें राजशेखर अधिक बड़बोले हैं; जबकि विश्वेश्वर अपेक्षाकृत अधिक मौलिक रचनाकार हैं।

तृतीय-अध्याय में कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी की कथावस्तु का सम्यक् परिशीलन करते हुए, उसे नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं की कसौटी पर कसा गया है; जिससे उसका सटीक मूल्याङ्कन संभव हो सके। यहाँ आधिकारिक एवं प्रासङ्गिक वृत्त, अथोपक्षेपक, नाट्योक्ति, अर्थप्रकृतियाँ, कार्यावस्थायें, सन्धियाँ, सन्ध्यङ्ग-योजना आदि दृष्टियों से दोनों कृतियों का क्रमशः विवेचन करते हुए, यह देखा गया है कि—नाट्यशास्त्रीय मान्यताओं के अनुरूप ही इनकी कथावस्तुएं निबन्धित हैं। यहाँ दोनों सट्टकों की कथावस्तुओं की तुलनात्मक विवेचना के सन्दर्भ में यह स्पष्ट किया गया है, कि—शृङ्गारमञ्जरी की वस्तुयोजना, कर्पूरमञ्जरी सट्टक की वस्तुयोजना की अपेक्षा अधिक सुगठित, प्रवाहपूर्ण एवं रोचक है।

चतुर्थ-अध्याय में विवेच्य-कृतियों की पात्र-व्यवस्था का विवेचन है। पात्रों के चरित्राङ्कन के माध्यम से ही नाट्यकार समाज को सोदाहरण अपना संदेश प्रेषित करता है। दर्शक पात्रों के माध्यम से ही साधारणीकृत होकर रसानन्द में सराबोर होता है। अतः इस अध्याय में क्रमशः कर्पूरमञ्जरी एवं शृङ्गारमञ्जरी के नायक, नायिका, ज्येष्ठा-नायिका, विदूषक एवं अन्य मुख्य सहायक पात्रों के चरित्र को उद्घाटित किया गया है। इन कृतियों की पात्र-व्यवस्था कथानुरूप एवं लोक-मञ्च की दृष्टि से सीमित संख्या वाली है। स्त्री-पात्रों की बहुलता है। दोनों कृतियों की

पात्र-व्यवस्था की तुलनात्मक समीक्षा के सन्दर्भ में देखा गया है कि–कर्पूरमञ्जरी सट्टक की अपेक्षा शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में पात्रों के चरित्राङ्कन पर अधिक बल दिया गया है।

पञ्चम-अध्याय में रस-विवेचन प्रस्तुत है। रस ही नाट्य की आत्मा है। इस रस का आनन्द ही दर्शकों का प्राप्तव्य है। इसके विवेचन के बिना विवेच्य सट्टकों की जीवन्तता का आकलन असम्भव था। दोनों ही कृतियों में शृङ्गार-रस का अङ्गी-रस के रूप में निबन्धन हुआ है। विदूषक जैसे पात्र के चुटीले संवादों एवं हाव-भाव में हास्य-रस की अभिव्यञ्जना हो रही है। सट्टक के लक्षणानुसार अद्भुत-रस का पुट भी आद्योपान्त मिलता है। भाव-ध्वनि के स्थल भी दोनों कृतियों में मिलते हैं; जिनका सोदाहरण विवेचन किया गया है। दोनों कृतियों में रस-परिपाक सम्बन्धी तुलनात्मक विवेचन में देखा गया है कि–सट्टक के लक्षणानुसार दोनों का ही अङ्गी-रस शृङ्गार है तथा हास्य एवं अद्भुत का समायोजन भी दोनों में हुआ है। फिर भी शृङ्गार की योजना में शृङ्गार-मञ्जरी सट्टक उत्कृष्ट है; जबकि हास्य की योजना में कर्पूरमञ्जरी सट्टक अधिक सफल है। इनमें प्रमुख अन्तर यह है कि–कर्पूरमञ्जरी जहाँ भावप्रधान नाट्य है, वहीं शृङ्गारमञ्जरी रस प्रधान है।

षष्ठ-अध्याय में भाषा एवं शैली का अनुशीलन हुआ है; क्योंकि भाषा ही भावों के संवहन का सशक्त माध्यम है। इस रूप में दोनों ही कृतियों में दर्शकों के पूर्णभावोद्बोधन हेतु प्राकृत भाषा का आश्रय किया गया है। उसमें भी दोनों में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री प्राकृतों का प्रयोग प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियों में शैली-विवेचन के प्रसङ्ग में विविध अलङ्कारों एवं छन्दों के प्रयोग दिखाई पड़ते हैं; जिन्हें सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। दोनों कृतियों में कथा के विकास हेतु प्रकृति-वर्णनों का सहारा लिया गया है। यहाँ विशेषकर उद्दीपन-विभाव के रूप में प्रकृति का चित्रण प्राप्त होता है। विवेच्य-कृतियों की भाषा एवं शैली का तुलनात्मक परिशीलन भी प्रस्तुत किया गया है; जिसके अनुसार कर्पूरमञ्जरी सट्टक में जहाँ गद्य तथा पद्य में शौरसेनी एवं महाराष्ट्री प्राकृत का अलग-अलग प्रयोग हुआ है, वहीं शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में गद्य एवं पद्य

दोनों में ही दोनों प्राकृतों का प्रयोग प्राप्त होता है। दोनों कृतियाँ विविध छन्दों एवं अलङ्कारों से अलङ्कृत हैं। कर्पूरमञ्जरी में यद्यपि प्रकृति-वर्णन अपेक्षाकृत अधिक मिलता है, किन्तु यह अस्वाभाविक एवं उबाऊ है। जबकि शृङ्गारमञ्जरी सट्टक में कथा की माँग के अनुरूप प्रकृति-वर्णन सीमित एवं संतुलित है।

सप्तम-अध्याय के अन्तर्गत विवेच्य-कृतियों में प्रतिबिम्बित तत्कालीन संस्कृति का निरीक्षण किया गया है। यद्यपि कवि का उद्देश्य रसाभिव्यक्ति है, फिर भी जाने-अनजाने वह अपने समाज का चित्रण कर जाता है। इस रूप में विवेच्य-कृतियों में तत्कालीन समाज का चित्र ढूँढ़ना अपने आप में मनोरञ्जक कार्य एवं जिज्ञासा का विषय है। अतः समाज में नारी की स्थिति, विवाह-व्यवस्था, धार्मिक-दशा, वर्ण-व्यवस्था, राजाओं के अन्तःपुर की स्थिति, सामान्य व्यवहार की बातें आदि दृष्टियों से दोनों कृतियों पर दृष्टिपात किया गया है। यहाँ दोनों कृतियों के कालखण्डों के तुलनात्मक परिशीलन के सन्दर्भ में यह देखा गया कि—लगभग सात सौ वर्षों का दीर्घ अन्तराल व्यतीत हो जाने पर भी नारी-दशा, विवाह-व्यवस्था, राजाओं के अन्तःपुर की दशा आदि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। अनेक रूढ़ियाँ यथावत बनी रहीं।

अंतिम-अध्याय में साहित्य-जगत में सट्टक के महत्व की चर्चा की गयी है। वस्तुतः सट्टक वह जन-नाट्य-विधा रही है; जो जन-सामान्य द्वारा अपनी भाषा में, अपनी मञ्च-व्यवस्था एवं साज-सज्जा से जहाँ कहीं भी मञ्चित होकर आनन्दित करने वाली थी। ऐसी लोक-नाट्य-विधा को 'कर्पूरमञ्जरी सट्टक' के प्रणयन द्वारा अपनाकर, राजशेखर ने जन-नाट्य को प्रतिष्ठित करने की जो क्रान्तिकारी शुरुआत की एवं विश्वेश्वर जैसे नाट्यकार ने अपने शृङ्गारमञ्जरी सट्टक जैसे सुन्दर-सृजन द्वारा लोकधर्मी नाट्य-साहित्य को परिपोषित करने का जो साहसपूर्ण कार्य किया; इससे वे दोनों ही नाट्य-साहित्य-जगत में सदा समादरणीय एवं स्मरणीय रहेंगे।

●●●

परिशिष्ट

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचिका

संस्कृत ग्रन्थ—

१. अग्निपुराण—सम्पादक-पंचानन तर्करत्न, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता।

२. अभिनवभारती—आचार्य अभिनवगुप्त, भाग-एक, दो एवं तीन, प्रकाशक—गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९६४ ई०।

३. अभिज्ञानशाकुन्तल—कालिदास, सम्पादक—डॉ० रमाशङ्कर त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९९१ ई०।

४. अमरकोश—अमरसिंह, व्याख्याकार—श्रीरामतेज पाण्डेय, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९९० ई०।

५. अलङ्कारकौस्तुभ—विश्वेश्वर, सम्पादक—शिवदत्त एवं के०पी० परब, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १८९८ ई०।

६. अलङ्कारप्रदीप—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२३ ई०।

७. अलङ्कारमुक्तावली—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२७ ई०।

८. काव्यप्रकाश—आचार्य मम्मट, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, संवत् २०४२ वि०।

८. काव्यप्रकाश—आचार्य मम्मट, व्याख्याकार—श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, १९६० ई०।

१०. काव्यमीमांसा—आचार्य राजशेखर, अनुवादक—पं० केदारनाथ शर्मा सारस्वत, बिहार

राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संवत्–२०२२ वि०।

११. काव्यमीमांसा—आचार्य राजशेखर, सम्पादक– सी०डी० दलाल, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा, १९३४ ई०।

१२. काव्यादर्श—आचार्य दण्डी, धर्मेंद्रकुमार गुप्ता, प्रकाशक—मेहरचन्द लक्ष्मनदास, दरियागंज, दिल्ली, १९७३ ई०।

१३. काव्यादर्श—आचार्य दण्डी, व्याख्याकार—आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७२ ई०।

१४. काव्यानुशासन—आचार्य हेमचन्द्र, सम्पादक—आर०सी० पारिख, वाराणसी, १९३८ ई०।

१५. काव्यालङ्कार—आचार्य रुद्रट, व्याख्याकार—रामदेव शुक्ल, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९६६ ई०।

१६. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति—आचार्य वामन, हिन्दी अनुसंधान परिषद ग्रन्थमाला, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९५४ ई०।

१७. चन्द्रालोक—आचार्य जयदेव, पीयूषवर्षी, गुजरात प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, १९३९ ई०।

१८. तर्ककुतूहल—विश्वेश्वर, सम्पादक—श्री जर्नादिन शास्त्री पाण्डेय, प्रकाशक—श्री नित्यानन्द स्मारक समिति, वाराणसी।

१९. दशरूपक—आचार्य धनञ्जय, अवलोक-टीका सहित, व्याख्याकार—डॉ० भोलाशङ्कर व्यास, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७९ ई०।

२०. दशरूपक—आचार्य धनञ्जय, अवलोक-टीका सहित, व्याख्याकार—श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९८९ ई०।

२१. ध्वन्यालोक—आचार्य आनन्दवर्धन, व्याख्याकार—आचार्य विश्वेश्वर, सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र, ज्ञानमण्डल लि०, वाराणसी, संवत्–२०४२ वि०।

२२. नाटकचन्द्रिका—आचार्य रूपगोस्वामी, व्याख्याकार—बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत

सीरीज, वाराणसी, १९६४ ई०।

२३. नाट्यदर्पण—आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र, व्याख्याकार—थानेश चन्द्र उप्रेती, परिमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८६ ई०।

२४. नाट्यलक्षणरत्नकोश—आचार्य सागरनन्दी, व्याख्याकार—बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७२ ई०।

२५. नाट्यशास्त्र—आचार्य भरत, अभिनवभारती टीका सहित, सम्पादक—मधुसूदन शास्त्री, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७१ ई०।

२६. नाट्यशास्त्र—आचार्य भरत, श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८४ ई०।

२७. प्रतापरुद्रयशोभूषण—आचार्य विद्यानाथ, प्रकाशक—गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस, बम्बई, १९०९ ई०।

२८. बालरामायण—राजशेखर, सम्पादक—डॉ० गंगासागर राय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

२९. भावप्रकाशन—आचार्य शारदातनय, अनुवादक—डॉ० मदनमोहन अग्रवाल, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८३ ई०।

३०. मन्दारमञ्जरी—विश्वेश्वर, पूर्वभाग, सम्पादक—प्रो० गोपालदत्त पाण्डेय, पर्वतीय पुस्तक प्रकाशन मण्डल, बनारस, १९९५ ई०।

३१. रत्नावली-नाटिका—महाराज हर्ष, सम्पादक—डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७६ ई०।

३२. रसचन्द्रिका—विश्वेश्वर, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९२६ ई०।

३३. विद्धशालभञ्जिका-नाटिका—राजशेखर, सम्पादक—श्री बाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, १९७६ ई०।

३४. वृत्तरत्नाकर—भट्टकेदार, व्याख्याकार—श्रीधरानन्दशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी—१९७२ ई०।

३५. वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि—विश्वेश्वर, पूर्वभाग, सम्पादक—पं० माधवशास्त्री भण्डारी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी।

३६. व्यक्तिविवेक—आचार्य महिमभट्ट, व्याख्याकार—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९७९ ई०।

३७. श्रुतबोध—कालिदास, टीकाकार—सरयू प्रसाद पाण्डेय, सम्पादक—तेजराम शास्त्री, प्रका०—ठाकुर प्रसाद गुप्त, काशी, संवत्—१९९३ वि०।

३८. शृङ्गारप्रकाश—भोज, डॉ० वी० राघवन, अनुवादक—पी०डी० अग्निहोत्री, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९८१ ई०।

३९. साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार—शालिग्राम शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली—१९७७ ई०।

४०. साहित्यदर्पण—आचार्य विश्वनाथ, व्याख्याकार—श्रीयुत् हरिदास, सिद्धान्त वागीश भट्टाचार्य, संस्कृत बुक डिपो, कलकत्ता, १९८१ ई०।

४१. सुक्तिमुक्तावलि—जल्हण, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९३८ ई०।

प्राकृत ग्रन्थ—

४२. आनन्दसुन्दरी—कण्ठीरव घनश्याम, सम्पादक—डॉ० ए०एन० उपाध्ये, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी—१९५५ ई०।

४३. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—गंगासरन राय, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७९ ई०।

४४. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७५ ई०।

४५. कर्पूरमञ्जरी—राजशेखर, सम्पादक—श्री रामकुमार आचार्य, चौखम्बा विद्याभवन,

वाराणसी, १९९० ई०।

४६. चन्द्रलेहा—रुद्रदास, सम्पादक—डॉ० ए०एन० उपाध्ये, प्रकाशक—भारतीय विद्या ग्रन्थावली, बम्बई, १९४५ ई०।

४७. प्राकृतपैङ्गल—श्री चन्द्रमोहन घोष, एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९०२ ई०।

४८. प्राकृतसर्वस्व—मार्कण्डेय, सम्पादक—भट्टनाथ स्वामी, ग्रन्थप्रदर्शिनी, विजगापट्टम् १९२७ ई०।

४९. रम्भामञ्जरी—नयचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई १८८९ ई०।

५०. शृङ्गारमञ्जरी—विश्वेश्वर, सम्पादक—डॉ० जगन्नाथ जोशी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९९० ई०।

हिन्दी ग्रन्थ—

५१. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग—सम्पादक एवं अनुवादक—रामलाल वर्मा शास्त्री, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली—१९५९ ई०।

५२. अभिनव प्राकृत व्याकरण—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा पब्लिकेशन, वाराणसी, १९६३ ई०।

५३. आचार्य राजशेखर—डॉ० श्यामा वर्मा, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७१ ई०।

५४. आधुनिक संस्कृत नाटक—डॉ० रामजी उपाध्याय—संस्कृत परिषद, सागर विश्वविद्यालय, सागर, १९७७ ई०।

५५. काव्याङ्ग-विवेचन—डॉ० भगीरथ मिश्र तथा बलभद्र तिवारी, प्रकाशक—स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७६ ई०।

५६. काव्यालङ्कारसारसंग्रह एवं लघुवृत्ति की व्याख्या—डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६६ ई०।

५७. कवि और काव्यशास्त्र—डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, प्रकाशक-राका, ४०-ए, मोतीलाल नेहरू रोड, इलाहाबाद।

५८. ध्वनिसिद्धान्त विरोधी सम्प्रदाय एवं उनकी मान्यताएँ—डॉ० सुरेश चन्द्र पाण्डेय, वसुमती

प्रकाशन, इलाहाबाद।

५९. नाट्यकला : प्राच्य एवं पाश्चात्य—डॉ० सुदर्शन मिश्र, प्रकाशक—श्री पादन दास भट्टाचार्य, वाराणसी, १९७४ ई०।

६०. नाट्यकलामीमांसा—डॉ० गोविन्द दास, मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिषद, १९६१ ई०।

६१. प्राकृतप्रवेशिका—कोमलचन्द्र जैन, प्राच्यभारती प्रकाशन, कमच्छा, वाराणसी, १९६४ ई०।

६२. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक—डॉ० एन०सी० शास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, कमच्छा, वाराणसी, १९६६ ई०।

६३. प्राकृतविमर्श—हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, १९७४ ई०।

६४. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जगदीश चन्द्र जैन, प्रकाशक—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९६१ ई०।

६५. बृहत्त्रयी : एक तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ, प्रकाशक—ईस्टर्न बुक लिंकर्ष, दिल्ली, १९८३ ई०।

६६. भरत एवं भारतीय नाट्यकला—सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, १९६७ ई०।

६७. भारतीय नाट्य परम्परा एवं अभिनवदर्पण—वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६७ ई०।

६८. भारतीय नाट्यशास्त्र एवं रङ्गमञ्च—डॉ० रामसागर त्रिपाठी, प्रकाशक—अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई०।

६९. भारतीय नाट्य सिद्धान्त : उद्भव एवं विकास—डॉ० रामजी पाण्डेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, १९८२ ई०।

७०. भावप्रकाशन : एक समालोचनात्मक अध्ययन—डॉ० रामरंग शर्मा, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८४ ई०।

७१. भाषा विज्ञान—डॉ० भोलानाथ तिवारी, किताब महल, इलाहाबाद, १९८८ ई०।

७२. मध्यकालिक-संस्कृतनाटकालोक—रामजी उपाध्याय, भारतीय संस्कृत संस्थान, नारीबारी, इलाहाबाद, संवत् २०३७ वि०।

७३. रस-मीमांसा—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १९६८ ई०।

७४. संस्कृत काव्यकार—डॉ० हरिदत्त शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७० ई०।

७५. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—पी०वी० काणे, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७७ ई०।

७६. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० सुनील कुमार डे, प्रकाशक—बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, १९८८ ई०।

७७. संस्कृत काव्यशास्त्र परम्परा में आचार्य विश्वेश्वर पाण्डेय का योगदान—श्री लक्ष्मीदत्त जोशी, अवध विश्वविद्यालय की पी-एच०डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, १९९३ ई०।

७८. संस्कृत नाटक—ए०बी० कीथ, अनुवादक—डॉ० उदयभानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९६५ ई०।

७९. संस्कृतनाटिकाविमर्श—जयश्री सिन्हा, कैपिटल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९८६ ई०।

८०. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, १९८७ ई०।

८१. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक—रामनारायणलाल विजय कुमार, इलाहाबाद, १९८५ ई०।

८२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा—पं० चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं डॉ० शान्तिकुमार नानूराम व्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर, १९७५ ई०।

८३. संस्कृत-हिन्दी-कोश—वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक—मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी १९८७ ई०।

अंग्रेजी ग्रन्थ—

84. A History of Classical Sanskrit Literature—M..Krisnamachariar, Motilal Banarsidas, Delhi, 1974 A.D.

85. A History of Sanskrit Literature—A.B. Keith, Oxford University Press, 1970 A.D.

86. A History of Sanskrit Literature—S.K. Dey, Calcutta, 1947 A.D.

87. Bhoja's Śṛṅgāra Prakāśa—Dr. V. Raghavan, Punarvasu Prakashan, Madras, 1963 A.D.

88. Kāvyālaṅkāra—Bhāmaha—P.V. Naganatha Sastry, Motilal Banarsidas, Varanasi, 1970 A.D.

89. Mālavikāgnimitra—Kalidas—Translator—Mr. H.W. Tawney, Calcutta, 1891 A.D.

90. Nāṭyadarpaṇa—Ramchandra and Gunachandra, Gajanan Kushaba Shrigondekar & Latchandra Bhagawandas, Oriental Institute, Baroda, 1929 A.D.

91. Prākṛta-Prakāśa—Vararuchi, C.B. Kowell, Punthipustak, Cal., 1962 A.D.

92. Rājaçekhara's Karpūramañjarī—Kten Konow & C. Rockwell Lanman, Motilal Banarsidas, Delhi, 1963 A.D.

●●●